जाननहार जानने में आता है वह पर्याय से रहित भी है;
जाननहार जानने में आता है वह पर्याय से सहित भी है;
इसप्रकार ध्येयपूर्वक ज्ञेय का समय एक है।

जाननहार जानने में आता है

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

**“कर ग्रहण प्रज्ञा से नियत, ज्ञाता है सो ही मैं ही हूँ।
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरे से पर हैं —जानना।“ स.सार २९९**

जाननहार जानने में आता है

**“निर्वाण पाया इसी मग से श्रमण जिन जिनदेव ने।
निर्वाण प्राप्त अर निर्वाण मग को नमन बारंबार हो।“ प्र.सार १९९**

**“मैं जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं;
जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता।“**

अनंत उपकारी, **पू. कहानगुरुदेव** के अनन्य भक्त रत्न,
शुद्धात्म रस के रसिक, **“जाननहार जानने में आता है”** के उद्घोषक
पू. श्री लालचंदभाई के मंगलमयी (अस्ति-नास्ति) अनेकांतामृत वचनामृत।

संकलनकर्ता - बा.ब्र. शोभनाबेन जे. शाह
अनुवादकर्ता - कुमकुमबेन एन. जैन

कृपया ध्यान दें - ये उद्धरण बिना संदर्भ के हैं
Please note - These quotes are unreferenced

प्रकाशकीय कलम से...

प्रारंभिक मंगलाचरण :

"अहो! उपकार जिनवर का; कुंद का ध्वनि दिव्य का;

जिनकुंद ध्वनि आप्या; अहो! उन गुरु कहान का।"

वर्तमान युग के वीतराग निर्ग्रंथ दिगंबर परंपरा में द्वितीय श्रुतस्कंध के आद्य प्रणेता कुंदपुष्प की प्रभा के धारक आचार्यवर श्रीमद् कुंदकुंददेव अध्यात्म जगत के सर्वोपरि आचार्य हुए। उनके पश्चात् १००० वर्ष बाद परमागम में निष्णात; ज्ञान साम्राज्य के सम्राट; चैतन्य की अतुल संपदा में निःशेषपने अंतर्मुखाकार आचार्य अमृतचंद्रदेव हुए। उन्होंने तत्त्वज्ञान से समृद्ध टीकाएं रची। वे आत्मख्याति में फरमाते हैं कि "ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा स्वयमेव, सदाकाल अनुभव में आ रहा है।" हे भव्यों ! इस अनुभव की कीमत करना।

जिसप्रकार कोई द्रव्यदृष्टि करे या ना करे; आत्मा तो स्वभाव से ही अकर्ता है। इसीप्रकार आत्मा को कोई जाने या ना जाने परंतु "भगवान आत्मा सबको जानने में आ ही रहा है"।

ऐसी अतुल निधियाँ परमागम में संचित थी। उन निधियों के वैभव को खोलनेवाले; विश्व वंदनीय विरल विभूति श्रीकहानगुरुदेव का सांप्रतकाल की प्राची दिशा में अरुणोदय हुआ। और उसके साथ ही समयसार आदि निधियों की विशाल प्रभावना हुई। पूज्य गुरुदेवश्री की विशुद्ध आध्यात्मिक निर्मल दृष्टि; भेदज्ञान की परायणता; और साथ ही करुणार्द हृदय की कल्याणार्थी कोमल वाणी; इस त्रिवेणी का स्पर्श होते ही अनादि की हमारी सुषुप्त चेतना संचेत हुई। अति संवेग से निज श्रेयार्थ बोधि सुधा भागीरथी में स्नान करते ही मानो! प्रशम आह्लादकारी अनुभव हुआ।

ज्ञानप्रकाशमयी सूर्य श्रीकहान गुरुदेव:

ज्ञान कला में सबको अखंड का प्रतिभास हुआ ही करता है। ज्ञान की वर्तमान पर्याय का सामर्थ्य स्व को जानने का ही है। आबाल गोपाल सबको सदाकाल अखंड प्रतिभासमयी त्रिकाली स्व जानने में आता है। परंतु... उसकी दृष्टि पर में पड़ी होने से वहां एकत्व करता हुआ, **"जाननहार ही जानने में आता है"** ऐसा न मानकर, रागादि पर जानने में आते हैं (ऐसा मानता है)- इसप्रकार अज्ञानी पर के साथ एकत्वपूर्वक जानता-मानता होने से उसकी वर्तमान अवस्था में अखंड का प्रतिभास नहीं होता। और ज्ञानी तो

"यह जाननहार जानने में आता है वही मैं हूँ"। इसप्रकार जाननहार ज्ञायक को एकत्वपूर्वक जानता-मानता होने से उसकी वर्तमान अवस्था में (ज्ञान कला में) अखंड का सम्यक् प्रतिभास होता है।

ज्ञानसूर्य की प्रचंड किरण पूज्य 'भाई श्री' लालचंदभाई:

मेरी ज्ञानपर्याय की सामर्थ्य ऐसी है कि: ज्ञायक जानने में आता है। **"जाननहार जानने में आता है"** ऐसी सामर्थ्य ज्ञानपर्याय में प्रगट है। ऐसी सामर्थ्य प्रत्येक जीव में है। ऐसी आश्चर्यकारी सामर्थ्य का श्रद्धा में विश्वास नहीं आता। श्रद्धा में तो प्रतिक्षण ऐसा आता है कि: मुझे शरीर जानने में आता है...राग जानने में आता है -इसप्रकार दृष्टि बहिर्मुख रह गई। तो फिर उपयोग आत्म-अभिमुख किस प्रकार हो?! अंदर से स्फूर्णा होनी चाहिए। मूल में से प्रयत्न होना चाहिए वह होता नहीं। क्योंकि पर को जानने की अभिलाषा पड़ी है, वह उसे सम्यक्-सन्मुख होने नहीं देती।

जिसप्रकार केवली भगवान के ज्ञान में मैं जानने में आ रहा हूँ परंतु मुझे खबर नहीं है कि भगवान के केवलज्ञान में मैं स्वयं जानने में आ रहा हूँ! इसलिए 'मैं जानने में नहीं आता' ऐसा थोड़े ही है?! वैसे ही "जाननहार जानने में आ रहा है" वह जीवों को भले ही पता न हो कि 'स्वयं ही जना रहा है' इससे कहीं जानने में नहीं आता ऐसा थोड़े ही है?!

सबके ज्ञान में जाननहार जानने में आता है। यदि जानने में न आता होता तो श्रीसमयसारजी शास्त्र की १७-१८ गाथा अयथार्थ ठहरती। पुनः छठी गाथा में "ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक ज्ञात होता है" वह पाठ झूठा सिद्ध होता। यदि आत्मा वास्तव में न जनाता होता तो तो आत्मअनुभव का अवकाश ही न रहता। इसप्रकार सभी को जाननहार जानने में आता है यह बात शास्त्र से... न्याय से... अनुमान से... और अनुभव से सिद्ध होती है।

पूज्य 'भाई श्री' लालचंदभाई की जन्मजयंती के उपलक्ष में:

भगवान महावीर की दिव्यध्वनि में आया कि "सबको जाननहार जानने में आता है"। श्रीसीमंधर प्रभु की देशना में आया कि "सबको जाननहार जानने में आता है"। जैन शासन के मंगलाचरण में जिनका तृतीय नाम है ऐसे कुंदकुंदप्रभु कहते हैं "जाननहार जानने में आता है उसे तू जान!" जैन दर्शन के गौरववंत आत्मख्याति प्राप्त अमृतचंद्रसूरि कहते हैं: सबको सदाकाल स्वयमेव "जाननहार जानने में आता है"। पंचमकाल के दिव्य दिवाकर पुरुष श्रीकहानगुरु कहते हैं कि: "सबको जाननहार जानने में आता है"।

"सबको जाननहार जानने में आता है" का जाप जपानेवाले; जैन जगत में 'जाननहार जानने में आता है' की आनंद अमृतवर्षा बरसानेवाले पूज्य 'भाईश्री' लालचंदभाई के अमृतमय वचनों का संकलन "जाननहार जानने में आता है" यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए हम धन्यता अनुभव करते हैं।

पुस्तक प्रकाशन के हेतुः

(१). अनादि से जीव के विशेष में दो भ्रांति चलती आई हैं। एक कर्ता की भ्रांति और दूसरी ज्ञाता की भ्रांति। इन दोनों शल्य का नाश किस प्रकार हो!? और जाननहार जानने में आता है -ऐसे स्वानुभूति के पंथ पर ले जाने में यह ग्रंथ उत्कृष्ट निमित्त है।

(२). मिथ्यात्व प्रगट होने की मूल दो भूल इस पुस्तक में बताई हैं। ये दोनों भूल टालकर आत्मा को आत्मा का अनुभव कैसे हो उसके लिए अनुपम अमृतबोध इस प्रकाशन में दिया है। इसप्रकार यह कृति आत्मा के सहज स्वाभाविक गुणों का निर्मल प्रकाश करती है।

(३). जैनदर्शन में कर्ता की तो बात ही नहीं है। क्योंकि आत्मा अकर्ता है। अब जानने की बात है। उसमें दो भाग कर! किसको जानने पर आनंद उत्पन्न होता है?! और किसको जानने पर संसार उत्पन्न होता है?! इसप्रकार आत्मश्रेय मार्ग के पथिक बनाने में यह पुस्तक सक्षम है।

(४). यह पुस्तक आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वांगी शास्त्र है। क्योंकि "मैं जाननहार हूँ" उसमें ध्येय का स्वरूप; "जाननहार जानने में आता है" उसमें ध्येय का और अनादि-अनंत ज्ञेय का स्वरूप एवं परिणाममात्र से रहित ज्ञायक श्रद्धा-ज्ञान में आते ही ध्येय पूर्वक ज्ञेय का स्वरूप; और 'वास्तव में पर को नहीं जानता' उसमें ध्यान का स्वरूप, ज्ञानस्वभाव का स्वरूप, प्रतिभास का स्वरूप आदि का स्पष्ट विवेचन किया है। इसप्रकार व्यवहार का प्रबल निषेध करने के लिए स्वभाव का वीर्य सहज उछल जाता है। इसप्रकार बोधि प्रतिभा युक्त सूक्ष्म मूल विषय को संपूर्ण आलेखन करने में आया है।

(५). इस एक शास्त्र में लाखों शास्त्रों का सार गर्भित है। द्रव्यानुयोग का तो निचोड़ है। अतः १२ अंग के सारभूत यह कृति है। व्यवहार के पक्ष से विमोहित जीवों को अपूर्व तत्त्व के विधान ज्ञायक के सानिध्य में ले जाते हैं।

(६). जैसे भोगभूमि के युगल एकसाथ जन्म लेते हैं और साथ में ही मृत्यु प्राप्त करते हैं, वैसे ही कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि के दोनों दोष साथ ही प्रकट होते हैं और साथ ही अभाव होता है। "मैं जाननहार हूँ, पर को जानता नहीं" उसमें ज्ञेय-ज्ञायक संकर दोष जीता जाता है। साधक को रागादि का प्रतिभास भले हो! परंतु राग जानने में नहीं आता;

उसमें भाव्य-भावक संकर दोष जीता जाता है। ऐसी अपूर्व कला इस शास्त्र में अद्‌भुत रीति से गुँथी हुई है। इसप्रकार दर्शनमोह और चारित्रमोह के अध्यवसान को छेदने की सरलतम विधि इस पुस्तक में घोषित की गई है।

(७). "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"; उसमें ही भेदज्ञान की शुरुआत, परोक्ष अनुमान, प्रत्यक्ष अनुभव, श्रेणी और जगमग केवलज्ञान ज्योति प्रकट होने का संपूर्ण पंथ इस रचना में प्रदर्शित किया है। आशा है कि साधर्मीजन इस पुस्तक का सुंदर लाभ लेंगे।

(८). जिनके करकमलों में यह ग्रंथ आएगा उनका निश्चितरूप से जीवन ही बदल जाएगा। अर्थात् ज्ञेय बदल जाएगा। ज्ञेय बदलते ही दिशा बदलेगी। और दिशा बदलते ही दशा बदलेगी। इसप्रकार इसमें प्रयोग की भूमिका रही हुई है। और ऐसा होने पर चैतन्य की अनुभवरूप चांदनी खिलती है।

(९). इस पुस्तक में यह दर्शाया है कि "मैं पर को जानता हूँ और पर जानने में आता है" यह भूलों का सरदार है। यह सर्व प्रकार के दोषों की उत्पत्ति की खान है। और इसके साथ ही दोषों के परिहार की उत्कृष्ट विधि बताई है कि- "वास्तव में पर को जानता भी नहीं, पर जानने में आता भी नहीं, परंतु जाननहार जानने में आता है"। इसप्रकार समस्त पहेलियों का समाधान इस पुस्तक में सर्वत्र निर्दिष्ट किया है।

(१०). "जाननहार ही जानने में आता है; वास्तव में पर नहीं;" उसमें ही वीतरागता प्रकट होती है। और वीतरागता ही चारों अनुयोग का तात्पर्य है। इसप्रकार वीतरागता प्रकट हो वही इस पुस्तक (प्रकाशन) का प्रयोजन है।

(११). जो जीव विषय-कषाय में रत हैं ऐसे जीव भी; यदि अल्प समय निकालकर **"स्वभाव के लक्ष से"** स्वाध्याय करेंगे तो सारभूत तत्त्व उनके लक्ष में आ जाने पर तत्क्षण ज्ञायकरूप परिणम जायें ऐसा यह अनुपम ग्रंथ है।

(१२). महापुरुषों का प्रत्यक्ष सानिध्य निरंतर नहीं रहता। ऐसे समय में; उनके वियोग काल में... उनका अक्षरदेह पुस्तकरूप प्रकाशित होने पर कल्याणार्थी जीवों को कल्याणकारी सम्यग्दर्शन होने में यह परम आधाररूप होता है।

तत्त्व का सूक्ष्मतापूर्वक निरूपण जैसा पूज्य श्रीलालचंदभाई द्वारा किया गया है, उसका हिन्दी प्रांत में अभ्यास प्रायः न्यून है। अतः भाईश्री की शैली व भाव समझने में पाठकों को कठिनाई होने की संभावना थी। अतएव पू. भाईश्री के कथन की मौलिकता को अक्षुण्ण रखते हुए पाठकों की सुविधा के लिए जहाँ जो योग्य हो वहाँ तद्विषयक स्पष्टता कोष्ठकों में आदरणीय शोभनाबेन द्वारा दी गई है।

मुमुक्षु भक्तों की भावना साकार :

पू. भाईश्री के स्वानुभवरस गर्भित हृदयोद्गाररूप वचनामृतों को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत आनंद हो रहा है। यह पुस्तक मुमुक्षुओं के परिस्पंदित स्नेह के कारण एवं पंचमकाल में तत्त्वज्ञान की प्रभावना हो ऐसी संवेदनमयी भावना से प्रकाशित हुई है।

इस पुस्तक में "पूज्य भाईश्री" की "जाननहार जानने में आता है" की प्रखरता, मौलिकता, ज्ञान की विचक्षणता, सिद्धांतों की गंगा, स्वभाव की सहजता, नास्तिपूर्वक अस्ति के स्वीकार की वज्रता, समकित की सौख्यता, महद् भाव, एक सूत्र के ऊपर इतने गंभीर स्पष्टीकरण की असमान सामर्थ्य, इत्यादि गुण दर्शित होते हैं। वीतरागी रसास्वाद परोसनेवाली यह कृति है। इन वचनामृतों का स्वलक्षी अमूल्य स्वाध्याय वह ही वास्तविक मूल्य है।

मंगल वचनामृतों के संकलनकर्ता और संपादक का एवं सहायककर्ता का आभार:

बहुत-बहुत वर्षों तक जिन्होंने पूज्य "भाईश्री" का सानिध्य अति निकटता से ग्रहण किया है; एवं पूज्य भाईश्री की जिन पर सदा अमी दृष्टि थी ऐसी **आत्मार्थी बाल ब्रह्मचारी शोभना बेन जे. शाह** के द्वारा इन वचनामृतों का संकलन हुआ है। एवं इस समग्र पुस्तक का संपादन भी **शोभना बेन** ने किया है।

पूज्य भाईश्री की प्रवचन धारा में बहते हुए "जाननहार जानने में आता है" के निर्झर को हृदयभाजन में अवधारण करके सूक्ष्म तत्त्वज्ञान को अपनी प्रज्ञा की प्रवीणता के द्वारा वचनामृतों में आकार देकर, बिखरे हुए मोतियों को एकत्रित करके ज्ञान कौशल्य की कुशाग्रता पूर्वक ग्रंथारूढ़ किया। एतदर्थ संस्था उनका खूब-खूब आभार मानती है।

इस पुस्तक का कुशलतापूर्वक हिन्दी अनुवाद करने के लिए संस्था आत्मार्थी कुमकुमबहन का भी आभार मानती है।

तदुपरांत देव-गुरु-धर्म की अर्पणता पूर्वक अनेक साधर्मी जनों का इस कार्य में निस्पृह सहकार मिला है एतदर्थ संस्था उनकी ऋणी है।

हिन्दी संस्करण के प्रसंग पर दो शब्द:

'जाननहार जानने में आता है' की गुजराती आवृत्ति का मुमुक्षु समाज में गहरा अभ्यास होने से अनेक पाठकगण की तरफ से उल्लासमय और प्रमोदपूर्ण हृदयोद्गार मिले हैं। 'जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता' इस विषय में बहुत जीवों को उलझन रहती थी; यह गुत्थी इस पुस्तक का स्वाध्याय होने पर निकल

गई। 'जाननहार ही जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता' इसमें सम्पूर्ण भेदज्ञान की कला और स्वानुभव की अपूर्व विधि प्राप्त होने से योग्य जीवों को अंतर से कोई अपूर्व बल जागृत हुआ है। पंचमकाल में मूसलधार अमृत बरसने से जैन दर्शन के सर्व रहस्य खुल गये हैं।

प्रथम गुजराती आवृत्ति में १००८ वचनामृत लिए थे। उपरांत द्वितीय आवृत्ति में भेदज्ञान विधि प्रेरक ५८ वचनामृतों का समावेश किया गया था। प्रस्तुत संस्करण में सम्पूर्ण विषय को हृदयंगम कराते अधिक ९ वचनामृतों का समावेश किया गया है। हिन्दीभाषी स्वाध्यायी समाज की उत्कंठ भावना थी कि 'भाईश्री' के वचनामृतों का यह संकलन हिन्दी भाषा में उपलब्ध कराया जाए, एतदर्थ प्रस्तुत हिन्दी आवृत्ति का प्रकाशन करते हुए हम अत्यंत गौरव एवं हर्ष का अनुभव करते हैं।

प्रथम तू आत्मा को जान

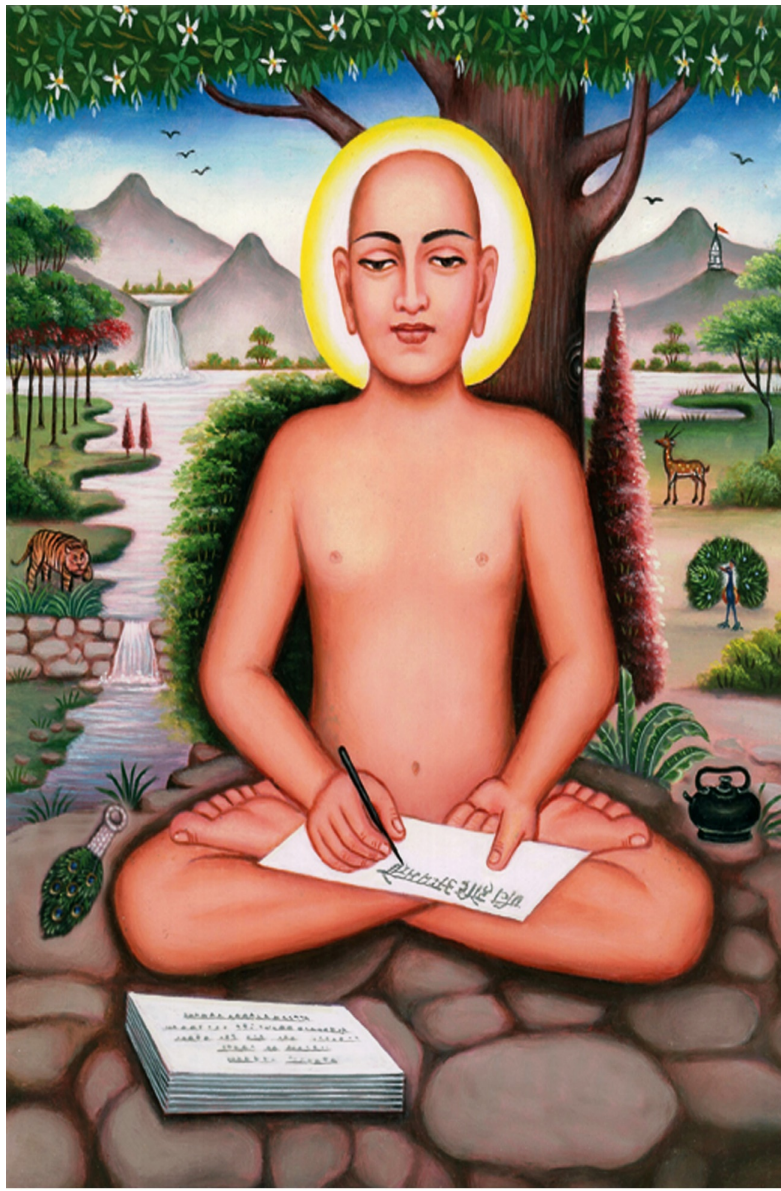

भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव

श्री समयसारजी - स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस - भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वरा थी ऊतरती,
विभावे थी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

अर्पण

अध्यात्म युगसर्जक; अध्यात्मयुगपुरुष; अध्यात्म शिरोमणि
सद्गुरुदेवश्री... कहान गुरुदेव आपश्री ने तो वर्तमान काल में
केवली का विरह भुलाया है। 'सबको ज्ञान जानने में आता है', 'सबको
ज्ञायक जानने में आता है'; और पर को जानना वह ही अपराध है। ऐसा
परमार्थ संदेश देनेवाले आपश्री अध्यात्म सरोवर के
चैतन्य हंस हो। युगों युगों से कर्ताकर्म की भ्रांति से और
ज्ञेय ज्ञायक के संकर दोष से व्यथित, दुखित भव्य
जीवों को मुक्ति की राह प्रदर्शित करके एवं जैनदर्शन के
अनेक रहस्यों को, जैनधर्म के गुप्त खजाने को
आपश्री ने खोल दिया है। आपश्री के द्वारा
प्ररूपित मार्ग को स्वानुभव से प्रमाणित करके
ज्ञाता ज्ञेय के व्यवहार का प्रबलता से
निषेध करानेवाले और जाननहार
जानने में आता है का जागृतबोध
देनेवाले आपके धर्म सुपुत्र
लाल के वचनामृतों को पुस्तकरूप
प्रकाशित करके आपश्री के
करकमलों में सविनय
समर्पित करते
हैं।

“कहानगुरु की दिव्य देशना, स्वभाव में भव्य सिधाओ;
जाननहार जनाये संदेशा, "जाननहार हूँ" जंग जमाओ।"

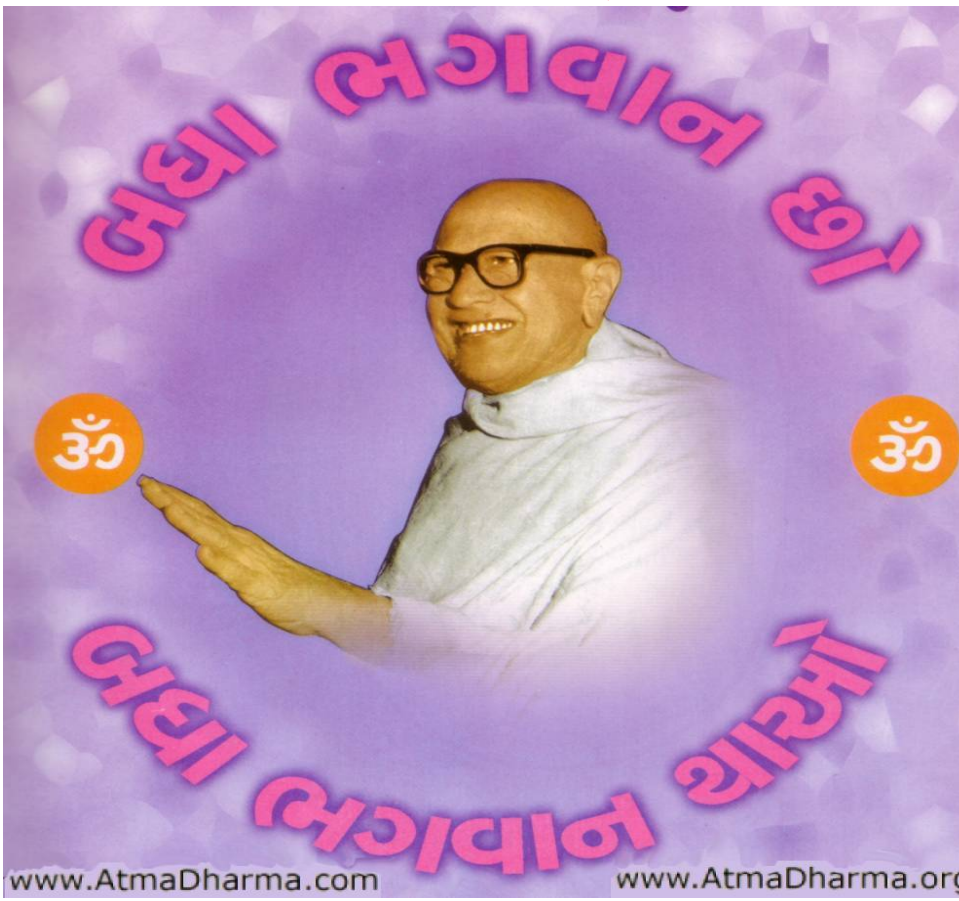

(१) ज्ञानानन्दमयी जाननहार की बंसी बजानेवाले,
(२) अध्यात्म युगपुरुष; अध्यात्ममूर्ति, परमोपकारी
पू. सद्गुरुदेव श्री कानजी स्वामी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत्, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
राग-द्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अर्पण

हे! कहानलाल! आपश्री अनेक वर्षों से प्रवचन , चर्चा आदि में मुख्यरूप से दो ही बातें करते हो। परिणाम की कर्ताबुद्धि और परिणाम की ज्ञाताबुद्धि - वह अनंत संसार का कारण है। पुनः पू. गुरुदेवश्री के प्रताप से द्रव्य का निश्चय तो मिला था एवं ज्ञान की पर्याय का निश्चय भी बताया ही था। परंतु उसके ऊपर जो ध्यान खिंचना चाहिए वह खिंचा नहीं। आपश्री ने ज्ञान की पर्याय के निश्चय पर ध्यान खींचकर; आत्मानुभव की पूर्ण विधि दर्शायी है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का निश्चय न मिले तब तक अनुभव नहीं होता। "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता" इसमें अंतर्मुख होने की विधि तो बताई ही है; परंतु श्रेणी तक की बात आ गई है। आपश्री के मुख से निकले हुए परम अमृतमय १०७५ फूलों को ग्रंथ में गूँथकर आपश्री के करकमलों में सविनय सादर अर्पण करते हैं।

“कहान लाल ध्वनि बरसी, जाननहार ज्योति जगाई ,
ज्ञानानन्द दृष्टि तेरी, आतम अनुभव से प्रमाणी।"

स्व को जानना छोड़कर, पर को जानना यह भावबंध की पराकाष्ठा है

ॐ मैं जाननहार हूँ, ॐ
मैं करनार नहीं हूँ।

ॐ जाननहार ही जानने में आता है ॐ
वास्तव में पर जानने में नहीं आता।

पूज्य भाईश्री लालचंदभाई

आत्मा अकर्ता है यह जैनदर्शन की पराकाष्ठा है और
वो ही जानने मे आ रहा है यह ज्ञान की पराकाष्ठा है।
विधि संबंधी सरलता की पराकाष्ठा समयसार गाथा १७-१८ मे बतायी है
(श्री कहानगुरु के लघुनंदन स्वानुभव विभूषित पूज्य 'भाईश्री' लालचंदभाई)

जीवमात्र को जाननहार जानने में आता है- ऐसी ज्योति जगानेवाले ;
“जाननहार हूँ” और "जाननहार जानने में आ रहा है”, ऐसा जागृत जीवन
जीनेवाले पू. "भाईश्री" लालचंदभाई।

संकलित कलम से...

श्री जिनेन्द्र भगवंतो के द्वारा; एवं जिनकी परिणति बारंबार "जाननहार जानने में आता है" ऐसे प्रचुरभाव से स्वभावारूढ़ होकर स्वभाव का अभिनंदन करती है; ऐसे कुंदामृत आचार्यों के द्वारा प्राप्त सुधारस को अपने ज्ञानसागर में अप्रतिहत भाव से अवधारण करके जीवमात्र को "जाननहार जानने में आता है" का मन्त्र देनेवाले गुणमूर्ति श्री कहान गुरुदेव के गुणगान की गौरवगाथा शब्दों में अनिर्वचनीय है।

जैसे लौकिक में तीन वस्तुएँ उत्तम गिनी जाती हैं:- (१) कल्पवृक्ष (२) कामधेनु (३) चिंतामणि, क्योंकि इन तीनों वस्तुओं की गणना इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति कराने में होती है, वैसे ही 'जाननहार जानने में आता है' कल्पवृक्ष है, कामधेनु है और चिंतामणि है। इस ग्रंथ में साक्षात् मोक्षसुख प्राप्त होने का उत्कृष्ट निमित्तपना रहा हुआ है। जगत में उपदेश दाता तो बहुत देखने को मिलते हैं परन्तु सिद्धांत दाता तो कोई अति विरले महापुरुष ही होते हैं।

हे धर्मपिता कहानलाल! दिनरात हम फूलें-फलें ऐसा मंत्र आपश्री ने बहुत-बहुत करुणा करके हम बालकों को दिया है। "मैं जाननहार हूँ" ऐसा जिसे समझ में आया उसे ही **"जाननहार जानने में आता है।"**

यह भेदज्ञान की तीक्ष्ण 'चाबी' हाथ में आते ही ऐसा लगना चाहिये कि : यह तो रत्न चिंतामणि निधान मिल गया! अरे! भवसमुद्र तैरने की नाव मिल गई! ऐसा कहनेवाले हमें कौन मिलते!! इससे ज्यादा अब क्या चाहिये!! हमारा सर्वस्व आपने हमें दिया है।

*** वस्तुस्थिति -> जाननहार जानने में आता है।**

*** मेरी स्थिति -> जाननहार जानने में आता है।**

*** परिस्थिति-> पर की स्थिति। अर्थात् पर की ओर मुड़ी हुई ज्ञान की पर्याय में भी जाननहार जानने में आता है।**

यह स्वभाव की बात आयी है कि : पर को जानता नहीं हूँ, पर जानने में आता नहीं है; "जाननहार जानने में आता है" एवं ज्ञान जाननहार को ही जानता है। इस बात की जो कीमत करेगा वह नियम से मोक्षगामी ही होगा। इसके फल में केवलज्ञान होगा, यह इतनी सच्ची और पक्की बात है। प्रत्येक को हृदय में टंकोत्कीर्ण कर लेने जैसी है।

इसप्रकार श्रुतज्ञान सागर अमृत की हिलोरें लेते हुये अद्भुतातीत प्रकृष्ट प्ररूपणा की। वचन अगोचर तत्त्व है उसका अप्रतिहत भाव से सन्देश दिया है। जहाँ वज्रवाणी छूटी कि : "ज्ञान पर को नहीं जानता"; वहाँ तो मुमुक्षु जगत में खलबली मच गई। अनेक उपसर्गों के बीच आपश्री सुमेरू के समान अचल और अडिग रहे। त्रिकाल

सनातन सैद्धान्तिक वस्तुस्वरूप की निःशंक बुलंद गर्जना करते हुए और स्वरूप की साधना करते हुए आगे बढ़ते रहे। मंगल सिद्धांत की मंगल उद्घोषणा की और संसारी जीवों को कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि के नाश की औषधि दी। इसप्रकार ध्येयपूर्वक ज्ञेय भाव में आमंत्रित किये।

जिसप्रकार प्रवचनसारजी शास्त्र की ११४ गाथा की टीका में **'अनुक्रम'** शब्द लिया है; उसीप्रकार इस पुस्तक में दो पाठ हैं और ये दोनों पाठ अनुक्रम से लिए हैं। सबसे पहले कर्ताबुद्धि के शल्य पर एटमबम फेंका है और फिर ज्ञाताबुद्धि के शल्य पर एटम बम फेंका है। पहला पाठ है 'करनेवाला नहीं वरन् जाननेवाला है'। दूसरा पाठ "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" जहाँ कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि का निषेध करके स्वभाव का स्वीकार हुआ वहाँ साक्षात् ज्ञाताभाव में पदार्पण हुआ। इसप्रकार यह ग्रंथ मिथ्यात्व का जहर उतारनेवाला है।

और **"जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर नहीं"**, इस सूत्र के परिज्ञानपूर्वक प्रत्येक वचनामृत को विविध न्यायों से... विविध तर्कों से... भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से... इस एक ही सूत्र का प्रतिपादन होने से इस पुस्तक का नाम अस्तिपरक **"जाननहार जानने में आता है"** रखा है। वो कहावत है कि "यथा नाम तथा गुण।" जैनदर्शन की इस भव्यकृति को मुमुक्षुगण के समक्ष रखते हुये अत्यंत हर्ष हो रहा है।

श्री समयसारजी में कर्ताबुद्धि के नाश के लिए उत्कृष्ट न्याय दिया कि: **'तद्रूपो न भवति'**। उसरूप नहीं होता इसलिए कर्ता नहीं है। वही सिद्धांत श्री सेटिका की गाथा में लगाना। पर को क्यों नहीं जानता? तन्मय नहीं होता इसलिए नहीं जानता। पर में तन्मय होऊँ तो पर को जानूँ न? इसप्रकार कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि के नाश का न्याय एक जैसा दिया। **जो जिसका होता है वह उसे ही प्रसिद्ध करता है।**

चारों तरफ से संशोधन करके इन महापुरुष ने कैसा माल दिया है! कोई जीव प्रतिभास के स्वरूप का विचार करे तो भी भेदज्ञान, लक्ष के स्वरूप का विचार करे तो भी भेदज्ञान और ज्ञान के मूल स्वभाव का विचार करे तो भी भेदज्ञान।

एक बार देवलाली में पूज्य भाईश्री से किसी मुमुक्षु भाई ने प्रश्न पूछा कि: समयसार को भाव से पढ़ना अर्थात् क्या? पूज्य भाईश्री ने कहा, "मैं तो ज्ञानानंद एक आत्मा जाननहार... जाननहार... जाननहार हूँ। आहा! मुझे तो "जाननहार ही जानने में आता है।" प्रत्यक्ष होने से पहले मुझे परोक्ष में "जाननहार जानने में आता है" उसे 'भाव से पढ़ा' कहने में आता है।

इसप्रकार इस ग्रंथ में स्वानुभव प्रगट करने का अत्यंत सुगम और सरल पंथ बताया है। वह भिन्न-भिन्न कोटि के आत्मार्थी जीवों को अत्यंत उपकारी है। जो कोई

आत्मार्थीजन अतिशय उल्लसित वीर्यपूर्वक इन वचनामृत बिन्दुओं का गहरा 'निजी' स्वाध्याय करेगा और उसमें रहे हुए भावों को भावभासन में लेगा वह अवश्य परमानंद को प्राप्त होगा ही।

हमारा प्रथम पुष्प 'ज्ञान से ज्ञान का भेदज्ञान' एवं द्वितीय पुष्प "द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव" इन दोनों पुस्तकों के वचनामृतों को इस पुस्तक में नहीं लिया है। अतः स्वाध्यायप्रेमी को इस पुस्तक के स्वाध्याय के साथ-साथ उन दोनों पुस्तकों के वचनामृतों का भी स्वाध्याय करने हेतु विनती है।

आज से लगभग तीस वर्ष पहले "जाननहार जानने में आता है" के वचनामृतों को अपने निज स्वाध्याय के लिए एकत्रित करने का मैंने निर्णय किया था। पूज्य भाईश्री के प्रवचनों में से, सामूहिक चर्चाओं में से, अंतरंग चर्चाओं में से... ऑडियो कैसेट में से.. वीडियो कैसेट में से वचनामृत इकट्ठे होते गए; और **"बूंद-बूंद से सरोवर भरता है"** इस कहावत के अनुसार इस धन्य पल में... धन्य घड़ी में... पुस्तकाकार के रूप में सार्थक हुई है। बिखरे हुए मोतियों को पुस्तकरूपी माला में पिरोया हुआ देखकर मुझे सुखद आश्चर्य होता है। मेरी मन की उर्मियाँ आनंद से खिल उठी हैं। "जाननहार जानने में आता है" इस कृति में बारह अंग और चौदह पूर्व का सार भरा है। "सागर को गागर" में नहीं अपितु एक प्याले में समा दिया है। यह गाढ़ अमृत का प्याला भव्य आत्माएँ आसानी से 'पी' सकें ऐसा है।

इस रचना में केवल प्रैक्टिकल और अनुभव की प्रधानता रही हुई है। इस ग्रंथ में उपदेश की मुख्यता नहीं है। साध्य की सिद्धि, प्रयोजन की सिद्धि तत्क्षण कैसे हो उसकी उपादेयता पूर्वक इस कृति का सर्जन हुआ है। इस मंगलमयी परम पवित्र वचनामृतरूप मोतियों को माला में पिरोकर ग्रंथरूप में प्रकाशित करने का हमारी संस्था ने जो निर्णय किया है वह वास्तव में बहुत ही प्रशंसनीय और प्रमोदनीय है।

इस पुस्तक प्रकाशन में मुझे प्रत्यक्षरूप से या परोक्षरूप से जो सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सभी की मैं आभारी हूँ। इस पुस्तक के संकलन और संपादकीय कार्य में मुझे प्रोत्साहित करने में आत्मार्थी भाई श्रीशांतिभाई झवेरी का, आत्मार्थी नवीनभाई बोघानी का एवं आत्मार्थी चेतनभाई का मैं अंतःकरण से आभार मानती हूँ। इससे पूर्व की दोनों पुस्तकों में एवं इस पुस्तक में जिनके द्वारा सुंदर मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, ऐसी आत्मार्थी बहनश्री शैलाबेन बोघानी की इच्छा न होते हुए भी... मैं अंतःकरण पूर्वक आभार प्रदर्शित किए बिना नहीं रह सकती। और जिन्होंने माता की तरह सदा मुझे वात्सल्य दिया और मेरे प्रत्येक कार्य में मेरे साथ ही खड़ी हैं एवं मेरी अलग-अलग डायरी में लिखे हुए बोलों को एक डायरी में लिखकर देने के लिए आत्मार्थी चंदनबेन पुनातर का हृदय से

आभार मानती हूँ।

इस ग्रंथ का संकलन और संपादन करने से मुझे जो अंतरंग लाभ हुआ है वह अवर्णनीय है। यह कार्य मैंने अपने निज स्वभाव की पुष्टि और देव-गुरु-धर्म की यथार्थ प्रभावना के हेतु से किया है। यह महान कार्य पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य भाईश्री के पुण्योदय से एवं मुमुक्षु भाई-बहनों के सहयोग से पूर्ण हुआ है।

इस ग्रन्थ की आदि से पूर्णता तक के मेरे प्रेरणा स्रोत पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य भाईश्री हैं। उनके मंगल आशीर्वाद से यह कार्य परिसंपन्न हुआ है। अंत में "जाननहार जानने में आता है" पुस्तकरूपी पुष्पमाला पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य भाईश्री के कर-युगल में सविनय सादर भाव से समर्पित करती हूँ। सभी सत्पुरुषों के... चरणों की अनुरागी...!

बा. ब्र. शोभनाबेन जे. शाह

9724729833

सोनगढ़

प्रत्येक जीव यद्यपि अपनी पर्याय की सामर्थ्य को ही जानता है। किन्तु उसे अपने ज्ञान का भरोसा नहीं आता इसलिए वह पर का बहुमान करने में रुकता है और स्व को भूल जाता है; परंतु "मैं अपनी ज्ञानसामर्थ्य को जानता हूँ, पर को मैं वास्तव में नहीं जानता और मेरी ज्ञानसामर्थ्य तो परिपूर्ण है"; इसप्रकार स्व की महिमा आये तो किसी पर की महिमा न आये।

(गुज. आत्मधर्म अंक नं. २६, पेज नं. ५७)

संपादक की कलम से...

मंगलाचरण

"जानूँ मैं जाननहारा... देखूँ मैं देखनहारा...
शाश्वत चेतन भगवाना... बस यही समय का सारा..."

जैनदर्शन की प्राचीनता यह है कि "जाननहार जानने में आता है"
जैनदर्शन की अर्वाचीनता यह है कि "जाननहार जानने में आता है"
जैनधर्म की समीचीनता यही है कि "जाननहार जानने में आता है।"

और "जाननहार जानने में आता है" यही तो जैनदर्शन की अनुपमता है न! इसप्रकार सकल साध्य की सिद्धि का एकमात्र उपाय "जाननहार जानने में आता है" यह ही है।

जिसप्रकार 'जाननहार जानने में आता है' ध्रुवस्वभाव की ध्रुवभूमि में ध्रुवता से प्रतिष्ठित है; उसीप्रकार 'जाननहार जानने में आता है' ऐसी मंगलमयी भूमि में ही मंगलमयी सम्यग्दर्शन का अवतरण होता है। इसप्रकार "जाननहार जानने में आता है" वह निजानंद मधुबन की माधुर्यता है।

"जाननहार जानने में आता है" यह सुरंग का ऐसा भूगर्भ मार्ग है कि जिसका दूसरा दरवाजा सीधा मोक्ष में खुलता है। "जाननहार जानने में आता है" यह ऐसे गंभीर सागर का गंभीर सूत्र है कि जिसमें से सैंकड़ों सिद्धांत निकलते हैं। हे पूज्य भाईश्री! आपने तो सिद्धांतों की गंगोत्री बहाई है। जो मात्र स्वसंवेदन प्रत्यक्ष स्वभाव है ऐसे अकथ्य स्वभाव के विधानों को विदित करके "जाननहार जानने में आता है" के ज्ञानदीपक प्रज्ज्वलित किये हैं।

संत कहते हैं कि: कदाचित् तू स्वभाव तक न पहुँच सकता हो तो हम तुझे स्मरण करने की कहाँ मना करते हैं!

स्मरण --> "जाननहार जानने में आता है"
स्वभाव --> "मैं जाननहार हूँ"

"जाननहार जानने में आता है" उसमें दूर रहकर आत्मा को जानता था; परंतु "मैं जाननहार हूँ" उसमें जाननहार होकर जाननहार को जाना। "जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है" इस बात की कितनी कीमत भासित हुई होगी! इसमें भगवान आत्मा कितना ऊर्ध्व होता हुआ दिखता होगा! इसमें कितनी चोट लगती होगी!! कि: ये महापुरुष जीवन के अंत समय तक दो ही बात करते रहे।

"मैं जाननहार हूँ; करनेवाला नहीं हूँ।"

"जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता।"

ये स्वानुभव में से आये हुये भाव आगम में से एवं पूज्य श्रीसद्गुरुदेव की परमागम प्रवचन धारा में से सहज मिल जाते हैं क्योंकि **"अनंत ज्ञानियों का अभिप्राय एक ही होता है।"**

उन दिव्य पुरुष की दिव्य वाणी की एक झलक:-

जाननहार जाननहार की पर्याय को ही प्रकाशित करता है रागादि को नहीं... अनंत भव कर-करके मर गया है (तो भी) विमुख नहीं होता, बाहर ही बाहर की नजरें।

* आहाहा! अभी तो बाहर (में) 'करने' की नजर; एक बात।
* फिर बाहर को जानने की नजर; दो बात।
* फिर मेरे में जानने में आता है वह यह जानने में आता है! तीसरी बात।
* यहाँ कहते हैं मेरे में ज्ञात होता है वह मैं ज्ञात होता हूँ; यह चौथी बात।

आहाहा..! भाषा तो एकदम सादी है और भाव समझ में आयें ऐसे हैं।

(श्री समयसार गाथा २९४ के प्रवचन में से। दि. ६-१२-७९, प्रवचन नं. ३६१)

श्री कुंदकुंदप्रभु ने १७, १८ गाथा में कहा कि : जाननहार को जान! उन्होंने विशेष पर्यायभाव से बात कही। जबकि उसी गाथा में अमृत प्रभु ने कहा कि : "तुझे जाननहार जानने में आ ही रहा है।" उन्होंने सामान्य ज्ञान स्वभाव की वस्तुस्थिति से बात की। ज्ञान में निरंतर जाननहार ज्ञात होता है वह स्वभाव बताया। वैसे ही हे कहानलाल! आपश्री ने **"जाननहार जानने में आता है"** के मेघ बरसाये हैं। सीमंधर भगवान की दिव्यध्वनि का स्वर हमें प्राप्त हुआ है।

पुनः श्री कुंदकुंदप्रभु ने समयसार शास्त्र में कर्ताकर्म अधिकार विशिष्ट; सबसे बड़ा और स्पेशल लिखा है। उसके जैसा कर्ताकर्म का अधिकार जिनागम में अन्यत्र दूसरी जगह देखने को मिलना मुश्किल है। वैसे ही, हे कहानलाल! आपश्री ने पंचम काल में **"जाननहार जानने में आता है"** के युग का सर्जन किया है। आपश्री ने जो गाढ़ परमामृत बहाया है वह अद्वितीय और अजोड़ है। इस काल में गुप्त से गुप्त रहस्यों का उद्घाटन हुआ है।

मुझे निरंतर "जाननहार ही जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता" यह कोई साधारण बात नहीं है। यह असाधारण बात है। यह अनुपम विधि आपश्री ने भव्य जीवों को निशंकरूप से... निर्भयपने प्रदान की है।

वास्तव में पर जानने में नहीं आता उसमें पर का प्रतिभास तिरोभूत होता है और

दृष्टि में से अभाव हो जाता है। ज्ञान में सामान्य का आविर्भाव होने पर विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान अभाववत् हो जाता है। इस पर से चार सिद्धांत फलित होते हैं।

(१) वास्तव में पर जानने में नहीं आता- उसमें पर के प्रतिभास का स्वीकार होता है।

(२) पर का तो मात्र प्रतिभास ही होता है- ऐसा विश्वास आने से पर का लक्ष छूट जाता है।

(३) "मुझे जाननहार जानने में आता है" ऐसा विश्वास आने से प्रतिभासरूप पर्याय का भी लक्ष छूट जाता है।

(४) "मैं जाननहार हूँ" उसमें "जाननहार जानने में आता है" ऐसे भेद का लक्ष भी छूट जाता है।

ऐसे ब्रह्मसूत्रों की रचना सहज ही हो गई है। इन वचनामृतों में निजानंद के झरने बहाये हैं।

जिज्ञासा :- ज्ञान पर को कब जान सकता है?

समाधान :- ज्ञान पर से तन्मय हो तो ज्ञान पर को जान सकता है। यदि ज्ञान पर के सन्मुख हो तो पर को जान सकता है। ज्ञान पर को जानने जाए तो तो आत्मा का नाश हो जाये और ज्ञान में परवस्तु जानने में आये तो ज्ञान का नाश हो जाये। **इसलिए वास्तविकता यह है कि ज्ञान पर से तन्मय भी नहीं होता और पर के सन्मुख भी नहीं होता। ज्ञान ज्ञायक की तादात्म्यता कभी भी छोड़ता नहीं, इसलिए वास्तव में ज्ञान पर को नहीं जानता।**

ज्ञान का स्वभाव एक समय भी यदि स्व को जानना छोड़े, तो तो पर को जाने! लेकिन एक समयमात्र भी स्व को जानना छोड़ता नहीं अतः ज्ञान वास्तव में पर को जानता ही नहीं है। इसीप्रकार लक्षरूपता- वह ज्ञान का मूल स्वभाव होने से ज्ञान वास्तव में पर को नहीं जानता। ज्ञान की स्वच्छता में कोई भी पदार्थ प्रतिबिंबित हुए बिना रहता नहीं। इसलिए वास्तव में पर को जानता नहीं। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में मंगलाचरण में कहा है कि : **"दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।"**

इससे सिद्ध होता है कि बहिर्मुख ज्ञान में भी वास्तव में पर जानने में नहीं आता; उसीप्रकार अंतर्मुख ज्ञान में भी **वास्तव में** पर जानने में नहीं आता। श्री समयसारजी शास्त्र में कहा है कि : आत्मघाति! आत्मा को तो जानता नहीं; किन्तु आत्मा के असाधारण लक्षण को भी नहीं जानता। ज्ञान के असाधारण लक्षण को जाने तो भी आत्मज्ञान उदित हो जाए ऐसा यह सर्वस्व ज्ञान स्वभाव है।

आपश्री ने अनंत करुणा करके **वास्तव** शब्द का रहस्य प्रकाशित किया है। यह

बात डोंडी पीटकर कही है। वास्तव में **पर जानने में नहीं आता अपितु पर का प्रतिभास होता है; उसमें ज्ञाता-ज्ञेय की भ्रांति का निषेध होता है। "मैं जाननहार हूँ और जाननहार ही जानने में आता है" उसमें ज्ञाता ज्ञेय का भेद विलय को प्राप्त होकर अभेद का अभेदभाव से अनुभव होता है।**

इसप्रकार ज्ञानस्वभाव का गहन रहस्य आपने न समझाया होता तो प्रतिभास का स्वरूप समझ में न आता और लक्ष का स्वरूप भी समझ में न आता। लक्ष के स्वरूप को समझे बिना 'पर को नहीं जानता' ऐसा निषेध न आता। और प्रतिभास के स्वरूप को समझे बिना भेदज्ञान की विधि में किस तरह से आता! और भेदज्ञान की विधि में आए बिना स्वानुभवमयी ज्ञानत्व किसप्रकार से प्रकट होता?

(१) **"Short and Sweet"** ऐसा यह छोटा सा सूत्र अर्थात् पूज्य भाईश्री का हृदय। इस सूत्र के अंदर गहराई, माधुर्यता और गहनतारूप सिद्धांतों का सागर कैसा लहरा रहा है!

*** "मैं जाननहार हूँ" यह ध्रुव दल की गहराई है।**

*** "जाननहार जानने में आता है" यह आत्मा के ज्ञान की माधुर्यता है।**

*** "वास्तव में पर जानने में नहीं आता"** यह पराकाष्ठारूप **अध्यात्म की गहनता है।** इस छोटे से सूत्र में बारह अंग किस तरह से समाये हुये हैं उसकी एक झलक... **"अमृत वर्षा"** में आलेखित की हुई है।

(२) जीव प्रमाण से बाहर जाये तो पर से एकत्वबुद्धि। जीव प्रमाण में अटके तो पर्याय से एकत्वबुद्धि, तो क्या करना? द्रव्य के प्रमाण में से द्रव्य के निश्चय में आना। पर्याय के प्रमाण में से पर्याय के निश्चय में आना। वह किस प्रकार से आना? उसका विस्तृत वर्णन **"अस्ति-नास्ति भेदज्ञान द्वार"** में लिया है। अनादि काल से अज्ञानी प्राणी को प्रमाण का पक्ष होने से... प्रमाण का ही लक्ष रहा करता है। अब प्रमाण में से नय में किस प्रकार आना और नयपूर्वक प्रमाण ज्ञान किस प्रकार हो- ऐसा आगम-आध्यात्म का सुंदर विवेचन इस भेदज्ञान द्वार में लिया हुआ है।

मेरी प्रज्ञा की अल्प योग्यता होते हुये भी एक नम्ररूप से साहसयुक्त प्रयास किया है। भव्य आत्माओं को संसार परिणाम से हटाकर क्षणभर में मोक्षमार्ग के सन्मुख सहजरूप से ले जाये ऐसी सचोट बात धर्म-धुरंधर आचार्यों के, ज्ञानियों के, आगम के आधार से प्रस्तुत की है। आशा है कि इस प्रकरण से भव्यों को भेदज्ञान ज्योति में तीक्ष्णता और बलवंतता प्राप्त होगी।

हे पूज्य भाईश्री! आपकी दिव्यवाणी में आता हुआ एक-एक न्याय स्वानुभवमयी अतीन्द्रिय धारा का अभिषेक प्राप्त करके ही मुखरित होता था। आपका जीवन ही

"जाननहार जानने में आता है" का साक्षात् ज्वलंत उदाहरण है। एक-एक वचनामृत जैन दर्शन के मूल सिद्धांतों को मूल में से उजागर करता है। "जाननहार जानने में आता है" वह आनंद का मूल स्रोत है; इसलिए "जाननहार जानने में आता है" के एक-एक वचनामृत में से आनंद के झरने झरते हैं।

लौकिक में तो रत्नाकर को अंजुलि के द्वारा, भास्कर को दीपक के द्वारा, दिव्यध्वनिरूप सरस्वती को मंगलाचरण के द्वारा अर्घ्यावली अर्पित की जाती है। परंतु ज्ञानमार्तण्ड कहानलाल! आपको मैं अल्पप्रज्ञ किस प्रकार से अर्घ्यावली अर्पित करूँ?

"जाननहार जानने में आता है" के धर्म निर्झर बहानेवाले कहानलाल! आपश्री तो द्रव्य से और भाव से "जाननहार जानने में आता है" में प्रतिष्ठित हो। इसलिए "जाननहार जानने में आता है" ऐसे अभेदभाव से परिणमना वही वास्तविक अर्घ्यावली अर्पित की हुई गिनी जाती है। अंत में सभी को जाननहार जानने में आये वही जय जिनेंद्र।

बा. ब्र. शोभनाबेन जे. शाह
(सोनगढ़)

यहाँ तो कहते हैं : भगवान! तू पर को
जानता ही नहीं। भगवान लोकालोक को
जानते हैं ऐसा कहना वह तो असद्भूत
व्यवहार है। भगवान! तू पर को जानता ही नहीं।
(पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन, प्रवचनसार गाथा ११४ में से)

आ...हा...हा...! वे (कहते हैं कि) परद्रव्य का कर्ता न माने
तो दिगंबर नहीं ; यहाँ तो कहते हैं
कि...पर को जाननेवाला हूँ ऐसा माने वह दिगंबर नहीं।
(पूज्य गुरुदेवश्री के दि. २९-०९-७७ के प्रवचन में से)

"मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमोगणी!
मंगलम् कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्!"

अमृतवर्षा

जाननहार के आश्रय से जाननहार को जाननेवाले;
जाननहार जानने में आता है के ज्योतिर्ध;
जाननहार जानने में आता है के उत्साही;

जाननहार जानने में आता है के पारगामी;
पूज्य "भाईश्री" लालचंदभाई जयवंत वर्तो... जयवंत वर्तो।

"जाननहार जानने में आता है" के पुरस्कर्ता, हे पूज्यवर श्री! आपने कुंद अमृत कहान की श्रुत अमृत सरिता में से, प्राभृत भाजन को ज्ञान मंजूषा में अभिसिंचित करके, परमागम की पवित्र धारा का ब्रह्म मृदु प्रासुक नीर अर्थात् **"जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"** का यह सद्बोधात्मक अर्चन भेंट किया है जो भव्य जीवों के कर्णरूपी अंजलि के लिए परमामृत है। ऐसे निकृष्टकाल में मधुरम् से मधुरम् दक्ष तत्त्वज्ञान की मूसलधार अमृत वर्षा बरसाई है। इस परमोत्कृष्ट ज्ञानामृत को जो धारण करेगा वह नियम से अल्प समय में परमानंदमयी सुधारस का भाजन होगा और अल्पकाल में कैवल्य पवित्रता में निःशेषरूप से निमग्न होगा।

हे कहानलाल! परमागम रत्नाकर का मंथन करके आपश्री ने दिगम्बर प्रांगण में जैनदर्शन की अनेक निधियों की रत्नावली बरसाई है। प्रति समय उद्योत होते हुए ज्ञान मार्तंड में से नए-नए उन्मेषों का अमृत सहज तीर्थपने को प्राप्त हुआ है। ऐसे ही धर्म का अधिष्ठान स्थापित करती हुई और चित्तभूमि को मनोहर करती हुई आपकी दिव्यवाणी जयवंत वर्तती है। इस सरस्वती की सर्वज्ञ के साथ सीधी संधि बुनी हुई है। इसका मूल बहुत बहुत गहरा है। भावलिंगी संतो के पीछे वन जंगल में भ्रमण करते हुए जो बात मिलनी दुर्लभ है, वह बात हमें घर बैठे ही प्राप्त हुई है।

"जाननहार जानने में आता है" वह पूर्णता के लक्ष से ही प्रस्थान है। पुनः "जाननहार जानने में आता है" वह पूर्णता के लक्ष से ही अंतःस्थान है। इसलिए सर्व जिनेंद्र भगवान की दिव्यध्वनि का संक्षिप्त सार और हमारे निज स्वसंवेदन का सार इतना ही है कि : **"मैं जाननहार हूँ करनेवाला नहीं, जाननहार जानने में आता है वास्तव में**

पर जानने में नहीं आता।" इसमें बारह अंग और चौदह पूर्व के सार को संक्षिप्त करने की पराकाष्ठा रही हुई है। और इसके साथ श्रीमद्जी का सूत्र याद आता है कि : **"आगम का मर्म ज्ञानियों के हृदय में समाया हुआ है।"** इस सूत्र को आपश्री ने परिपूर्णरूप से सत्यार्थरूप से और विशदरूप से सार्थक किया है।

(१) "जाननहार जानने में आता है" सूत्र में कितने भाव समाये हुए हैं वह बतानेवाले पूज्य भाईश्री :

जैसे समयसार की छठवीं गाथा के पहले पैराग्राफ में 'ज्ञायक' शब्द है; और दूसरे पैराग्राफ में भी 'ज्ञायक' शब्द आया। पहले पैराग्राफ का 'ज्ञायक' और दूसरे पैराग्राफ का ज्ञायक, उन दोनों ज्ञायक के वाच्य में अंतर है। निर्विकल्प ध्यान के काल में अंतर अंतररूप रह गया और अंतर का दिखना बंद हो गया यही जैनदर्शन की सुंदरता है।

तदुपरांत संपूर्ण समयसार में भगवान आत्मा को 'ज्ञानमात्र' कहते आये हैं। "ज्ञानमात्र आत्मा" कहने पर दृष्टि का विषय भी होता है और "ज्ञानमात्र आत्मा" कहने पर (अभेद ज्ञेय) ज्ञान का विषय भी होता है। पर्याय की नास्ति, ऐसा "ज्ञानमात्र आत्मा" दृष्टि का विषय है। ऐसे ध्रुव द्रव्य की जहाँ दृष्टि हुई वहाँ दृष्टि और दृष्टि का विषय कथंचित् अभिन्न हुआ ऐसा ज्ञान परिणाम सहित का आत्मा वह भी "ज्ञानमात्र" है। इसप्रकार अनुभव का विषय "ज्ञानमात्र" और अनुभव हुआ वह भी "ज्ञानमात्र"। "ज्ञानमात्र" में ध्येय और ज्ञेय के भेद समा जाते हैं। उसी प्रकार...

"जाननहार जानने में आता है" इस एक ही सूत्र में एक ही समय में ध्येयरूपता और ज्ञेयरूपता देखने को मिलती है। वह किस प्रकार से... वह देखते हैं।

*** पहला अर्थ :-** "जाननहार" अर्थात् अनंतगुणों का अभेद एकत्व ऐसा सामान्य ज्ञायक। "जानने में आता है" अर्थात् जो ध्येय है वही उपादेयभूत ज्ञेय है। इसप्रकार 'जाननहार' और 'जानने में आता है'- उसमें मात्र दृष्टि का विषय ध्रुव ज्ञायक ही आता है।

*** दूसरा अर्थ :-** "जाननहार" अर्थात् निष्क्रिय परमात्मा; और वह किसमें जानने में आता है? वह वर्तमान वर्तते हुए सामान्य उपयोग लक्षण में तादात्म्यपने सभी को ज्ञात होता है। इसप्रकार यह कर्मोपाधि रहित अनादि अनंत निरपेक्ष प्रमाणज्ञान का विषय ऐसा ज्ञायक हुआ।

*** तीसरा अर्थ :-** "जाननहार जानने में आता है" यह अनादि अनंत वस्तुस्थिति है। जाननहार अर्थात् सामान्य ज्ञायक और जानने में आया अर्थात् विशेष शुद्धोपयोगरूप परिणाम। विशेष ज्ञानपरिणाम में वस्तु का स्वीकार होने पर 'ध्येयपूर्वक ज्ञेय हुआ'। "मैं जाननहार हूँ" ऐसा विशेष में परिणमन हुआ। जाननहार भी स्वयं और जानने में आया भी

स्वयं- ऐसा अनुभव हुआ। यह अध्यात्म प्रमाणज्ञान का विषय हुआ। यहाँ प्रयोजन सिद्ध हुआ।

इसप्रकार "जाननहार जानने में आता है" उसमें एक ही समय में एकसाथ कितने भाव समाए हुए हैं वह देखते हैं।

"जाननहार जानने में आता है" वह श्रद्धा का ऐक्य है। (अनंत गुणों से अभेद मात्र सामान्य।) **"जाननहार जानने में आता है"** वही ज्ञान का ऐक्य है। (द्रव्य गुण और निर्मल पर्याय से अभेद।) इसलिए **"जाननहार जानने में आता है"** ऐसे शुद्धनय के बिना ध्येय की सिद्धि नहीं होती। वैसे ही **"जाननहार जानने में आता है"** ऐसे अभेदनय के बिना ज्ञेय की सिद्धि नहीं होती। इसप्रकार **"जाननहार जानने में आता है"** उसमें एक ही समय में शुद्धनय और अभेदनय दोनों समा जाते हैं।

"जाननहार जानने में आता है" उसमें एक ही समय में द्रव्य का निश्चय और ज्ञानपर्याय का निश्चय समा गया। **"जाननहार जानने में आता है"** उसमें रहितपूर्वक सहित एक समय में हुआ। **"जाननहार जानने में आता है"** उसमें सम्यक् एकांतपूर्वक सम्यक् अनेकांत समा गया। "जाननहार जानने में आता है" उसमें निश्चय स्वप्रकाशकपूर्वक निश्चय स्वपरप्रकाशक आ गया। **"जाननहार जानने में आता है"** उसमें निर्विकल्प निश्चयनय, निर्विकल्प व्यवहारनय और निर्विकल्प प्रमाण सभी समा गए। **"जाननहार जानने में आता है"** उसमें समयसार और प्रवचनसार एक ही समय में जानने में आ गए। इसप्रकार 'ध्येयपूर्वक ज्ञेय' में जैनदर्शन का संपूर्ण सार समाविष्ट हो गया।

इसलिए 'जाननहार जानने में आता है' वह जीवमात्र का जाग्रत जिनालय है और 'जाननहार जानने में आता है' वही तो जैनशासन का चैतन्य देवता है और 'जाननहार जानने में आता है' वह पवित्र मोक्षमार्ग है एवं आद्योपान्त पथप्रदर्शकरूप सर्वोत्कृष्ट महामंत्र है।

(२) 'मैं जाननहार हूँ' और 'जाननहार जानने में आता है' की अनमोल निधि के प्रकाशक पूज्य भाईश्री :

जीवमात्र को जाननहार ही जानने में आ रहा है ऐसा उसका स्वभाव है। यह स्वभाव किसी के द्वारा किया नहीं जाता और न किसी के रोकने से रुकता है। क्योंकि स्वभाव है न? तो वह अनादि अनंत होता है न? यह प्रक्रिया पारिणामिक भाव से है। जाननहार जानने में आता है वह त्रिकाल भी है और वर्तमान भी है इसलिए वह प्रतिच्छंद के स्थान पर है।

प्रतिच्छंद -> "मैं जाननहार हूँ" तो पर्याय में आया कि: "मैं जाननहार हूँ।"

प्रतिच्छंद -> "जाननहार जानने में आता है" तो आया कि: "मुझे जाननहार जानने में आता है।" इसलिए जिस वस्तु को जाना, वह तो जाननहार है ही; परंतु जिसने जाना वह भी जाननहार है। ज्ञानपर्याय में निश्चय, व्यवहार, प्रमाण आदि के विशेष...भेद... हों तो हों! परंतु "मैं तो जाननहार हूँ।"

मेरा कोई विषय ही नहीं है, क्योंकि मैं ज्ञानतत्त्व नहीं हूँ, "मैं तो (ज्ञायक) जाननहार हूँ"; अर्थात् मैं स्वयं विषयरूप जाननहार हूँ, "फिर जाननक्रिया में विषय और विषयी का भेद भी नहीं दिखता ऐसा जाननहार हूँ।" एकाकार एकरस...जाननहार हूँ; समरस...जाननहार हूँ; अभेद जाननहार हूँ।

अब निश्चय से देखो तो जाननहार और व्यवहार से देखो तो भी जाननहार; और प्रमाण से देखो तो भी जाननहार। सभी अपेक्षाओं से जाननहार; और सभी अपेक्षाओं से रहित भी जाननहार। "मैं स्वभाव से ही निरपेक्ष जाननहार हूँ।" इसप्रकार जाननहार तो जाननहार है।

परोक्ष अनुमान में जाननहार, प्रत्यक्ष अनुभव में जाननहार, ज्ञेयाकार अवस्था में जाननहार, स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में जाननहार। द्रव्य से जाननहार, गुण से जाननहार, पर्याय से भी जाननहार। वस्तुस्थिति से जाननहार, परिस्थिति में भी जाननहार। अभेद से जाननहार, भेद से जाननहार, भेद-अभेद से जाननहार। इसप्रकार जाननहार जाननहारपने रहता हुए "जाननहार जानने में आता है।"

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है" वह विकल्प है न?

समाधान : नहीं। "जाननहार जानने में आता है" वह विकल्प नहीं है वरन् स्वभाव है। यह तो विकल्प है! यह तो भेद है- ऐसा क्यों दिखता है? तेरी नीयत खराब है। यह मेरा स्वरूप है- ऐसा क्यों नहीं दिखता?! **यह स्वभाव है, इसप्रकार भावभासन में लेकर स्वभाव में निःशंक हो जा! यह साधारण वाक्य नहीं है। महामुनि धर्मकीर्तिस्थंभ श्रुतकेवली के ये वचन हैं, सभी लोग इसकी कीमत करना।**

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है" वह सविकल्प है या निर्विकल्प?

समाधान : "जाननहार में न सविकल्प दशा है न निर्विकल्प दशा है। ज्ञानपर्याय का स्वभाव निर्विकल्प है और साकार सविकल्प स्वभाव भी है। मैं तो अनादि अनंत त्रिकाल मुक्त जाननहार हूँ। एवं सभी को जाननहार जानने में आता है वह निर्विकल्पपने जानने में आता है; सहजपने जानने में आता है; उसके लिए विकल्प की क्या जरूरत है? ऐसे निर्विकल्प स्वभाव को जानने पर निर्विकल्प होता है। **निर्विकल्प स्वरूप की बात....! वचनातीत स्वभाव की बात....! वचन में आ गई है।** "जाननहार जानने में आता है और जाननहार हूँ" यह प्रयोग की पराकाष्ठा है। "जाननहार जानने में आता है"

इस वचन के ऊपर, इस भेद के ऊपर जाने की सख्त मनाही है। "जाननहार जानने में आता है" इस वाच्य के ऊपर जाना।

मैं जाननहार हूँ: जाननहार को ही जानता हूँ; जाननहार ही मुझे जानने में आता है। जाननहार जानने में आता है ऐसा भी मुझे जानने में आता है। ये चारों भाव किसी भी क्रम के बिना, विकल्प बिना, भेद के बिना एक समय में स्वानुभव में अनुभवित होते हैं। यदि जाननहार जानने में आता है ऐसा ज्ञात न हो तो ज्ञान के सविकल्प स्वभाव की सिद्धि नहीं होती।

"जाननहार जानने में आता है" उसे जानते रहना ही अभेद की अनुभूति है और अभेद ही परमार्थ है। कारण कि अभेद है वह परिणमनरूप भी है। परंतु ऐसे अभेद को- परमार्थ को किसी भी वचन के द्वारा कथन में कहना वह तो व्यवहार हो गया। कथन भेद का ही होता है; अभेद का कथन नहीं होता। इस प्रकार ज्ञानियों के अभिप्राय को समझना चाहिए। संत भेद का आश्रय कहाँ कराते हैं? जाननहार को ही जानता है- ऐसा परिणमन होते हुए भी भेद नहीं है। "जाननहार जानने में आता है" उसमें जाननहार...जाननहार को जाननेरूप से परिणम जाता है। इसप्रकार निष्कर्ष यह है कि "जाननहार जानने में आता है" और "मैं जाननहार हूँ" वही प्रयोग है और वही अनुभवन है।

(३) "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" इस वास्तव की वास्तविकता का अपूर्व हृदय प्रकाशित करनेवाले पूज्य भाईश्री :

श्री समयसार की ग्यारहवीं गाथा जैसे जैनदर्शन का प्राण है वैसे ही **"वास्तव में"** पर को नहीं जानता उसमें **"वास्तव"** शब्द आगम और अध्यात्म के (मिलन) अभिसार का अंग है और साथ ही जैनदर्शन का प्राण है। इसमें प्रवचनसार और समयसार के समन्वय की समतुला ज्वलंत रहती है। साधक हो या फिर सिद्ध परमात्मा ही क्यों न हों! उनकी ज्ञानपर्याय में जो निश्चय-व्यवहार है उसकी सिद्धि इस **"वास्तव"** शब्द से ही होती है न! इसप्रकार **"वास्तव"** शब्द जिनागम की गहरी और रहस्यमयी नींव है, जिसके ऊपर "जाननहार जानने में आता है" का जिनालय खड़ा है।

अब, 'पर जानने में नहीं आता' ऐसा न कहकर **"वास्तव** में पर जानने में नहीं आता" (ऐसा कहा), उसमें **"वास्तव"** शब्द किसलिए लगाया? इस सूत्र में **"वास्तव"** शब्द की उपयोगिता क्या है?

"मैं जाननहार हूँ; करनेवाला नहीं हूँ।
जाननहार जानने में आता है; वास्तव में पर जानने में नहीं आता।"

उपरोक्त सूत्र को स्वर्ण अक्षरों में मढ़ने का भाव आत्मार्थी श्री शांतिभाई झवेरी को आया तब उन्होंने पेंटर से इस सूत्र को पूज्य भाईश्री के फोटो के अंदर समाहित करने

के लिए कहा। तब पेंटर ने शांतिभाई से कहा कि फोटो में पूरा सूत्र सेट हो जायेगा यदि आप **'वास्तव'** शब्द को निकाल दो तो! इस तरह से (१) मैं जाननहार हूँ (२) मैं करनेवाला नहीं हूँ। (३) जाननहार जानने में आता है। (४) पर जानने में नहीं आता। इस प्रकार व्यवस्थित बैठ सकता है।

उसके बाद श्री शांतिभाई ने पूज्य "भाईश्री" से फोन से पूछा कि : भाई! 'वास्तव' शब्द फोटो में सेट नहीं हो रहा है तो उसको निकाल दें? तब पूज्य भाईश्री ने उत्तर दिया कि: **'वास्तव'** शब्द किन्हीं भी संयोगों में नहीं निकलेगा। उसमें ही गहन गूढ़ता और मर्मज्ञता रही हुई है। यदि तुम **'वास्तव' शब्द निकाल दोगे तो प्रतिभास ही चला जाएगा तो फिर भेदज्ञान की कला हाथ में नहीं आएगी। 'वास्तव में'** पर जानने में नहीं आता उसमें सकल दोष का परिहार होकर आत्मानुभव होता है। पर का प्रतिभास अनुभव में बाधक नहीं है, किन्तु पर के प्रतिभास का लक्ष बाधक है।

ज्ञान **'वास्तव में'** पर को नहीं जानता उसमें ही जैनदर्शन का अंदर का निश्चय-व्यवहार सिद्ध हो गया। अब यदि ज्ञान प्रतिभासरूप ज्ञेयाकार धर्म को भी न जानता हो तो ज्ञानी का व्यवहार झूठा पड़ जाता है। जैसे कि श्रेणिक महाराज ८४ हजार वर्ष के बाद तीर्थंकर होनेवाले हैं वह केवलज्ञान में आया है न? है तो यह व्यवहार! लेकिन.... यह व्यवहार भी व्यवहाररूप से सच्चा है, झूठा नहीं है। **यदि कोई इस व्यवहार को उड़ाएगा तो फिर केवली के ज्ञान में जो आया वह झूठा ठहरेगा।**

श्री समयसारजी गाथा १२ में प्रतिभास की सिद्धि करने के लिए जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है। इसप्रकार सिद्ध होता है कि **वास्तव** शब्द प्रतिभास के स्वरूप को सिद्ध करने के लिए है। **और प्रतिभास में मात्र प्रतिभास ही समझाना है।** क्योंकि जो साधक हुआ उसे उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है, जो संस्कृत में **"परिज्ञायमान: तदात्वे प्रयोजनवान"** लिखा है। इसप्रकार **'वास्तव में'** पर जानने में नहीं आता उसमें ही प्रतिभास की अपूर्व सिद्धि हो गई।

आत्मार्थी जीवों को ऐसा प्रश्न हो सकता है कि आप **'वास्तव में** पर जानने में नहीं आता' वह आप किस न्याय से कहते हो? उसका लॉजिक क्या है?

(१) **न्यायः** ज्ञान पर में तन्मय नहीं होता उस न्याय से सिद्ध होता है कि ज्ञान वास्तव में पर को नहीं जानता। ज्ञान ज्ञायक से तादात्म्यपना छोड़ता ही नहीं है इसलिए ज्ञान ज्ञायक को ही जानता है। ज्ञान परज्ञेयों में तद्रूप नहीं होता इसलिए ज्ञान **'वास्तव में'** पर को नहीं जानता। आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान आत्मा को ही जानता है अतः ज्ञान वह आत्मा ही है।

(२) **न्यायः** वास्तविकरूप से तो सभी को ज्ञान जानने में आता है। अब पर के

सन्मुख होकर जानने का निषेध है, लेकिन ज्ञान की स्वच्छता का निषेध नहीं है। यह बात अप्रचलित है। पर का लक्ष करके जानता है उसमें बहिर्मुखता है और परज्ञेय मात्र प्रतिभासित होते हैं उसमें तो ज्ञान ज्ञेयों से व्यावृत्त होकर अंतर्मुखाकार परिणम जाता है। इसलिए प्रतिभास को मुख्य रखकर फिर पर को जानता है.... पर जानने में आता है.... ऐसे जिनवाणी के कथन का आशय सम्यक् प्रकार से समझ में आता है। यह रहस्य न समझे तो ज्ञान बहिर्मुख ही रहता है।

(३) **न्यायः 'वास्तव में'** में पर का प्रतिभास रह जाता है और सामान्य ज्ञायकभाव का लक्ष हो जाता है। पर का-लोकालोक का प्रतिभास तो स्वच्छता में रह जाता है परंतु पर का लक्ष छूट जाता है। लक्ष लोकालोक के ऊपर हो तो अज्ञान (है)! लक्ष आत्मा का और प्रतिभास दो का होता है। केवली के समान साधक को भी प्रतिभास दो का होता है और लक्ष एक ज्ञायक का होता है। अज्ञानी को प्रगट होते हुए उपयोग में प्रतिभास दो का है लेकिन लक्ष एकांतरूप से पर का है। इसप्रकार जीवमात्र को प्रतिभास दो का होते हुए भी उसका लक्ष कहाँ है? पर के ऊपर है? या स्व के ऊपर है? उसके ऊपर बंधमार्ग मोक्षमार्ग निर्भर है।

इसप्रकार **'वास्तव में** पर जानने में नहीं आता' उसमें जिनागम के ज्ञानस्वभाव का एवं ज्ञान सामर्थ्य का समस्त रहस्य प्रकाशित हुआ। आगम की बात का स्वीकार और आगे बढ़ने पर उस प्रतिभासरूप, स्वपरप्रकाशक व्यवहाररूप पर्याय को भी जानने का निषेध होने पर ही स्वसन्मुखता का उत्पाद होता है।

***** 'जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता' ऐसा कहकर पर का प्रतिभास रखा है और पर का लक्ष छुड़ाया है।

*** 'वास्तव में'** पर जानने में नहीं आता उसमें कोई भी परपदार्थ हेयपने या स्वज्ञेयपने जानने में आते ही नहीं।

*** 'वास्तव में'** पर जानने में नहीं आता उसमें पर के प्रतिभास का भी लक्ष छूट जाता है।

* परपदार्थ ज्ञान का ज्ञेय नहीं है इसलिए **'वास्तव में'** पर को जानता नहीं है।

* परपदार्थ को जाननेवाला ज्ञान नहीं है इसलिए **'वास्तव में'** पर को जानता नहीं है।

* ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक जानने में आता है इसलिए **'वास्तव में'** पर को नहीं जानता।

* "जाननहार जानने में आता है" और **'वास्तव में'** पर जानने में नहीं आता, उसमें तो समयसार और तत्त्वार्थ सूत्र दोनों समा गए।

* **'वास्तव में'** पर जानने में नहीं आता उसमें पर का प्रतिभास तिरोभूत हो जाता है और "जाननहार जानने में आता है" उसमें पर के प्रतिभासरूप लक्ष का भी निषेध हो जाता है और जो प्रतिभासरूप ज्ञायक था वह आविर्भूत हो जाता है।

* **'वास्तव में'** पर को नहीं जानता उसमें पर का लक्ष नहीं है, तो पर का प्रतिभास "प्रतिभास" कहलाता है। यदि पर का लक्ष हो तो वह प्रतिभास 'प्रतिभासरूप' कहाँ रहा? वह तो अज्ञान हो गया।

* **'वास्तव में'** पर जानने में नहीं आता उसमें पर को जानने के पुरुषार्थ के बिना पर जानने में आ गया। क्योंकि स्वच्छता उसका स्वभाव है।

* परपदार्थ भावेंद्रिय का विषय होने से **'वास्तव में'** पर को जानता नहीं है।

* **'वास्तव में'** अर्थात् सत्यार्थरूप से, सत्य रीति से बात तो इतनी ही है कि: 'वास्तव में' पर को नहीं जानता तो इन्द्रियज्ञान संकुचित हो जाता है और अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है। इन्द्रियज्ञान को जीतने का यह मंत्र है।

* जहाँ **'वास्तव में'** पर को नहीं जानता, निषेध किया वहाँ तो ज्ञान की पर्याय का निश्चय प्रगट होकर निश्चयपूर्वक का व्यवहार प्रगट हुआ।

*** 'वास्तव में'** ज्ञानी अज्ञानी किसी को बाह्य पदार्थ सीधे (डायरेक्ट) ज्ञात होते ही नहीं। किसी काल में ज्ञात नहीं होते। सभी को ज्ञात होता है ज्ञान और ज्ञायक।

* **'वास्तव में'** पर ज्ञात नहीं होता उसमें पर का प्रतिभास रह गया और पर के प्रतिभास का भी लक्ष छूट गया और स्व का लक्ष हो गया। यह केवल लक्षरूप ज्ञान का स्वरूप है।

* **'वास्तव में'** पर ज्ञात नहीं होता अर्थात् प्रतिभास होता है, उसे उड़ाया नहीं जा सकता। प्रतिभास होने पर भी उसका लक्ष पलट गया तो अनुभव हो गया।

* ज्ञान, स्वभाव से ही **'वास्तव में'** पर को जानता नहीं है एवं ज्ञान का स्वभाव **'वास्तव में'** पर को जानने का नहीं है - यह बात स्वीकार किए बिना सम्यग्दर्शन प्रगट होनेवाला नहीं है।

* छह द्रव्य ज्ञात होते हैं, उसमें पूज्य गुरुदेवश्री ने भी प्रतिभास रखा है। फिर.... **'वास्तव में'** छह द्रव्य जानने में नहीं आते, उसमें परज्ञेय का लक्ष छुड़ाया है। फिर... छह द्रव्य ज्ञात होते हैं ऐसी पर्याय भी ज्ञात नहीं होती, इसमें पर्याय का लक्ष छुड़ाया है। फिर... **'वास्तव में'** तो "जाननहार जानने में आता है", इसप्रकार जाननहार का लक्ष कराया है।

* पूज्य गुरुदेवश्री का सुनहरा वाक्य निकला उसके बाईस दिन बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया। आत्मा **'वास्तव में'** पर को नहीं जानता तो फिर पर को जानने के लिए उपयोग लगाना वह बात ही कहाँ रही? अर्थात् यदि **'वास्तव में'** आत्मा पर को जानता

होता तो पर की तरफ उपयोग रखना रहता!

इसप्रकार **'वास्तव'** इस एक शब्द में जिनागम के बारह अंग का सार भर दिया है। **'वास्तव'** शब्द में उत्कृष्ट भेदज्ञान छुपा हुआ है।

'वास्तव' शब्द एक; उसमें विश्व की सिद्धि हो गई.... फिर विश्व की सन्मुखता का निषेध किया और प्रतिभासरूप स्वच्छता का स्वीकार हुआ। प्रमाण में लाकर फिर से विधि-निषेध करने पर ज्ञान की स्वच्छता भी जानने में नहीं आती.... **"जाननहार जानने में आता है"** ऐसी ज्ञानपर्याय भी ज्ञात नहीं होती.... मात्र जाननहार ज्ञात होता है; इसप्रकार जाननहार का लक्ष कराया।

(४) ज्ञान जानता है और ज्ञान में जानने में आता है इन दोनों का अंतर दर्शानेवाले पूज्य भाईश्री :

'जानता है' और 'जानने में आता है' ये दोनों शब्द ऊपर ऊपर से देखने पर समानार्थी लगते हैं परंतु इन दोनों के बीच बंधमार्ग और मोक्षमार्ग का अंतर रहा हुआ है।

'जानता है' उसकी परिभाषा : कि 'जिसमें' तन्मय होता है उसे जानता है और 'जिसे' तन्मय होकर जानता है उसमें आत्मबुद्धि हुए बिना नहीं रहती। अब ध्रुव को जानता है तो तन्मय होकर जानता है। जबकि उत्पाद्-व्यय तन्मयता अर्थात् अहम् के बिना ज्ञात हो जाते हैं। ध्रुव को जानने में पुरुषार्थ है। व्यतिरेक तो बिना पुरुषार्थ के ज्ञात हो जाते हैं।

पुरुषार्थ सिद्धि उपाय की १४ नंबर की गाथा में कहा कि ज्ञानी अज्ञानी के पदार्थ के प्रतिभास में अंतर है। और जयसेन आचार्य भगवान ने श्री समयसार निर्जरा अधिकार में फरमाया कि **"दर्पण में आए हुए प्रतिबिंब के समान"** जानता है अर्थात् कि **"कार्य में कारण का उपचार करके"** कहा कि ज्ञान पर को जानता है। जानता तो है नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकार को और कथन किया कि पर को जानता है। यह बात श्री प्रवचनसारजी में है।

अब अज्ञानी को भी पर को जानने की प्रक्रिया तो इनडायरेक्ट ही भजती है; लेकिन उसे ज्ञान स्वभाव का विश्वास ना होने से, वह परपदार्थ के सन्मुख अर्थात् परपदार्थ के प्रतिभास का लक्ष कर लेता है।

अब "जानता है" और "जानने में आता है" उन शब्दों में कैसा मर्म रहा हुआ है वह देखते हैं।

"जानता है"	**"जानने में आता है"**
ज्ञेय की सन्मुखता	ज्ञान की सन्मुखता
बहिर्मुखता	अंतर्मुखता

पराश्रयता	स्वाश्रयता
मिथ्यात्व	सम्यक्त्व
परसन्मुख्ता	स्वसन्मुखता
बंध मार्ग	मुक्तिमार्ग
संसार खड़ा होता है	संसार का नाश होता है
पर्यायदृष्टि	द्रव्यदृष्टि
खंड खंड इंद्रियज्ञान	अखंड में अहम्
मुख्यरूप से पर्यायवाचक	मुख्यरूप से द्रव्यवाचक
सक्रियपना	निष्क्रियपना
सविकल्पता	निर्विकल्पता
(परिणमता है वह) कर्तापना	अकर्तापना
इन्द्रियज्ञान की पर्याय का स्वीकार	सहज वस्तु स्थिति का स्वीकार
विनश्वरता	अविनश्वरता
जानता है तो ज्ञान से बाहर चला गया	ज्ञात होता है तो उपादान में आ गया
ध्यान तत्त्व है	ध्येय तत्त्व है
स्वपरप्रकाशक की मुख्यता	उपादेय की मुख्यता

इसप्रकार दोनों के वाच्य में उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव जितना अंतर है। **जो जानता है वह मैं नहीं हूँ लेकिन जो ज्ञात होता है वह मैं हूँ।** श्रुतज्ञान पलटता है लेकिन उसका विषय नहीं पलटता। ज्ञेय तो दर्पण के समान ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं, तो फिर पदार्थ ज्ञात होते हैं या स्वच्छता ज्ञात होती है? स्वच्छता जहाँ दिखी वहाँ तो ज्ञान परज्ञेयों से पराङ्मुख हो जाता है और ज्ञायक के सन्मुख परिणम जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने श्री समयसार की छठ्ठी गाथा के प्रवचन में फरमाया है कि "ज्ञात होती है वह चीज ज्ञात नहीं होती लेकिन जाननहार ज्ञात होता है।"

(५) जैनदर्शन का सार स्पष्ट करनेवाले पूज्य भाईश्री :

"मैं जाननहार हूँ करनेवाला नहीं। जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता।"

"मैं जाननहार हूँ" अर्थात् अनादि अनंत निष्क्रिय जाननहार है। परिणाम मात्र से रहित है ऐसा जाननहार है। करनेवाला नहीं है अर्थात् परिणमनेवाला नहीं है। आत्मा आत्मज्ञान का भी करनेवाला नहीं है। अर्थात् आत्मा से भी आत्मज्ञान नहीं होता। आत्मा केवल जाननहार होने से करनेवाला नहीं है। आत्मा अकर्ता होने से करनेवाला नहीं है।

अर्थात् अकर्ता को कर्म नहीं होता।

"निष्क्रिय शुद्ध पारिणामिकः" होने से कर्ता नहीं है। **'तद्रूपो न भवति'** इसलिए कर्ता नहीं है। कदाचित् कोई जाननहार को करनेवाला माने तो भी वह करनेवाला नहीं होता। वह तो जाननहार ही रहता है। जिसे परिणाम से सहित ज्ञायक दिखता है उसे नियम से करनेवाला दिखता है। हमें तो "मैं जाननहार हूँ" वही बात करनी है।

अब दूसरा वाक्य **"जाननहार जानने में आता है"**, उसमें 'जाननहार को जानता हूँ'- ऐसा नहीं लिखा। लिखा है? जाननहार जानने में आता है ऐसा जानकर कहा न?! आत्मा जाननहार है और जाननहार जानने में आता है, वही बात करनी है। आत्मा जानता है- वह बात ही करनी नहीं है। आत्मज्ञान में जब आत्मज्ञान भी जानने में नहीं आता तो फिर पर की बात तो क्या करनी! आत्मज्ञान में तो **'मैं जाननहार हूँ'** ऐसा ज्ञात होता है वह ही आत्मज्ञान है।

फिर.... **"वास्तव में पर जानने में नहीं आता"** ऐसा लिखा है, पर को जानता नहीं- ऐसा स्टीकर में नहीं लिखा। जहाँ 'पर जानने में नहीं आता' तो फिर 'पर को जानता नहीं है' वह बात तो बहुत स्थूल हो गई। साधक को स्वयं को जानने पर परपदार्थ जानने में आ जाते हैं न? वह चारित्र का दोष है। 'पर जानने में आता है' उसमें कभी भी 'हाँ' मत करना हों!

पर ज्ञात नहीं होता वह स्वरूपाचरण चारित्र की विधि है। **पर को जानता है वह श्रद्धा का दोष है। पर जानने में आ जाता है वह चारित्र का दोष है। पर को जानता भी नहीं और पर जानने में भी नहीं आता - ऐसा चारित्र का गुण ही गुण है।**

स्वयं को जानता है और स्वयं ही जानने में आता है, उसमें शुद्धोपयोग आ जाता है। फिर आगे बढ़ने पर श्रेणी मांडता है... आगे बढ़ने पर शुक्ल ध्यान आता है और फिर जगमग केवलज्ञान की ज्योति प्रगट हो जाती है।

'पर को जानता हूँ' उसमें कर्ताकर्म दोष उत्पन्न होता है। क्योंकि ज्ञायक कर्म नहीं हुआ। और 'पर जानने में आता है' उसमें ज्ञेय-ज्ञायक संकर दोष उत्पन्न होता है। क्योंकि ज्ञायक ज्ञेय नहीं हुआ। **अब पर को नहीं जानता, उसमें पर के साथ जो ध्येयरूप संबंध था वह टूट जाता है और पर ज्ञात नहीं होता, उसमें पर के साथ ज्ञेयपने का संबंध टूट जाता है। ऐसा होने पर अंदर ध्येयपूर्वक ज्ञेय होता है। लो!** यह स्टीकर में से निकला। 'ध्येयपूर्वक ज्ञेय' एक समय में होता है। ज्ञायक ही ध्येय है, ज्ञायक ही ज्ञेय है, वह... अभेद है हों! अपरिणामी को लक्षपूर्वक जानता है तब परिणामी लक्ष के बिना जानने में आ जाता है। पर तो ज्ञात होता ही नहीं। इसप्रकार "जाननहार ही ज्ञात

होता है"। जाननहार में जाननहार के अलावा अंदर दूसरा कुछ नहीं है, इसलिए दूसरा कुछ ज्ञात ही नहीं होता। यदि परिणाम को जानने का स्वभाव हो तो... परिणाम को जानते-जानते केवलज्ञान हो जाना चाहिए। अरे! सम्यग्दर्शन भी होता नहीं है तो केवलज्ञान तो कहाँ से हो?

ज्ञानशक्तिमयी है इसलिए जाननहार है, करनेवाला नहीं है। ज्ञेयशक्तिमयी है इसलिए स्वज्ञेय ज्ञात होता है, परज्ञेय नहीं ज्ञात होता। तू इन दो शक्तियों का विचार कर। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय भेद नहीं है; अभेद परिणमन है। इस प्रकार जानने का और ज्ञात होने का- दोनों स्वभाव आत्मा के ही हैं। स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता।

(६) तत्काल आत्मदर्शन की "ना" शब्द में विधि बतानेवाले पूज्य भाईश्री:

सम्यग्दर्शन होने में बाधक क्या है? अनुभव क्यों नहीं होता? तो कहते हैं ज्ञानपर्याय का व्यवहार जो स्व पर को जानता है वह सम्यग्दर्शन होने में बाधक है। ज्ञान का स्वभाव परप्रकाशक तो नहीं लेकिन स्वपरप्रकाशक भी नहीं है। **स्वपरप्रकाशकता तो ज्ञान की सामर्थ्य है। जबकि ज्ञान का उपादेय स्वभाव स्वप्रकाशक ही है।**

ज्ञान का लक्षरूप स्वभाव जब अंतरंग में भासित होता है; तब सम्यक् एकांतपूर्वक सम्यक् अनेकांत प्रगट होता है। ज्ञान ज्ञायक को ही जानता है वह सम्यक्एकांत है। और ज्ञान ज्ञायक को जानता है और पर को नहीं जानता वह सम्यक् अनेकांत है।

परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री के श्री समयसार के छठ्ठी गाथा के १९वीं बार के प्रवचन की जो "ज्ञायक भाव" पुस्तक है; उसमें पेज नं. १०/११ में प्रश्न है कि जाननहार है इसीलिए पर को जानता है न?

उत्तर : 'नहीं'।

दूसरा प्रश्न है: "परंतु वह जाननहार है न! क्योंकि वह जाननहार है इसलिए उसमें दूसरा भी जानने में आता है न?"

समाधान : 'ना'। क्योंकि ज्ञात होता है वह स्वयं ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने ऐसा नहीं कहा कि ज्ञान व्यवहार से पर को जानता है... और पर ज्ञात होता है। उन्होंने उत्तर में **'ना'** कहा। इस **'ना'** में तो भगवान आत्मा उपादेय हुआ है। यह **'ना'** कोई साधारण नहीं है। अस्ति से लें तो "जाननहार जानने में आता है" ऐसा विश्वास आए बिना पर को जानने का निषेध आता नहीं। और नास्ति से लें तो पर को जानने के निषेध के बिना उपयोग अंतर्मुख नहीं होता। और उपयोग अंतर्मुख हुए बिना जाननहार जानने में नहीं आता। दोनों स्वभाव अविनाभावीरूप से अविरोधपूर्वक साथ में रहते हैं।

जब ज्ञानी धर्मात्मा विधि-निषेध से बात कहते हैं तब लायक शिष्य इतनी प्रगाढ़ता से भारपूर्वक स्वीकार करता है कि "पर को जानता नहीं हूँ, जाननहार जानने में आता है" कि उसके फलस्वरूप उसे विशेष में (पर्याय में) जाननहार ज्ञात हो जाता है।

इसप्रकार पर को जानने का निषेध करना वह वीर्यवान का कार्य है। पर को जानता हूँ- वह अज्ञान है, पर को जानता नहीं- वह ज्ञान है।

आत्मा का लक्षण तो ज्ञान है। लेकिन अब ज्ञानलक्षण का लक्षण क्या है? पर को न जानना और जाननहार को जानना वह ही लक्षण है। धर्म करना हो, सुखी होना हो, तो पर को जानना बंद कर। मैं पर को जानता हूँ ऐसी मान्यता ही "जाननहार जानने में आता है" ऐसे विचार का जन्म नहीं होने देती।

सभी को जाननहार जानने में आता है ऐसी ही अनादि-अनंत व्यवस्था है लेकिन किसी धन्य पल में अपूर्व विश्वास आ जाता है कि : "मुझे जाननहार ही जानने में आता है"। ऐसा विश्वास किसे आता है?

जिस जीव का संसार का किनारा निकट आ गया है उसे ही पर को जानने का निषेध आता है, तब जाननहार ज्ञात हो जाता है। वर्तमान में जाननहार को जानने का स्वर्ण अवसर आ गया है। सर्व समागम सहज में प्राप्त हो गया है।

जब श्रीगुरु की देशना छूटती है कि 'हे भव्य! तू पर को जानता ही नहीं'; इतना सुनते ही भव्य प्रसन्न हो जाता है। अत्यंत हर्षोल्लासपूर्वक आनंदित होता है। उसकी कोई अद्‌भुत पात्रता जाग जाती है, जो पूर्व में कभी जागी नहीं थी। जिस जीव की काललब्धि पक गई है, जिसका मोक्ष जाने का काल अति निकट आ गया है, जिसके अनंत दु:खों का अंत आ गया है, ऐसे जीव को तो ये वचन अमृत लगते हैं।

हे प्रभु! आपके ये दिव्यवचन परम उपकारी परम हितकारी हैं। यदि आपने पर को जानने का निषेध न कराया होता तो उपयोग अंतर्मुख किस तरह से होता! **पर को जानता नहीं वह निषेधरूप निषेध नहीं है परंतु विधिरूप निषेध है।** पर को जानने के निषेध में ज्ञायक के अलावा सबकुछ पर है।

जिज्ञासा : जाननहार है इसलिए पर को जानता है?

समाधान: 'ना'। न निश्चय से पर को जानता है, न व्यवहार से पर को जानता है। अनंत बलपूर्वक; पूरी शक्ति से सर्वांग प्रदेशों से जहाँ पर को जानने का निषेध किया वहाँ उसी क्षण चिदानंद जाननहार आत्मा आनंदपूर्वक जानने में आ जाता है। तू अंजन चोर की तरह निःशंक हो जा! तुझे अकृत्रिम निज चैतन्य प्रभु के दर्शन होंगे! तत्क्षण प्रभु के दर्शन होंगे ही।

इस एक **'ना'** में तो ज्ञानानंद अनुभूति का सागर उछलता है। स्वरूपानंद की

उर्मियाँ नाचती हैं। यह **'ना'** है वह तो मोक्षमार्ग है। **'ना'** कहकर तो आनंद प्रगट करने की, आत्मा का अनुभव प्रगट करने की अपूर्व विधि बतायी है। तुझे चैतन्य तत्त्व का अनुभव करना हो तो एक काम कर। दूसरा कोई काम मत कर। तू चौबीसों घंटे पर को जानने का निषेध कर! पर को जानता ही नहीं तो तेरे ज्ञान में तत्काल जाननहार जानने में आ जाएगा। जहाँ पर को जानना बंद किया वहाँ सहज सम्यग्दर्शन हो जाएगा। **'ना'** में तो कितनी खुमारी भरी है। इस **'ना'** में तो कितनी स्वरूप की मस्ती भरी है। यह **'ना'** है वह आनंदकारी है। निश्चय होता है वह आनंदकारी ही होता है! इस **'ना'** में तो कितना कितना भरा है। उत्तम से उत्तम बात बाहर आ गई है। **यह 'ना' शब्द है वह विवाद करनेवाला नहीं है, समाधानकारी है।** तू पर को जानना बंद करेगा तो सर्व समाधान हो जाएगा। क्योंकि उसके फल में ज्ञान प्रगट हो जाएगा। और ज्ञान स्वभाव तो सर्व समाधानकारी ही होता है न! यह **'ना'** शब्द कोई साधारण नहीं है। इस **'ना'** में तो कितना मर्म भरा है। आनंद का रहस्य छुपा हुआ है। इस **'ना'** में तो दुःख दूर होने का उपाय रहा हुआ है। जिसे जाननहार जानने में आता है, उसने पर को जानने का निषेध किया ही है।

ज्ञानी इतना अधिक नास्ति के ऊपर वजन देते हैं, उस पर शांति से विचार तो सही! नास्ति में अज्ञानी प्राणी का झुकाव-अहम् वर्तता है इसीलिए नास्ति से समझाते हैं। पर को नहीं जानता ऐसे स्वभाव की ओर से ज्ञान का-ज्ञायक का परिचय कराते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की **'ना'** विचारने योग्य है। उसमें अखूट अटूट निधि समाई हुई है। जिसे **'ना'** समझ में आता है उसे ही उसके बाद की आगे की लाईन समझ में आती है। 'पर को जानता नहीं' वह विकल्प नहीं है परंतु हकीकत है। पर को जानने का निषेध और स्व को जानने की विधि के बीच कुछ भी समय भेद नहीं है। इस **'ना'** में तो स्वरूप की प्रसिद्धि है। **'ना'** कहकर तो परमार्थ जीव के जीवत्व को दर्शाया है।

पहले पर को जानता था और अब पर को जानना छोड़ता हूँ- ऐसा नहीं है। ध्यान रखना! इसमें मार्मिक बात है। जैसे अकारक और अवेदक त्रिकाल स्वभाव है, जैसे जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं हूँ- वह त्रिकाल स्वभाव है, ऐसे ही "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" वह भी त्रिकाल स्वभाव है। एक द्रव्य का त्रिकाल स्वभाव है, दूसरा पर्याय का त्रिकाल स्वभाव है। जिसप्रकार तत्त्वार्थसूत्र की महिमा आती है ऐसे ही जो यह स्वरूप समझेगा उसे इस सूत्र की महिमा आएगी, क्योंकि यह द्रव्यानुयोग का निचोड़ है।

"मैं जाननहार हूँ" और "जाननहार जानने में आता है"। हे जगत के जीवों! इस स्वाभाविक वस्तुस्थिति को स्वभाव से स्वीकारो और आनंदित हो जाओ।

"जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता...."

ऐसे मंत्रों का महामंत्र देनेवाले;

सर्वोपरि मंत्र का सार बतानेवाले;

अमोघ मंत्र की अमूल्यता दर्शानेवाले;

अमृत बिंदुओं की अमृतवर्षा बरसानेवाले,

अमृतबोधि प्राप्त पूज्य 'भाईश्री'

लालचंदभाई जयवंत वर्तो... जयवंत वर्तो....

अस्ति-नास्ति भेदज्ञान द्वार

जिनागम में अनेक प्रसंगों में एवं यथास्थान पर नयों की सुंदर चर्चा विशदरूप से देखने को मिलती है[1]। ४७ नयों में भी अस्तित्व-नास्तित्व संबंधी चर्चा आई है[2] एवं परिशिष्ट में अस्ति-नास्ति आदि १४ भंग का वर्णन है। अब उसी अस्तित्व नास्तित्व नयसंबंधी विशेष जानकारी देनी अति आवश्यक होने से ज्ञानी इस अनेकांत की विशिष्टता से विशेष चर्चा करते हैं।

जिनागम में सप्तभंगी दो प्रकार से देखने को मिलती है। (१) प्रमाणरूप सप्तभंगी (२) नयरूप सप्तभंगी। अब यहाँ प्रमाणरूप सप्तभंगी भी दो प्रकार से कहेंगे। (१) द्रव्य के प्रमाणरूप सप्तभंगी और (२) पर्याय के प्रमाणरूप सप्तभंगी। इन दोनों प्रमाणों में से नयसप्तभंगी के द्वारा अंदर-अंदर ही किस तरह से भेदज्ञान कराते हैं वह आगे देखेंगे।

प्रमाणरूप सप्तभंगी वस्तु में स्थित वस्तु के व्यापकपने को दर्शाती है। अर्थात् सामान्य-विशेषपने को बताती है। इसप्रकार प्रमाण सप्तभंगी संग्रह करती है, पदार्थ की सिद्धि करती है एवं वस्तु-व्यवस्था की सिद्धि करती है। और नय सप्तभंगी वस्तु के एक पक्ष को ही बताती है। वह प्रयोजन की सिद्धि कराती है।

अस्ति-नास्ति भंग सात ही किसलिए हैं? किन सात प्रकारों से है? वगैरह विषयवस्तु संबंधी विस्तृत जानकारी परमभावप्रकाशक नयचक्र, जैन सिद्धांतकोष, आप्त मीमांसा, स्याद्वाद मंजरी, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, सप्तभंगी तरंगिणी, सिद्धांत प्रवेशिका आदि ग्रंथों में से प्राप्त कर लेना। यहाँ तो प्रमाणरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत और नयरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत की भेदज्ञान में किसप्रकार से उपयोगिता है, उस विषय पर भेदज्ञान को मूल में से सम्यक् प्रकार से अवलोकन करने में आता है।

जितने आत्मा सिद्ध हुये हैं वे भेदविज्ञान से ही हुये हैं और भेदज्ञान का कारण अस्ति-नास्ति अनेकांत है। अस्ति-नास्ति के आधार के बिना भेदज्ञान नहीं हो सकता। इसप्रकार अस्ति-नास्ति अनेकांत भेदज्ञान का मूल है। और भेदज्ञान को ही सिद्ध दशा का कारण कहा है। तदुपरांत दर्शन संशुद्धि और ज्ञान की निर्मल शुद्धि के लिए भेदज्ञानपरक अस्ति-नास्ति अनेकांत अमृत है।

इस बात की उत्कृष्ट सिद्धि श्री कुंदकुंदाचार्य देव करते हैं। **"[3]हैं अस्ति-नास्ति, उभय एवं अवाच्य आदि भंग जो";** इस गाथा की टीका करते हुए अमृतचंद्रसूरि कहते

1 प्रवचनसार गाथा-१७२
2 श्री समयसार परिशिष्ट कलश नं. २४८/२६२
3 श्री पंचास्तिकाय गाथा १४

हैं कि : **"[4]अत्र सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तद्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो निपातः।"** स्यात् शब्द सर्वथापने का अर्थात् मिथ्या एकांतपने का निषेधक है और सम्यक् अनेकांत का द्योतक है। इसप्रकार अस्ति-नास्ति अनेकांत जैनधर्म का कौशल्य है। उससे जगत की किसी भी वस्तु का स्वरूप निश्चित हो जाता है। श्री गणधरदेव बारह अंग और चौदह पूर्व की रचना करते हैं; उसमें अस्ति-नास्ति प्रवाद की रचना भी करते हैं।

यह अस्ति-नास्ति स्याद्वाद वस्तु के पूर्ण स्वरूप को पूर्णपने प्रसिद्ध करता है। "[5]स्याद्वादो हि समस्तवस्तुतत्त्व साधकमेकमस्खलितं शासनमर्हत्सर्वज्ञस्य। स तु सर्वमनेकान्तात्मकमित्यनुशास्ति, सर्वस्यापि वस्तुनोनेकान्त स्वभावत्वात्।"

"स्याद्वाद समस्त वस्तुओं के स्वरूप को साधने वाला, अरहंत सर्वज्ञ का एक अस्खलित शासन है। निर्बाध शासन है। वह (स्याद्वाद) 'सब अनेकांतात्मक है' इसप्रकार उपदेश करता है। क्योंकि समस्त वस्तुयें अनेकांत स्वभाववाली हैं।

(१) "[6]स्वरूप से सत्ता पररूप से असत्ता ऐसे दो धर्मों द्वारा एक पदार्थ का निर्णय होता है।"

जो वस्तु तत् है वही अतत् है। जो एक है वही वस्तु अनेक है। इसप्रकार वस्तु में वस्तुत्व की उत्पादक परस्पर दो विरुद्ध शक्तियों का प्रकाश करना वह अनेकांत है। इसप्रकार परस्पर दो विरोधी धर्म एक वस्तु को सिद्ध करते हैं। यदि एक धर्म दूसरे धर्म का निषेध करे तो वस्तु ही अनंत धर्मात्मक सिद्ध नहीं होगी। अस्ति-नास्ति धर्म ये दोनों परस्पर विरुद्ध होते हुये भी वस्तु में दोनों युगपद् एकसाथ अविरुद्ध रहे हुये हैं। इसलिये वस्तु स्वयं ही अनेकांत स्वभाववाली है।

तर्क शिरोमणी श्री समंतभद्र आचार्य ने कहा है कि : **"[7]अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाण-नय-साधनः"** अनेकांत की सिद्धि मात्र प्रमाण से होती हो ऐसा नहीं है, परंतु अनेकांत की सिद्धि भी दो प्रकार से होती है। (१) प्रमाण और (२) नय से होती है। जैनदर्शन में कुल तीन प्रकार के अनेकांत देखने को मिलते हैं।

*** प्रमाणरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत।**

*** नयरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत।**

*** (अध्यात्म) प्रमाणरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत वह फलरूप है।**

प्रमाणरूप अनेकांत द्रव्य-पर्यायरूप सत्ता में लाता है और नयरूप अनेकान्त

---

4 श्री पंचास्तिकाय गाथा १४ की टीका में से
5 श्री समयसार परिशिष्ट
6 श्री सिद्धांत प्रवेशिका
7 स्वयंभूस्तोत्र श्लोक नं. १०३

प्रयोजन की सिद्धि कराता है। वास्तव में प्रयोजनभूत सच्चा अस्ति-नास्ति अनेकांत द्रव्य और पर्याय के बीच होता है।

(२) दृष्टांत में प्रमाणरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत का स्वरूप :-

एक व्यक्ति को मौसमी चाहिए। वह फलवाले की दुकान पर गया। वहाँ विविध प्रकार के ६ फल हैं। अनानास है, आम है, सीताफल है, अनार है, चीकू है और मौसमी है। उस व्यक्ति ने फल वाले से कहा, 'मुझे मौसमी चाहिए, इसलिये मुझे एक मौसमी दो।' इसप्रकार मौसमी में अन्य पाँच फलों की नास्ति हो गई। परंतु एक मौसमी लेने पर दूसरी मौसमियों की भी नास्ति हो गई।

(३) सिद्धांत में प्रमाणरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत :-

वैसे ही इस जगत में अनंतों द्रव्य हैं। उनमें एक-एक द्रव्य की स्वपने अस्ति है, एवं दूसरे अनंतों द्रव्यपने नास्ति है। ऐसा होने पर अपना जीव द्रव्य उनसे अलग पड़ गया। इसप्रकार द्रव्यों में अनंत सप्तभंगी समझना। "प्रमाण के बाहर जाना नहीं...!" अर्थात् 'गुण पर्यायवत् द्रव्यम्' में आ गया। वस्तु स्वरूप से है और पररूप से नहीं है। प्रमाणरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत की चाबी हाथ लगने पर सामान्य स्वचतुष्टय में अर्थात् प्रमाण की सत्ता में आया, यहाँ तक तो सिर्फ प्रमाण की सिद्धि होती है। **"[8]न द्रव्येण खण्डयामि, न क्षेत्रेण खण्डयामि, न कालेन खण्डयामि, न भावेन खण्डयामि"** इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य अपने से अस्तिरूप है पर से नास्तिरूप है। यह अस्ति-नास्ति अनेकांत पर से पृथक बताकर वस्तु-व्यवस्था में लाता है। इसप्रकार प्रमाण पर से भिन्न करने के लिए है। प्रमाण भी प्रमाण में अटकने के लिए नहीं है।

(४) दृष्टांत द्वारा नयरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत :-

अब **"प्रमाण में अटकना नहीं उस न्याय से..."** उस मौसमी में ही भेदज्ञान करना है। जैसे पूरा गन्ना पशु खाता है मनुष्य नहीं खाता। मनुष्य तो मात्र रस चूसता है। वैसे ही कोई साबुत मौसमी खाये तो वह विवेकी नहीं किन्तु पशु है। और उसको साबुत रखकर छोड़ दे तो रस भी सूख जाता है।

साबुत मौसमी न हेय है न उपादेय है। वह मात्र ज्ञेय है। इसलिए इस मौसमी में अब भेदज्ञान का प्रयोग करते हैं। मौसमी में से रस निकालते हैं और छिलका फेंक देते हैं। क्योंकि दो रुपए रस के दिए हैं। और यह रस ग्रहण करने योग्य 'पेय' है।

(५) सिद्धांत में नयरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत :- यह अस्ति-नास्ति अनेकांत भेदज्ञानपरक होने से अमृत है। यदि इसमें से भेदज्ञान को छोड़े तो वह जहर हो जाता है। अर्थात् प्रमाण का पक्ष हो जाता है। जैसे पूरा गन्ना पशु खाता है मनुष्य नहीं, वैसे

8 श्री समयसार आत्मख्याति टीका में से २७१ कलश के पहले

प्रमाणरूप द्रव्य को उपादेय मानता है वह पशु है। नयरूप अनेकांत से प्रयोजन की सिद्धि होती होने से वह परम अमृत है। "उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्तम् सत्" ऐसा आत्मा है वह हेय भी नहीं और उपादेय भी नहीं, मात्र ज्ञेय है। बाहर के पदार्थों में हेय-उपादेय नहीं होता। प्रमाण के अंदर ही हेय-उपादेय होता है।

यदि परिणामी द्रव्य को उपादेय करता है, तो मिथ्यात्व से सहित जीवद्रव्य उपादेय हो जाता है। अर्थात् हेय तत्त्व भी उपादेय हो गया। और इस प्रमाणरूप पूरे द्रव्य को हेय करे, तो उसमें एक उपादेय तत्त्व रहा हुआ है, वह जीवतत्त्व भी हेय हो जाता है। इसलिए खास ध्यान देने लायक बात यह है कि : **"नय विभाग की युक्ति से वस्तु में टुकड़े होते हैं।"** द्रव्य-पर्याय स्वरूप वस्तु में भेदज्ञान की कैंची लगाता है। कपड़े को कुर्ता बनाने के लिए काटना पड़ता है वह बात है। उसीप्रकार सामान्य विशेषात्मक पदार्थ में से ही उपादेय तत्त्व को निकालता है वह कुशल है। जैसे कि [9]स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव की अस्ति है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव की नास्ति है- इसमें दृष्टि का विषय दिया। अब नय विभाग से किस प्रकार एक वस्तु में खंड होते हैं वह देखते हैं।

मैं ध्रुवरूप हूँ और उत्पाद-व्ययरूप नहीं।

मैं अकर्ता हूँ और कर्ता नहीं। मैं निष्क्रिय हूँ और सक्रिय नहीं।

मैं ज्ञानमय हूँ और रागमय नहीं। मैं अपरिणामी हूँ और परिणामी नहीं।

मैं सामान्य हूँ और विशेष नहीं हूँ। मैं अभेद हूँ और भेदरूप नहीं हूँ।

मैं जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं हूँ। मैं ज्ञायकभाव हूँ और अप्रमत्त प्रमत्त नहीं हूँ। इसप्रकार वस्तुव्यवस्था में से ही हेय-उपादेय करने पर त्रिकाली ध्रुवद्रव्य दृष्टि में उपादेय होता है। इसलिए नास्ति ही अस्ति का वाच्य है।

जैसे हमें ज्ञान की बात करनी है तो उसमें आ ही गया कि हमें अज्ञान की बात करनी ही नहीं है। भगवान आत्मा का श्रद्धान करना है, वहाँ आत्मा की श्रद्धा के अलावा अन्य की श्रद्धा नहीं करनी, ऐसे अस्ति-नास्ति साथ ही आती है। क्योंकि जहाँ अस्ति होती है वहाँ नास्ति भी होती ही है। नास्ति नास्तिरूप से नहीं होती। अस्ति तो अस्तिरूप से होती है। लेकिन नास्ति भी अस्तिरूप से होती है। ऐसे अस्ति-नास्ति अनेकांत का फल स्वानुभव है। इसमें जीव से जीव का भेदज्ञान हुआ।

(६) अध्यात्म प्रमाणरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत का स्वरूप :-

कपड़ा काटा और फिर दर्जी ने इस तरह से सिलाई की कि उसका जोड़ दिखता नहीं। ऐसे ही 'गुणपर्यायवत् द्रव्यम्' में भेदज्ञान की कैंची लगाने पर.... मिथ्यात्व के परिणाम, रागादि परिणाम की उत्पत्ति ही नहीं हुई। उपादेय सामान्य ज्ञायक जैसे ही श्रद्धा

9 श्री कलश टीका २५२ कलश

में आया वहाँ तो द्रव्यदृष्टि प्रगट होते ही जैसा सामान्य वैसा विशेष.... उस ही जाति के परिणाम प्रगट हुए। अभेद ज्ञेय प्रगट हुआ।

आत्मा अनंत धर्मात्मक है। अनंत धर्मों का ज्ञान जबतक क्रम-क्रम से होता था तबतक नयपक्ष है। परंतु जिस समय द्रव्य की दृष्टि हुई उस ही समय अनंत धर्मात्मक वस्तु... पदार्थ; एक समय में सम्यग्ज्ञान में लक्ष बिना जानने में आ जाता है। तब अभेदनय कहो या उसे ज्ञानप्रधान निश्चयनय कहो, वह दृष्टिप्रधान निश्चयनय के समय ही प्रगट होता है। एकांत में तो आया परंतु एकांत हुआ नहीं। परंतु सम्यक्एकांत पूर्वक सम्यक्अनेकांत हो गया। सामान्य विशेषात्मक पूरा आत्मा ज्ञान में ज्ञेय हुआ। अकेला सामान्य द्रव्य ध्येय होता है लेकिन इतना ही ज्ञेय नहीं होता। ऐसे ही अकेली पर्याय भी ज्ञेय नहीं होती। पूरा अंशी ज्ञेय हुआ। इसलिए ज्ञेय संलग्न ही होता है। ज्ञेय निर्मल पर्याय से सहित ही होता है। 'युक्तम्' शब्द में मर्म है। "उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्तम् सत्" इसप्रकार 'ध्येयपूर्वक ज्ञेय' होता ही है। यह सम्यक्अनेकांत सम्यक्एकांत का फल है। यह तीसरे प्रकार का अस्ति-नास्ति अनेकांत हुआ। **यह नयपूर्वक प्रमाणरूप अस्ति-नास्ति अनेकांत हुआ।**

(७) श्री अस्ति-नास्ति से अनंतता की सिद्धि :-

प्रत्येक द्रव्य के अंदर अस्ति-नास्ति अनेकांत का स्वरूप विद्यमान है।

* गुण गुणरूप से हैं लेकिन वे गुणीपने नहीं हैं ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकांत है।

* द्रव्य में अनंत गुण हैं; जैसे कि... ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य वगैरह अनंत गुण हैं। उनमें एक-एक गुण स्वपने है और दूसरे अनंत गुणरूप नहीं है। इसप्रकार अनंतों अनंत गुणों में अस्ति-नास्ति अनेकांत रहा हुआ है।

* एक-एक गुण में अनंती पर्यायें हैं। उसमें एक-एक पर्याय स्वपने से है और आगे-पीछे की अन्य पर्यायपने नहीं है। इसप्रकार अनंती पर्यायों में भी अस्ति-नास्ति अनेकांत समझना।

* अब उससे आगे, एक-एक पर्याय में अनंत अविभाग प्रतिच्छेद रहे हुए हैं; उनका प्रत्येक अंश स्वपने है और दूसरे अंशोंरूप नहीं है। इसप्रकार अंदर-अंदर में ही... मूल तक अस्ति-नास्ति अनेकांत का स्वरूप विद्यमान है।

(८) श्री परमागम में से अस्ति-नास्ति के मुख्य अवतरण :-

* समग्र जिनवाणी में अस्ति-नास्ति अनेकांत की मुख्यता से कथन देखने को मिलते हैं। और जिनेश्वरदेव के मार्ग का क्रम भी ऐसा है कि नास्ति पूर्वक ही अस्ति होती है। निषेध में पात्रता, विधि में अनुभव होता है। एक ही गाथा में नास्ति के लेख की स्याही अभी सूखी नहीं थी कि वहीं आचार्यदेव अस्ति से स्वरूप बताने लगते हैं। इसप्रकार परस्पर दोनों विरोधी लगनेवाले धर्मों के द्वारा केवल एक शुद्धात्मा प्रसिद्ध होता है।

* श्री समयसारजी शास्त्र की शुरूआत छठ्ठी गाथा से हुई और छठ्ठी गाथा की शुरूआत नास्ति से हुई। "[10]नहीं अप्रमत्त या प्रमत्त नहीं, जो एक ज्ञायकभाव है", अप्रमत्तदशा का जहाँ निषेध किया, वहाँ तो शुद्धोपयोग में जम गये। इसप्रकार फिर से नास्तिपूर्वक अस्ति हुई।

* "[11]चारित्र नहीं, दर्शन नहीं, नहीं ज्ञान ज्ञायक शुद्ध है।" जहाँ भेद का निषेध किया वहाँ निर्भेद अभेद में आ गये। इसप्रकार नास्तिपूर्वक अस्ति।

* श्री समयसारजी के जीव अधिकार की अपेक्षा अजीव अधिकार को ज्यादा ऊँचा कहा है। क्योंकि नास्ति में अहम् किया है इसलिए भेदज्ञान के लिए ऊँचा कहा है। "[12]वर्णादि गुणस्थान के भाव वे सभी पुद्गल द्रव्य के भाव होने से आत्मा की अनुभूति से भिन्न हैं।"

* श्री नियमसार जी का शुद्धभाव अधिकार। अधिकार का नाम है अस्ति परक और उसका वर्णन नास्ति से किया है। श्री समयसार का अजीव अधिकार नियमसार के शुद्धभाव अधिकार जैसा है। शुद्धभाव अधिकार की शुरूआत नास्ति से हुई। "[13]है बाह्य तत्त्व जीवादि सभी हेय, आत्मा ग्राह्य है"; **यह हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है।** इसमें भी पहले 'हेय' शब्द है और फिर उपादेय शब्द है। इस क्रम में भी नयपूर्वक प्रमाणज्ञान होता है, ऐसा रहस्य समाया हुआ है।

* पुनः श्री नियमसार में कहा कि [14]समस्त जीवराशि (द्रव्यार्थिकनय से) पर्याय से सर्वथा व्यतिरिक्त है। इसप्रकार नास्ति धर्म के कारण ही आत्मा पर्यायों के अभाव स्वभावपने रहा हुआ है।

* श्री परमार्थ प्रतिक्रमण कैसे होता है? तो कहते हैं.... "[15]मैं मार्गणास्थान, गुणस्थान, या जीवस्थान नहीं हूँ। उनका मैं कर्ता नहीं, कारयिता नहीं, अनुमोदक नहीं एवं कर्ता का कारण नहीं हूँ।"

भावी तीर्थाधिनाथ ऐसा लिखते हैं। अब उनकी चौथे गुणस्थान में कर्ताबुद्धि तो गई है फिर भी कर्ता नहीं, कारण नहीं ऐसा क्यों लिखते हैं? सातवें में से जब छटवें में आते हैं तब सविकल्प दशा में निर्मल पर्याय के कर्तापने का जो उपचार आता है वह उन्हें खटकता है, इसलिए उसका निषेध करते हैं तो चैतन्य के विलास में एकाग्र हो जाते हैं।

10 श्री समयसार गाथा-६
11 श्री समयसार गाथा-७
12 श्री समयसार गाथा ५० से ५५ एवं कलश ३७
13 श्री नियमसार गाथा-३८
14 श्री नियमसार गाथा-१९
15 श्री नियमसार गाथा ७७ से ८१

पहले से ही निषेध से शुरुआत की थी और निषेध में लाभ हुआ न? यह निषेध का निषेध नहीं है परंतु जिसकी अस्ति है उसका निषेध है। (अस्थिरता के व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम का निषेध है।)

* श्री नियमसार में कुंदकुंददेव कहते हैं। मूल गाथा में कहते हैं "[16]पूर्वोक्त सर्व भाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिए हेय हैं और अंतःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य आत्मा उपादेय है।" टीका : **यह हेय उपादेय के स्वरूप का कथन है।** नास्तिपूर्वक अस्ति।

* श्री नेमिचंद्र सिद्धांतदेव एक बहुत ही गंभीर बात कहते हैं। "[17]अब आगे, जो कि शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव जिसका है ऐसा परमात्म द्रव्य उपादेय है, तो भी हेयरूप जीव द्रव्य का आठ गाथाओं के द्वारा व्याख्यान करते हैं। किसलिए? **हेय तत्त्व का परिज्ञान होने के पश्चात् उपादेय तत्त्व का स्वीकार होता है।"**

यहाँ जो 'हेय' शब्द है वह कहीं द्वेषवाचक नहीं है। उसीप्रकार विकल्पात्मक भी नहीं है। 'हेय' शब्द है उसे उपेक्षावाचक समझना। और 'उपादेय' शब्द को अपेक्षावाचक समझना। यहाँ नास्ति का वाच्य मात्र अस्तिरूप ही समझना। निषेध अर्थात् विकल्प खड़ा होता है वह बात यहाँ नहीं है।

[18]श्री जयसेन आचार्य भगवान टीका में कहते हैं कि : राग को हेय करना नहीं पड़ता। राग स्वयं 'हेय' हो जाता है। जहाँ ज्ञान आत्मा के सन्मुख होकर परिणम गया वहाँ राग उत्पन्न ही नहीं हुआ उसका नाम 'हेय' है। यह 'हेय' विकल्पात्मक नहीं है। श्री समयसारजी की ३४ गाथा में 'ज्ञान प्रत्याख्यान है' उसका यही अर्थ है।

(९) आत्मा को देखने पर ज्ञानियों को किसकी नास्ति दिखाई देती है?

विशेष भावों की नास्तिस्वरूप से सदा शुद्धात्मा विराजमान होने से सदा शुद्ध है। नास्ति प्रधान आत्मा को देखने पर क्या जानने में आया? शुद्धात्मा में परिणाम मात्र का अभाव है। अर्थात् शुद्धात्मा में मोक्ष नहीं है ऐसा जानने में आया। श्रीमद् जी कहते हैं कि: **दिगंबर आचार्य कहते हैं कि "जीव का मोक्ष नहीं होता, मोक्ष समझ में आता है।"** ज्ञानी ऐसे शुद्धात्मा को जानते जानते शुद्धात्मा का स्वरूप दिखाते हैं। शुद्धात्मा में मोक्ष नहीं है तो फिर मोक्ष की पर्याय को शुद्धात्मा किस प्रकार करे? मोक्ष आत्मा में नहीं है तो फिर मोक्ष की पर्याय को किस तरह से जाने? तो फिर यह सिद्ध हुआ है कि आत्मा मोक्ष का करनेवाला भी नहीं है और मोक्ष का जाननेवाला भी नहीं है। "मैं तो अकर्ता ज्ञायक हूँ" तो अकर्ता ज्ञायक में पुष्ट-तुष्ट हुआ। आत्मा में मोक्ष नहीं है, ऐसा ज्ञानी द्वेष से कहते होंगे

16 श्री नियमसार गाथा-५०
17 श्री द्रव्यसंग्रह गाथा १४ की टीका के पश्चात् अंत में
18 श्री कलश टीका कलश नं. १४ पर पूज्य गुरुदेव श्री के प्रवचन में से

कोई? ना रे! वे तो वस्तु के स्वरूप से कहते हैं।

यह सुनकर योग्य शिष्य को लगता है कि "ओहो! इस बात की तो मुझे खबर ही न थी।" कि : मैं नास्ति स्वभाव के कारण विशेषों से सदा न्यारा ही रहा हूँ। इसप्रकार नास्ति धर्म के स्वरूप का ख्याल आने पर सहज ही व्यवहार के पक्ष का निषेध आता है। अब उसके पुरुषार्थ का वेग निःशंकपने स्वभाव की तरफ आगे बढ़ता है। यदि अकेली विधि से कार्य होता तो ज्ञानी व्यवहार का निषेध ही न कराते। **लेकिन व्यवहार के निषेधपूर्वक ही विधि में आते हैं और विधि में आने पर सहज ही कार्य संपन्न होता है।** इसप्रकार अस्ति-नास्ति अनेकांत के द्वारा शुद्धात्मा की उपलब्धि होती होने से वह अमृत है।

(१०) शूरवीर का साधन अस्ति-नास्ति अनेकांत :-

अस्तिधर्म शुद्धात्मा का जैसा स्वरूप है वैसे स्वभाव से आत्मा की पहचान कराता है। नास्तिधर्म जो शुद्धात्मा में नहीं है ऐसे स्वभाव से पहचान तो आत्मा की ही कराता है। परस्पर दो विरोधी धर्मों का कथन करके अविरुद्ध स्वरूप को सिद्ध करता है।

नास्ति धर्म भी आत्मा में अस्तिरूप से रहा होने से वह धर्मी को ही प्रसिद्ध करता है। अस्तिधर्म ज्ञायक की प्रसिद्धि करता है और नास्ति धर्म पर की प्रसिद्धि करता है ऐसा नहीं है। जैसे कि 'अकर्ता ज्ञायक हूँ' वह अस्तिप्रधान शुद्धात्मा का स्वरूप है और 'कर्ता नहीं हूँ' ऐसा नास्ति से आत्मा का ही स्वरूप है।

जैसे कोई योद्धा युद्ध के मैदान में युद्ध करने जाता है तब वह अपने पास दो वस्तुयें रखता है। एक तलवार और दूसरी ढाल। तलवार से तो दुश्मनों के मस्तक धड़ाधड़ काट डालता है और ढाल से? ढाल से वह दुश्मनों की तलवार के वार (को) झेलता है और स्वयं का रक्षण करता है। युद्ध के रण मैदान में न अकेली तलवार होती है! न अकेली ढाल होती है! न अकेली तलवार कार्यकारी होती है न ही अकेली ढाल कार्यकारी होती है। इसीप्रकार अस्ति धर्म तलवार के स्थान पर है और नास्ति धर्म ढाल के स्थान पर है।

चैतन्य परमात्मा का स्वभाव ही कोई आश्चर्यकरी है। वह कभी शुभाशुभभावरूप होता ही नहीं, इसलिए अनादि अनंत शुद्ध है। यह नास्ति धर्म ऐसी ढाल है, ऐसा वज्र किला है कि वह मलिन परिणाम को या निर्मल परिणाम को अंतःतत्त्व में प्रवेश ही नहीं करने देता। वाह रे वाह प्रभु! नास्ति धर्म तो उपकारी है! उसके कारण भगवान आत्मा शुद्ध रहा है।

ढाल के उदाहरण से इतना समझ में आता है कि जैसे अस्ति धर्म **अंतर्मुखता**

का कारण है उसीप्रकार नास्ति धर्म **बहिर्मुखता** का कारण है ऐसा नहीं है। नास्तिधर्म भी **अंतर्मुखता** का रक्षण करता है। हाँ! इतनी बात जरूर है कि नास्ति धर्म के संबंध में जो नासमझी है वह बहिरदृष्टि का कारण है, न कि नास्तिधर्म की समझ बहिरदृष्टि का कारण।

अब कदाचित् कोई जीव नास्ति को नास्तिरूप से ही लक्ष में लिया करे और नजर पर के ऊपर... राग के ऊपर.. भेद के ऊपर... रखता रहे तो अज्ञान है। लेकिन जिनेन्द्रदेव के मार्ग में तो नास्तिपूर्वक सीधे अस्ति में आये ऐसी बात है।

(११) उपसंहार :-

सर्वज्ञ आम्नाय में... न्यायमार्ग में, आत्मा का अनुभव व्यवहार के निषेधपूर्वक विधि से ही होता है। नास्ति का ज्ञान किये बिना शुद्धात्मा का यथार्थ निर्णय भी नहीं होता। और अस्ति के ज्ञान बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। व्यवहार के निषेध में ही भेदज्ञान की परिणति बलवान होती है। और विधि में आत्मसन्मुख होती है। इसलिए कोई वीर्यवान जीव ही व्यवहार का निषेध कर सकता है। और जो व्यवहार का निषेध करता है उस जीव को अपेक्षा से 'सम्यक्त्व का अधिकारी भी कहा है'।

इसप्रकार फलित होता है कि : अस्ति गुणप्रधान द्रव्य को देखो चाहे नास्ति गुणप्रधान द्रव्य को देखो, दोनों का वाच्य केवल शुद्धात्मा है। दोनों धर्म केवल धर्मी को ही प्रसिद्ध करते हैं। साथ साथ इतनी बात सत्यार्थ है कि नास्तिधर्म के स्वरूप का विचार करने पर... या उसका कथन करने पर या उसके विकल्प में... पर की सापेक्षता हो - ऐसा लगता है लेकिन नास्ति धर्म का स्वरूप पर सापेक्ष नहीं है, परंतु अस्ति सापेक्ष है। दोनों धर्म एक वस्तु का स्वभाव होने से भेदज्ञान कराके आत्मानुभव कराते हैं। इसप्रकार अस्ति-नास्ति अनेकांत ऐसा है कि सम्यग्दर्शन न हो तो त्वरा से हो जाये और हो तो जाये नहीं... और चारित्र लाये ऐसा यह भेदज्ञान अमृत है।

श्री जिनमंदिर के गगनचुंबी धवल शिखर पर स्वर्ण कलश की शोभा तो कोई न्यारी ही होती है। ऐसे ही जैनदर्शन के साररूप, उन्नत चोटी पर यह 'कलश सूत्र' कैसा शोभायमान है! "मैं जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं हूँ" इसमें अस्ति-नास्ति अमृत के द्वारा कर्ताबुद्धि का निषेध कराया। पर्यायमात्र से रहित सारभूत ध्रुव ज्ञायक अर्थात् द्रव्य का निश्चय दिया।

अब **"जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता"** उसमें भी अस्ति-नास्ति अमृत के द्वारा ज्ञानपर्याय का निश्चय आगे देखेंगे।

ज्ञानरूप अस्ति-नास्ति भेदज्ञान द्वार :

(१) प्रमाणरूप ज्ञानपर्याय में अस्ति-नास्ति अनेकांत का स्वरूप :-

प्रमाणज्ञान में अस्ति-नास्ति का स्वरूप किसप्रकार से रहा हुआ है वह जानना मात्र आवश्यक ही नहीं है परंतु अनिवार्य भी है। क्योंकि यह भी जैनदर्शन का महत्वपूर्ण विषय है।

जैसे द्रव्यपर्यायस्वरूप वस्तु में अस्ति-नास्ति अनेकांत द्वारा भेदज्ञान होने पर निष्क्रिय ध्येय दृष्टि में आता है, उसीप्रकार ज्ञानपर्याय में अस्ति-नास्ति अनेकांत का प्रयोग करने पर उपादेयरूप स्वप्रकाशक भाव का ग्रहण होता है।

इस ज्ञानपर्याय में अस्ति-नास्ति नाम का धर्म होने के कारण ज्ञानपर्याय 'करने के' नास्तिरूप तो है ही, परंतु वही ज्ञानपर्याय पर को 'जानने के' नास्ति स्वरूप है। वही ज्ञानपर्याय ज्ञायक को जानने के अस्तिरूप है अर्थात् कि स्वभावरूप है। इसप्रकार अस्ति-नास्ति दो धर्मों के द्वारा एक ज्ञानपर्याय का स्वभाव सिद्ध होता है। एक ही ज्ञानपर्याय दो धर्मोंवाली धर्मी है। यह अस्ति-नास्ति धर्म युगलिया हैं। "अस्ति-नास्ति युगलम्" इसलिए नास्तिधर्म में अस्तिधर्म है और अस्तिधर्म में नास्तिधर्म है। क्योंकि वे दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। इसप्रकार नास्ति में अस्ति छुपी हुई है।

यदि मात्र अस्ति से बात करें तो उसमें छल ग्रहण होने का अवकाश भी है। 'ज्ञान स्व को जानता है' अब इसमें से कोई ऐसा भी निकालता है कि "ज्ञान स्व को भी जानता है; और पर को भी जानता है"। व्यवहार के पक्षवाले (जिससे) ऐसा अर्थ न करें (उनके लिए) और अनादि संसारी जीवों को व्यवहार का तीव्र पक्ष रहा हुआ है वह किस प्रकार से छूटे, इस हेतु से ज्ञानी अस्ति-नास्ति से बात करते हैं। अस्ति-नास्ति धर्म समझने से दोष ग्रहण नहीं होता। क्योंकि अस्ति-नास्ति के किले में ज्ञान स्वभाव सुरक्षित है।

(२) अस्ति-नास्ति धर्म का स्वाभाविक स्वरूप:-

अस्तिधर्म का स्वरूप स्वभावरूप है परंतु रागरूप नहीं है।

नास्तिधर्म का स्वरूप स्वभावरूप है परंतु द्वेषरूप नहीं है।

यदि अस्ति-नास्ति धर्म में समय भेद दिखेगा तो जो अस्तिधर्म है वह रागरूप दिखेगा; और नास्तिधर्म है वह द्वेषरूप दिखेगा।

एक समय में अस्ति-नास्ति ऐसा द्विरूप ऐसा एकरूप स्वरूप दिखेगा तो विशेष में भी अस्तिनास्ति अनेकांत का जन्म होगा। इसलिए नास्ति धर्म द्वेषरूप, विकल्परूप या कृत्रिमरूप नहीं समझना। यह नास्ति धर्म स्वाभाविक धर्म होने से अनादि अनंत सदाकाल पर को जानने की नास्तिस्वरूप है। पर को जानने के निषेध में स्वयं जाननहार

जना जाता है। यह निषेध पर को जानने के निषेध के लिए ही नहीं है, परंतु स्वप्रकाशक स्वभाव का आह्वान करने के लिए यह निषेध है। ऐसा नहीं है कि प्रयोजन की सिद्धि के लिए पर को जानने का निषेध करना है। यह कामचलाऊ बात नहीं है, यह तो सदा काल की सैद्धांतिक बात है।

(३) क्या आत्म अनुभव इतना सुगम और सरल है!

ज्ञान वास्तव में पर को जानता ही नहीं है ऐसा भाव जहाँ अंतरंग से उठा वहाँ तत्क्षण जो जाननहार जानने में आ रहा था, विशेष में भी वह स्वभाव प्रगट हो जाता है। क्या पर को जानने का निषेध किया तो जाननहार जानने में आ गया? 'हाँ।' पर को जानने के निषेध में ही जाननहार को जानने की अस्ति छुपी हुई है। पर को जानने की नास्ति में तो जाननहार को जानने की अस्ति वर्तती है। क्योंकि "[19]जीव भी ग्रहण करने नहीं जाता कर्णगोचर शब्द को" ज्ञान स्वभाव पर को जानने के अभावरूप है और जाननहार को जानने के सद्भावरूप है।

संत कहते हैं कि: तू पर को जानने का निर्दयपने से निषेध तो कर और फिर देख मजा! आत्मानुभव न हो तो हमारे पास से ले जाना।

'मैं पर को जानता हूँ' वह श्रद्धापूर्वक ज्ञान का दोष है। वह मिथ्यात्व का राग है। श्रद्धा में ऐसा है कि "मैं पर को जानता हूँ" तो नियम से उपयोग पर के सन्मुख ही मुड़ा करेगा। अब कोई व्यक्ति ज्ञान में अस्ति से लिया करे कि: "मैं जाननहार हूँ, जाननहार जानने में आता है" और उसकी श्रद्धा में पहले वाला शल्य पड़ा है कि "मैं पर को जानता हूँ" अथवा "पर मुझे जानने में आता है" ऐसा रहा करे, तो उपयोग आत्मसन्मुख हो जाये ऐसा हो ही नहीं सकता। वास्तव में पर जानने में नहीं आता, उसमें ही श्रद्धापूर्वक वीतरागी ज्ञान, ज्ञायक के अभिमुख होता है।

(४) प्रतिभासित ज्ञानकला :-

स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय का प्रमाणरूप व्यवहार है यह आगम का वचन है। दूसरा आगम का ऐसा वचन भी है कि स्वपर का प्रतिभास होता है। ये दोनों बातें आगम से प्रसिद्ध हैं। अब, स्वपरप्रकाशक और स्वपर का प्रतिभास इन दोनों के बीच में क्या अंतर है वह देखते हैं। श्री पंचाध्यायी में महत्व की बात बतलाते हैं कि : ज्ञान स्वसन्मुख कैसे हो और पर से विमुख कैसे हो वह बात है। **"[20]अर्थ विकल्पो ज्ञानं भवति तदेकं विकल्पमात्रत्वात।"** ज्ञान स्वपरपदार्थ को विषय करता है अर्थात् कि दो का प्रतिभास होता है। दोनों के प्रतिभास में आने पर ज्ञान में आ जाओगे; और स्वपर दोनों

19 श्री समयसार ३७३ से ३८२

20 श्री पंचाध्यायी प्राकृत गाथा ५५८ (माखनलालजी)

को जानता है- ऐसा लेने से परज्ञेय के सन्मुख हो जाओगे। इसप्रकार ज्ञान के विषय भेद से दो भेद हो जाते हैं। यही बात श्री कुंदकुंददेव फरमाते हैं।

"[21]प्रथम तो अर्थ विकल्प वह ज्ञान है। वहाँ अर्थ अर्थात् क्या? स्वपर के विभागपूर्वक रहा हुआ विश्व वह अर्थ है। उसके आकारों का अवभासन वह विकल्प है। जिसमें युगपद् स्वपर के आकार अवभासित होते हैं।" इसमें एक रहस्यमय बात दृष्टिगोचर हुये बिना नहीं रहती कि ज्ञान दोनों को जानता है या दोनों का प्रतिभास होता है। यह अंतर साधारण नहीं है, पूर्व-पश्चिम जितना अंतर है।

[22]पृथ्वी आदि **काया** जीव नहीं है क्योंकि **काया** में जीव के लक्षणभूत चैतन्य स्वभाव का अभाव है। उनमें ही जो स्व-पर की ज्ञप्तिरूप प्रकाशित होता हुआ ज्ञान है, वह ही गुण-गुणी के कथंचित् अभेद के कारण, जीवपने प्ररूपित किया जाता है।

कर्तृत्व तो छोड़ा लेकिन ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है तो स्व को जानूँ और पर को जानूँ! एकांत पर को जानूँ तो तो भ्रांति कहलाती है; लेकिन... आत्मा को जानते जानते मैं पर को जानूँगा! वह भी भ्रांति है। अर्थ विकल्पपना सभी ज्ञानों में है। अब प्रथम तो रागादि, देहादि का 'प्रतिभास' होता है वहीं प्रश्न का विराम हो जाता है क्योंकि 'मैं पर को जानता हूँ' वह प्रश्न प्रतिभास का स्वीकार करने पर उठता नहीं।

अब यहाँ कहते हैं कि [23]जो प्रमाण में से निश्चय निकालता है वह जिनागम में कुशल है। क्योंकि प्रमाण है वह भेदज्ञान के लिए है। इस प्रतिभासरूप स्वपरप्रकाशक में विधि-निषेध करना चाहिए। स्वपरप्रकाशक में से स्वप्रकाशक निकाले तभी साध्य की सिद्धि होती है। स्वपर दोनों जानने में आते हैं- वह प्रमाणज्ञान का पक्ष होने से उसमें अनुभव नहीं होता। क्योंकि स्वपरप्रकाशक अपनेआप में ही व्यवहार है। और इस व्यवहार को सत्यार्थ माने तो मिथ्यात्व का दोष लगता है।

प्रमाण के पक्ष में से प्रथम तो सविकल्प निश्चयनय के पक्ष में आना वह भी मुश्किल है। फिर उस पक्ष से छूटकर पक्षातिक्रांत होना उसमें अनंत पुरुषार्थ है। व्यवहार से पर को जानने का निषेध करे तब तो अभी स्वभाव के पक्ष में आया है। इसलिए तो कहा है कि: "[24]व्यवहार का जब प्रलय कर दिया जाता है तब एक शुद्धनय प्रकाशमान होता है।" यह स्वपरप्रकाशकज्ञान प्रमाणरूप पर्याय का लक्षण होने से व्यवहारनय का विषय है। और भगवान आत्मा व्यवहारनय का विषय ही नहीं है। अब

---

21 श्री प्रवचनसार १२४ गाथा
22 श्री पंचास्तिकाय - १२१ गाथा
23 श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा
24 श्री देवसेन आचार्य नयचक्र में से, पेज ३१-३२

श्रीगुरु की दिव्य देशना प्राप्त होने पर वह व्यवहार का निषेध करता है कि : ज्ञेय तो जानने में आते नहीं, ज्ञेयाकार ज्ञान भी नहीं और ज्ञानाकार ज्ञान भी नहीं। क्योंकि "[25]सामान्य को देखता, विशेष को नहीं देखता"। देखो! इसमें भी आचार्यदेव ने अस्ति-नास्ति अनेकांत का प्रयोग किया। ऐसे अस्ति-नास्ति में आने पर पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद होने पर शुद्धनय प्रगट होता है।

इसप्रकार पर के प्रतिभास को गौण करके, गर्भित करके, उसका लक्ष छूटते ही नयपूर्वक सम्यक् प्रमाणज्ञान का जन्म होता है। ऐसे निर्विकल्प स्वरूप का कथन साधक सविकल्प दशा में आकर करते हैं।

(५) स्वपरप्रकाशक का सम्यक् स्वरूप :

स्वपर प्रतिभास में आने पर अपेक्षित गुण प्रगट हुआ। अब उसे बल आता है और ज्ञानपर्याय के प्रमाण में भेदज्ञान करने पर स्वप्रकाशक प्रगटता है। इस स्वप्रकाशक में अकेला सामान्य ज्ञायक ही ज्ञात होता है। यह स्वप्रकाशक उपादेय स्वभाव को ही अवलोकता है। अब निर्विकल्प ध्यान में उस ही समय निश्चय स्वपरप्रकाशक प्रगटता है। यह ज्ञान का सविकल्प साकार स्वभाव होने से ज्ञान ज्ञान को जानता है। अथवा ज्ञान ज्ञायक को जानता है और आनंद आदि निर्मल पर्यायें प्रगट हुई हैं उनको भी जानता है। उसमें मात्र जानना ही है। यह जानन स्वभाव अंदर में स्व या पर किसी की तरफ झुके बिना ज्ञानत्व स्वभाव से जान लेता है।

यदि ज्ञान में बिल्कुल स्वपरप्रकाशकपना न हो तो सम्यग्दर्शन हुआ उसका पता कैसे चलता? निर्विकल्प के काल में यदि सविकल्प निश्चय स्वपरप्रकाशक प्रगट न हो तो एक समय में "उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्तम् सत्" का ज्ञान नहीं होता। तो उसे जानने के लिए दो समय लगते तो तो पक्ष रह गया परंतु पक्षातिक्रांत नहीं हुआ। अंदर में लक्ष बिना भी बहुत जानने में आता है। यदि जानने में न आये तो ज्ञेय की सिद्धि नहीं होती। और 'ध्येयपूर्वक ज्ञेय का' तो समय एक है। वस्तु में क्रम नहीं है, ज्ञान में क्रम नहीं है, परंतु कथन में क्रम पड़ता है।

अब साधक सविकल्प दशा में आता है तब [26]जिस ज्ञान में राग प्रतिभासित होता है ऐसा ज्ञान आत्मा को जानता हुआ परिणमता है। श्री आचार्यदेव कहते हैं कि "[27]जाना हुआ प्रयोजनवान है"- वह गुण नहीं वरन् दोष है। क्योंकि उसमें श्रेणी अटकती है। जो श्रेणी प्रगट करने के लिए उपदेश है, सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए भी वही उपदेश है।

---

25 श्री प्रवचनसार जी ११४ गाथा
26 श्री समयसार गाथा-७५
27 श्री समयसार गाथा-१२

इसप्रकार "[28]स्वपरप्रकाशक भी कथंचित् है"। इस निर्विषयी ज्ञान का स्वरूप दर्शाते हुये पंचाध्यायी ने तो "स्वपरप्रकाशक ज्ञान को[29] असत् लक्षण" बताया है।

लक्षपूर्वक आत्मा को जानता है वह ज्ञान का स्वप्रकाशक स्वभाव है। आत्मज्ञान एकांतरूप से स्वप्रकाशक ही है। परप्रकाशक तो नहीं परंतु स्वपरप्रकाशक भी नहीं। स्वप्रकाशक एवं निश्चय स्वपरप्रकाशक ज्ञान में अस्ति-नास्ति अनेकांत वर्तता होने से वह कभी पर को जानने जाये या ज्ञान में कभी परपदार्थ स्वज्ञेय हो जायें ऐसा होनेवाला नहीं है। वास्तव में परमार्थ सत्य तो यह है कि ज्ञायक के अहम् में पर को जानने के निषेधरूप परिणमन है। उसे विकल्परूप निषेध की जरूरत नहीं है। जिस समय पर्याय में अस्ति धर्म है उसी समय पर्याय में नास्ति धर्म भी है ही। तो फिर उसरूप उसका परिणमन भी होता है न? पर्याय एक! उसके स्वभाव दो हैं और उसका स्वीकार वह धर्म है। अर्थात् जैसा अज्ञानी मानता है वैसा स्वपरप्रकाशक तो कभी आनेवाला ही नहीं है। इसलिये निश्चय से ही ज्ञान आत्मा को जानता है और निश्चय से ही ज्ञान पर को (लक्षरूप) नहीं जानता, ये दोनों निश्चय परिणमनरूप हैं। किसी जीव को पर का ज्ञान होता ही नहीं, अशक्य है।

ज्ञान आत्मा को ही जानता है। पर को जानना अशक्य है। इसमें कथंचित् लागू नहीं पड़ता। स्वभाव में कथंचित् लागू नहीं पड़ता। अस्ति-नास्ति धर्म ध्येय की अपेक्षा से भले ही अलग हो लेकिन ज्ञेय की अपेक्षा से भिन्न नहीं है। सब ही एक अभेद स्वज्ञेय है।

(६) अस्ति-नास्ति प्रवाद अर्क :-

स्वपरप्रकाशक ज्ञानपर्याय का प्रमाणभूत लक्षण है वह पहले कहा जा चुका है। वह निगोद से लेकर सिद्ध तक सभी जीवों को है। इस ज्ञानपर्याय में स्व का प्रतिभास तो है और साथ-साथ पर का प्रतिभास भी है। उसमें उसे पर के प्रतिभास के निषेध का बल आना चाहिए वह आता नहीं। इसलिये विधि निषेध में आने से उसे भेदज्ञान होता है। स्वपर के प्रतिभास में किसी की (विषय की) मुख्यता नहीं है। जबकि अस्ति-नास्ति अनेकांत में तो लक्ष की मुख्यता है।

अब स्वपर दोनों ज्ञात होते हैं ऐसे स्वपरप्रकाशक के पक्षवाला स्व के प्रतिभास का स्वीकार तो करता है लेकिन... वह पर प्रतिभास के लक्ष का निषेध नहीं कर सकता। शास्त्र में [30]"व्यवहार को परमार्थ का प्रतिपादक कहा है लेकिन वह अनुसरण करने योग्य नहीं है।" यदि पर के प्रतिभास का निषेध वर्ते तो ही पर का प्रतिभास, प्रतिभास कहलाता

28 श्री नियमसार गाथा १५९
29 श्री पंचाध्यायी गाथा ५४२/५४३
30 श्री समयसार गाथा ९-१०

है, नहीं तो पर के प्रतिभास का लक्ष होने से अज्ञान हो गया, ज्ञान कहाँ रहा! जो कि अप्रतिबुद्ध को प्रतिसमय अनादि से विशेष में चल ही रहा है। अज्ञानी बोलता है ज्ञान स्वपरप्रकाशक, लेकिन उसे तो एकांत परप्रकाशक ही है। व्यवहार स्वपरप्रकाशक वह उसे निश्चयरूप में ग्रहण हो गया है। व्यवहार को परमार्थ मानता है तो फिर परमार्थ का ग्रहण किस प्रकार हो? इसलिये संत फरमाते हैं कि...

हे भव्य! तू एक नास्ति धर्म को व्यवस्थित समझ ले तो तुझे पूरा धर्मी भगवान जानने में आ जायेगा। पर को जानता हूँ- उस शल्य को जीवित रखकर 'जाननहार जानने में आता है' ऐसे विकल्प के रथ पर सवार होगा तो तुझे अनुभव तो दूर रहा लेकिन यथार्थ निर्णय भी नहीं होगा। विधि-निषेध के बिना यथार्थ निर्णय भी नहीं होता। अस्ति के जोर से नास्ति का विकल्प गलता है और स्वभाव के बल से विधि का विकल्प टलता है।

मिथ्या एकांत एवं मिथ्या अनेकांत उन दोनों का निषेधक अस्तिरूप सम्यक् एकांत और अस्ति-नास्तिरूप सम्यक् अनेकांत है! इसप्रकार पर को जानने का निषेध किये बिना पर का लक्ष किसी को न छूटा था...न छूट सकता है...और न छूटनेवाला है।

(७) ज्ञानपर्याय का निश्चय स्वभाव :-

अज्ञानी प्राणी का झुकाव... ढलान... खिंचाव... रुझान... श्रद्धान पर में होने से उसे निषेध के स्वर में समझाया। 'ज्ञायक ज्ञायक को जानता है' ऐसा कहने से अतत्त्वविद् समझ नहीं पाता था। इसलिये उसे कहा कि : **"[31]ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का, ज्ञायक अहो ज्ञायक तथा,"** नास्तिपूर्वक अस्ति समझाई। स्वयं समझना और समझाना उसमें नजदीक का यदि कोई व्यवहार हो तो वह यह अस्ति-नास्ति बलवान करण (साधन) है।

लक्षण लक्ष्य को ही प्रसिद्ध करता है, अलक्ष्य को नहीं। '[32]परलक्ष अभावात्' उस न्याय से विशेष में भी विशेष को जानने का अभाव है, ऐसा ही ज्ञानपर्याय का नास्ति स्वभाव है। नास्ति धर्म के कारण यदि पर्याय पर्याय को भी जानती न हो तो पर को किस तरह से जाने? जिसका अवलंबन है उसका ही मात्र अवलोकन है। जो विभक्त है वह जानने में ही नहीं आता। "[33]भिन्ना भावा नो दृष्टा:" पर के लक्ष के अभाववाली अवस्था वह ही प्रत्याख्यान है। इसमें भी अस्ति-नास्ति अनेकांत आया!

जब एक अभेद ज्ञान समुद्र भगवान आत्मा का जानना हुआ, पर के लक्ष के अभावरूप स्वभाव का ग्रहण हुआ; तब पर को ग्रहण करनेवाली भाव इन्द्रिय लब्ध हो गई। अर्थात् कि व्यापाररूप प्रगट नहीं हुई। यही अस्ति-नास्ति अनेकांत का परमार्थ

31 श्री समयसार गाथा ३५६ से ३६५
32 श्री परम अध्यात्म तरंगिणी कलश-४२
33 श्री समयसार ३७ कलश

स्वरूप है। लौकिक में पत्नि धर्म को तो मात्र पति धर्म का ही अवलंबन होता है। अब जब पुत्र की तरफ से माता है, तब भी पति के अवलंबन से ही तो मातृत्व प्रगट हुआ है, ऐसे ही ज्ञानमात्र कहने से अवलंबन तो मात्र अस्तिभाव का है और बिना पुरुषार्थ ही नास्ति का ज्ञान हो जाता है।

'हाँ' इतना है कि आत्मा का ज्ञान तो आत्मा के सन्मुख होते हैं तभी होता है। ज्ञान ज्ञानपर्याय के सन्मुख रहे और अस्ति-नास्ति का ज्ञान हो जाये ऐसा नहीं बनता। वह तो अस्ति में आया तो लोकालोक की मेरे में नास्ति है, वह सहज आ गया। वह अस्ति में आया और आत्मा आत्मा को जाननेरूप परिणमता है; तो अस्ति के ज्ञान में नास्ति का ज्ञान आ ही जाता है। जो आत्मा में नहीं है उसे सिद्ध करने के लिए ज्ञान का उपयोग वहाँ लगाना नहीं पड़ता। यह राग मेरे से भिन्न है- इसप्रकार ज्ञान राग को प्रसिद्ध नहीं करता, अर्थात् नास्ति के सन्मुख नहीं होना पड़ता।

उदाहरण: तुम अपने घर में दाखिल हुए तो बराबर का घर मेरे घर में नहीं है ऐसा सहज ही आ गया। यह घर मेरा; यह घर तुम्हारा - ऐसा कहने नहीं जाना पड़ता। जहाँ आत्मा में एकाकार हुआ वहाँ पर में से एकत्वबुद्धि छूट जाती है। उसके लिए नया पुरुषार्थ नहीं है।

आत्मा के सन्मुख रहते रहते नास्ति का ज्ञान सहज लक्ष के बिना (अंदर) में हो जाता है। इसप्रकार नास्ति धर्म पर की सन्मुखता छुड़ाता है। क्योंकि नास्ति धर्म को भी अवलंबन तो ज्ञायक परमात्मा का ही है न?! नास्ति धर्म का स्वरूप समझने पर सहज ही पर का लक्ष छूट जाता है।

(८) निष्कर्ष :-

वास्तव में पर जानने में नहीं आता और 'जाननहार जानने में आता है' और 'मैं जाननहार हूँ'; उसमें आया; अनुभव हुआ! अब फिर से 'पर को जानता हूँ; पर जानने में आता है' वह किस तरह से आ सकता है? नीचे की भूमिका वाले ज्ञानी पर के जाननपने का निषेध करके स्वप्रकाशक में आते हैं; तो फिर परिपूर्ण केवलज्ञान में लोकालोक कहाँ से जानने में आये! वे लोकालोक को न ही जानते हैं.... न ही जानने में आता है....! मात्र प्रतिभास होता है; वहाँ पूर्ण विराम है।

*** वास्तव में पर जानने में नहीं आता उस नास्तिरूप निश्चय में पर के प्रतिभास का निषेध नहीं है।**

*** 'जाननहार जानने में आता है' वह अस्तिरूप निश्चय है। उसमें स्व के लक्ष का निर्देश है।**

*** "मैं जाननहार हूँ" वह परमार्थरूप निश्चय है। उसमें ज्ञानत्व स्वभाव**

ज्ञातव्य होता है।

जाननहार ही जानने में आ रहा है ऐसा मेरा अस्ति स्वभाव है। वास्तव में पर जानने में न आये- ऐसा मेरा नास्ति स्वभाव है। इसप्रकार स्वभाव से ही जाननहार ज्ञात होता है और स्वभाव से ही पर जानने में नहीं आता।

ज्ञान का स्वभाव पर को जानने का नहीं है और ज्ञान स्वभाव से ही पर को जानता नहीं है- ये स्वीकार किए बिना सम्यग्दर्शन किसके आश्रय से होगा?

अस्ति-नास्ति सापेक्ष होने से नास्ति धर्म को जानने पर पूरा धर्मी भगवान आत्मा ज्ञात हो जाता है। जहाँ 'पर को नहीं जानता' वहाँ उसी समय ज्ञायक ज्ञायक को जाननेरूप परिणम जाता है। नास्तिअस्ति का समय एक है। जहाँ नास्तिधर्म को जाना वहाँ अस्ति हो गई। स्वाभाविक ज्ञान में स्वभाव ज्ञात होता है। वह ज्ञान सम्यक् एकांतरूप ही है। इस ज्ञान में अस्ति-नास्ति निर्विकल्पता है। आत्मा का एक एक धर्म और उसका स्वरूप समझे तो नियम से पर का लक्ष छूटकर आत्मा का लक्ष हो जाता है।

नास्ति का जोर आयेगा तो अस्ति का जोर आयेगा और उसमें अनुभव हो जायेगा। यह गारंटी है। अस्ति-नास्ति अनेकांत डबल इंजन के स्थान पर है। नास्ति का जोर नहीं आयेगा तो अस्ति का जोर नहीं आयेगा।

पर्याय में पर के प्रतिभास की अस्ति;
मेरे में उस ज्ञानपर्याय की भी नास्ति;
ऐसे ज्ञायक भाव की सदा ही अस्ति;
यह अस्ति की मस्ति उसका नाम स्वानुभव।

आत्मा आत्मा को जानता है ऐसे भेद में भी अनुभव का नाश होता हो तो फिर ज्ञान पर को जानता है वह बात ऐजेंडा पर खड़ी रहती ही नहीं। जीवमात्र को जो ज्ञायक अनादि से प्रतिभासरूप है वह सबको उपयोगात्मक हो ऐसी... आत्म भावना के साथ विराम लेती हूँ।

जिज्ञासा : हमें तो सब कुछ जानने में आता है।

समाधान : इसका अर्थ ये हुआ कि आत्मा का स्वभाव ही है। स्वयं जानना-देखना स्वयं को बस! ये स्वभाव है; पर को जानना-देखना तो नहीं परन्तु पर का करना वह तो बिल्कुल नहीं।

(श्री प्रवचन रत्न भाग-२ पेज नं. ९७)

ॐ
श्री सद्गुरु देवाय नमः
जाननहार जानने में आता है
तस्मै स्वाभाविक भावाय नमः

१

"जाननहार जानने में आता है"। यह जिन सूत्र है। अनुभव में से आई हुई बात है।

२

समस्त जिनेन्द्रों की दिव्यध्वनि का संक्षेप सार और हमारे स्व-संवेदन का सार; "जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है।"

३

दिव्यध्वनि का सार: "जाननहार जानने में आता है।"

४

कई मुनिवर इतनी ही बात करते हैं, "जाननहार जानने में आ रहा है।"

५

इतनी ही देशना की जरूरत है; "जाननहार जानने में आ रहा है" उसे तू जान!

६

आचार्यदेव कहते हैं - मेरी दूसरी कोई बात तू मान या न मान उसका मुझे आग्रह नहीं है, परन्तु एक बात जरूर मानना! चौबीसों घंटे 'मैं पर को नहीं जानता'- ऐसा निर्दयपने निषेध करना तो तुझे अवश्य जाननहार जानने में आ जाएगा।

७

सीमंधर प्रभु के श्रीमुख से निकला हुआ वाक्य, "परिणाम होने योग्य हुआ करते हैं और जाननहार जानने में आया करता है।"

८

सभी शास्त्रों का सार इतना ही है, जाननहार जानने में आ रहा है। जानने में 'आयेगा' ऐसा नहीं। प्रश्न विराम हो जाए ऐसा स्वरूप है। इसमें बारह अंग का सार है।

९

ऊँचे में ऊँचा, आसान में आसान, संक्षिप्त में संक्षिप्त, मोक्ष में जाने का रोकेट

का रस्ता; जाननहार जानने में आ रहा है।

१०

"होने योग्य होता है, जाननहार जानने में आता है"। 'होने योग्य होता है वह जानने में आता है' ऐसा नहीं कहा। मंत्र है यह।

११

सुखी होने का एकमात्र उपाय "जाननहार जानने में आ रहा है"।

१२

"जाननहार ही जानने में आता है" और तू जाननहार को ही जाननेवाला है। तू पर को जाननेवाला नहीं है। भ्रमणा छोड़ दे प्रभु!!

१३

केवल "जाननहार ही जानने में आता है।" केवल देखनहार ही दिखता है। जाननहार को जाननेवाला नहीं दिखता। वह तो... केवल जाननहार, जाननहार, जाननहार.. वह तो केवल ज्ञानमयी ज्ञानमूर्ति ज्ञायक को ही जानता है।

१४

ये सब जीव बैठे हैं, अभी उनके ज्ञान में "जाननहार ही जानने में आ रहा है"। परन्तु मुझे "जाननहार जानने में आ रहा है" इस बात का तिरस्कार करके, अस्वीकार करके, मुझे प्रवचन सुनाई दे रहा है - ऐसा मानकर मिथ्यात्व पुष्ट कर रहे हैं। आहाहा!!

१५

पर तो मुझे अनुमान में भी जानने में नहीं आता; अनुमान में भी "जाननहार जानने में आता है"। फिर अनुभव से भी "जाननहार जानने में आता है"। जाननहार को जाने ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। रस को जाने ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है।

१६

"जाननहार जानने में आता है" ऐसे विचार में भी साध्य की सिद्धि नहीं होती; तो फिर पर जानने में आता है उसमें क्या होगा?

१७

ज्ञान है वह स्वभाव से आत्मा को जानता है, उसमें निश्चयाभासी नहीं होता। स्वभाव निश्चयनय से तथा व्यवहारनय से निरपेक्ष होता है। स्वभाव में नय का प्रयोग नहीं होता। निश्चय से जाननहार जानने में आता है, व्यवहार से पर जानने में आता है - ऐसे नयों से स्वभाव निरपेक्ष है; जबकि नय सापेक्ष हैं। जाननहार निश्चय से जानने में नहीं आता, जाननहार स्वभाव से ही ज्ञान में जानने में आता है। ऐसा कोई ज्ञान का अद्‌भुत स्वभाव है।

१८

"जाननहार जानने में आता है" लाखों करोड़ों में कोई ही इसमें आता है। यह नजदीक का विकल्प है।

१९

सकल साध्य की सिद्धि का एकमात्र उपाय। "जाननहार जानने में आता है।"

२०

"जाननहार जानने में आता है" यह मोह के नाश के लिए रामबाण उपाय है।

२१

कुंदप्रभु ने कहा: "जाननहार को जान!" अमृतप्रभु ने कहा : "जाननहार जानने में आ रहा है।"

२२

कितना आसान कर दिया अनुभव ! अमृतप्रभु ने उत्तम से उत्तम समाचार दिए। सभी को "जाननहार जानने में आ रहा है"।

२३

पर को जानता हूँ - यह दोष की उत्पत्ति की खान।

"जाननहार जानने में आता है" यह दोष के नाश की खान।

२४

भगवान का कहा हुआ तत्त्व किसे बैठे? पर को नहीं जानता, मुझे "जाननहार जानने में आता है" यह सिद्धांत बैठे उसे।

२५

दिन में दस बार बोलना ; "मैं जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आ रहा है।"

२६

"जाननहार जानने में आता है" इसी वचन से समझ ले ज्ञानी की पहचान।

२७

"मुझे जाननहार जानने में आता है", ऐसे विकल्परूप परिणमता है उसे जाननहार जानने में नहीं आता, और जाननहारपने परिणमे हुए आत्मा को "जाननहार जानने में आता है"।

२८

मैं पर को जानता हूँ ऐसा जानते-जानते अनंतकाल गया, उसे आत्मदर्शन नहीं हुआ। अब एक अंतर्मुहूर्त "पर को नहीं जानता, जाननहार जानने में आता है", तो अंतर्मुहूर्त में अनुभव होता है। उसे ज्यादा देर नहीं लगती।

२९

जिज्ञासा : वर्तमान ज्ञान की पर्याय में यदि बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आता होता तो कोई अज्ञानी ही न रहता। इसलिए जानने में आता ही नहीं। यदि जानने में आता होता तो कोई जीव एकइन्द्रिय दोइन्द्रिय ना रहता। (सिद्ध हो गया होता!)

समाधान : सभी अज्ञानी प्राणियों को वर्तमान वर्तते उपयोग में "जाननहार जानने में" आ रहा है। क्योंकि ज्ञान और ज्ञायक का तादात्म्य संबंध है; एकइन्द्रिय में अर्थात् वर्तमान वर्तती पर्याय कि जो चैतन्य अनुविधायी परिणाम है उस अनादि-अनंत उपयोग में ज्ञायक जानने में आ रहा है।

ज्ञान की पर्याय में स्वपर प्रकाशक शक्ति प्रगट है। ज्ञप्ति अर्थात् क्रिया। वर्तमान वर्तते ज्ञान में - क्षयोपशम में - जानने की व्यक्ति में ज्ञायक भी प्रतिभासित होता है और देहादि भी प्रतिभासते हैं। दोनों प्रतिभासित होते हैं ऐसी एक समय की पर्याय में स्वच्छता है। दोनों के प्रतिभास हैं। परंतु देहादि और रागादि के प्रतिभास को उपयोगात्मक करके उसमें "मैं" पने की बुद्धि करता है। तथा जो देहादि, रागादि का प्रतिभास होने पर भी उन्हें उपयोगात्मक ना करके; अरे! मुझे तो "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा वह माने तो अनुभव हो। जब कोई आत्मा इस प्रकार से इन्द्रियज्ञान का व्यापार बंद करेगा तब... जिस ज्ञान में ज्ञायक जानने में आ रहा है वह उसे प्रत्यक्ष अनुभव में आयेगा। सरल में सरल यह उपाय है।

यह १७, १८ गाथा में कहा है। फिर ज्ञानी भेद से ऐसा भी कहते हैं कि: तुझे यह (पर) जानने में नहीं आता, अपितु तेरी ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। पर जानने में आता है तब आत्मा जानने में आता है - ऐसा कहें तो वह समझ नहीं पाता।

३०

"जाननहार जानने में आता है" उसे ही जानना वही स्वभाव है; जिसमें अनुभव हो वही उसका स्वभाव हो ना?

३१

केवल "जाननहार ही जानने में आता है" क्योंकि ज्ञान जाननहार का है; पर का नहीं है एवं स्वपर का भी नहीं है।

३२

करनापना छोड़कर "जाननहार जानने में आता है" ऐसा प्रयोग कर तो अनुभव हो जायेगा।

३३

एक अन्तर्मुहूर्त प्रेक्टिस तो कर कि "जाननहार जानने में आता है" उसके फल

में तुझे आनन्द आयेगा। आत्मा को जानने से अनुभव होगा। संसार का अन्त आयेगा। ज्यादा से ज्यादा पंद्रह भव में मोक्ष होगा।

३४

ज्ञान से जाननहार तादात्मय होने से; "जाननहार ही जानने में आ रहा है", इसलिए ज्ञान में ज्ञायक का ही अनुभव होता है।

३५

"जाननहार जानने में आता है" यह बात सच्ची लगे बिना भूत, वर्तमान, भविष्य में अनुभव नहीं हो सकता।

३६

आत्मा को जानने के लिए "जाननहार जानने में आता है" ऐसा क्षयोपशम खिलना चाहिए।

३७

"जाननहार ही जानने में आता है", और जाननहार को ही जानता हूँ, यह सम्यक् एकान्त है क्योंकि ऐसा लेने से दृष्टि प्रगट होती है।

३८

"जाननहार जानने में आता है", ऐसे अभिप्राय में अतीन्द्रियज्ञान का जन्म होता है।

३९

सबसे पहले उसे जीव का स्वरूप ख्याल में लेना चाहिए। वह यदि ख्याल में न आए तो "जाननहार जानने में आता है" उसमें उपयोग कहाँ से लगे? जाननहार है, उसका स्वरूप क्या है और क्या नहीं है? वह ख्याल में आए बिना मात्र जाननहार, जाननहार करे तो कुछ नहीं मिलता।

४०

"जाननहार ही जानने में आ रहा है" और "जाननहार को ही जानता हूँ", ऐसे उत्कृष्ट भाव में सहज अनुभव होता है।

४१

जाननहार को जानूँगा ! आत्मा को जानूँगा ! जानूँगा !! तो कभी भी जानने में नहीं आयेगा। "जाननहार अभी जानने में आ रहा है" तो जानने में आ जायेगा।

४२

फूल ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे सूंघ! आत्मा अपने को जानना छोड़कर सुगंध-दुर्गंध को जानने नहीं जाता। फिर भी मूर्ख प्राणी "मुझे जाननहार जानने में आता है" ऐसा

स्वीकार ना करके, मुझे सुगंध-दुर्गंध जानने में आती है ऐसा जानकर स्वभाव से भ्रष्ट हो जाते हैं।

४३

अरे! तुझे "जाननहार जानने में आ रहा है"। तेरी देर से ही देर है। स्वरूप स्पष्ट बाहर आ गया है।

४४

जो ज्ञान ज्ञायक को जाने; जो ज्ञान जाननहार को जाने सो ज्ञान। अब पर को जाने ऐसे ज्ञान से देखने में आए तो ज्ञायक दिखाई नहीं देता। परिणाम को जाने ऐसे ज्ञान द्वारा भी आत्मा जानने में नहीं आता। अरे! मैं राग को जानता हूँ ऐसे अज्ञान द्वारा भी आत्मा जानने में नहीं आता। मुझे देह जानने में आता है ऐसे ज्ञान द्वारा भी आत्मा जानने में नहीं आता।

भगवान की प्रतिमा मुझे ज्ञात होती है - ऐसे ज्ञान के द्वारा भी जाननहार जानने में नहीं आता। साक्षात् तीर्थंकर भगवान को जाननेवाला ज्ञान अर्थात् अज्ञान उसके द्वारा भी आत्मा जानने में नहीं आता। भगवान ने नवतत्त्व कहे हैं, उन नव तत्त्वों को जाननेवाला ज्ञान अर्थात् कि अज्ञान उसके द्वारा भी आत्मा जानने में नहीं आता।

जिज्ञासा: आत्मा किस नय से जानने में आता है?

समाधान: शुद्ध निश्चयनय से। जो ज्ञान आत्मा के सन्मुख होता है, "मैं जाननहार हूँ और केवल जाननहार ही जानने में आता है" ऐसा ज्ञान आत्मा के सन्मुख होता है उसमें केवल आत्मा ही **ज्ञेय** होता है अर्थात् जानने में आता है।

जानने में आता है अर्थात् कि जानने में आ रहा है वह जानने में आता है उस ज्ञान को परमात्मा शुद्धनय कहते हैं। ऐसे ज्ञान के द्वारा आत्मा जानने में आता है।

४५

"जाननहारा जानने में आता है" उसका नाम ⟶ मोक्ष।

पर जानने में आता है उसका नाम ⟶ संसार।

४६

ध्यान देने लायक बात यह एक ही है, कि "निरन्तर जाननहार जानने में आ रहा है।"

४७

जाननहार जानने में आ रहा है इसीलिए तो जाननहार जानने में आता है। (एक सामान्य दूसरा विशेष)।

४८

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है", परन्तु जाननहार का स्वरूप क्या है?

समाधान: "जाननहार जानने में आता है" ऐसा भाव आता है, फिर भी... जाननहार क्यों जानने में नहीं आता? सर्वप्रथम तो उसको जीवतत्त्व सम्बन्धी भूल है, जैसा जीव का स्वरूप है ऐसा लक्ष में नहीं लिया। उसे चारों तरफ से द्रव्य का निश्चय शोधना पड़ेगा और अभी तो पर जानने में नहीं आता-ऐसा निषेध भी नहीं आता। मान लो कि पर जानने में नहीं आता ऐसा निषेध भी आ जाये तो भी "जाननहार जानने में आता है" ऐसा अंतरंग से नहीं आता।

४९

यह **"जाननहार जानने में आ रहा है वह मैं हूँ"।** जानता है वह "मैं" नहीं हूँ।

५०

जिज्ञासा : आत्मा पर को नहीं जानता और "जाननहार जानने में आता है" तो मेरा प्रश्न है कि इन रूपी पदार्थ को कौन जानता है?

समाधान : रूपी पदार्थों को इन्द्रियज्ञान जानता है, अरूपी पदार्थों को मन जानता है; तेरा आत्मा उसे नहीं जानता। आत्मा तो आत्मा को जानता है। अज्ञानी को भी ऐसा फंक्शन (function) चालू है। स्वीकार करे तो अनुभव हो।

५१

निषेध करे, भेदज्ञान करे कि : मैं पर को जानता ही नहीं; "जाननहार जानने में आता है" तो अवश्य अनुभूति होती है। यह अनुभव की प्रक्रिया की बात है।

५२

"जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। वास्तव में पर जानने में नहीं आता-उसमें प्रतिभास रह गया और प्रतिभास का लक्ष छूट गया और स्व का लक्ष हो गया।

५३

निक्षेप ज्ञात नहीं होते अर्थात् परज्ञेय ज्ञात नहीं होते। "जाननहार ही जानने में आता है"। निक्षेप को जानना बंद हो गया और स्वज्ञेय ज्ञात हुआ। किन्हीं आचार्य ने निक्षेप के लिए परज्ञेय शब्द का प्रयोग किया है। नाम, स्थापना, भाव उसमें परज्ञेय की प्रधानता है। जब परज्ञेय को जानना बंद होता है तब निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है वह कुछ पता नहीं चलता। अकेले स्वप्रकाशक में ही अनुभव होता है।

५४

"जाननहार जानने में आता है; वही मैं हूँ" ऐसा करके अंदर में उतर जाता है।

५५

"जाननहार जानने में आता है" वह तो वास्तव में "जाननहार ही है"।

५६

इस बात के पीछे पड़ जाने जैसा है कि: "जाननहार जानने में आता है" और वास्तव में पर जानने में नहीं आता।

५७

आत्मा वास्तव में पर को जानता ही नहीं और जाननहार को ही जानता है - यह बात यदि अंदर से अंकुरित हो जाए और अंतर से शल्य निकल जाए-छूट जाए तो आत्मा का अनुभव हो जाए। 'मैं पर को नहीं जानता' इतने में तो "जाननहार जानने में आ जाता है"।

जिज्ञासा : बस इतने में जाननहार जानने में आ जाता है?

समाधान : हाँ। पर को जानता हूँ यह शल्य गया न? तो इन्द्रियज्ञान रुक गया, और जाननहार जानने में आ जाता है। आत्मा के अनुभव के सिवाय कोई धार्मिक क्रिया नहीं है।

५८

"मैं जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसे विचार में भी मुक्ति का अनुभव होता है।

५९

शास्त्र लिख रहे हैं, कलम चल रही है, तब "जाननहार जानने में आ रहा है" उपादान जानने में आ रहा है। निमित्त झलकता है किन्तु जानने में नहीं आता। क्योंकि हमारा लक्ष निमित्त के ऊपर नहीं है।

६०

पूजा में बैठे-बैठे मुझे तो "जाननहार ही जानने में आ रहा है" इसप्रकार परोक्ष में आया और भेद छूटने पर वहाँ बैठे-बैठे ही प्रत्यक्ष होता है। पूजा में बैठे-बैठे भव का अंत कर डाला।

६१

"जाननहार जानने में आ रहा है" यह बात ऐसी है कि मुर्दा जीवित हो जाए। सर्वज्ञ भगवान कहते हैं, समयसार कहता है, तू 'हाँ' कर ना? तुझे उसमें लाभ ही लाभ है।

६२

"जाननहार जानने में आता है" उस समय जाने हुए का श्रद्धान होता है और मग्नता भी होती है।

६३

एक जाननहार को पकड़ ले कि "मैं जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं हूँ", किसका करनेवाला नहीं? उसमें विभाग नहीं है। मिथ्यात्व का करनेवाला नहीं और वीतरागभाव का भी करनेवाला नहीं। "होने योग्य होता है"- उसमें जाननहार की प्रसिद्धि है, करनेवाले की नहीं।

६४

अस्ति-नास्ति अनेकांत "जाननहार जानने में आता है" और वास्तव में पर जानने में नहीं आता।

६५

इतना इतना तुझे कहते हैं कि "जाननहार जानने में आता है", तुझे पर जानने में नहीं आता और पर का जाननेवाला (कौन है वह) तुझे बताया। जैसे पर का कर्ता बताया तो शल्य निकल गया; वैसे ही पर का ज्ञाता-जाननेवाला इन्द्रियज्ञान है; अब तो ज्ञाता का शल्य निकाल !

६६

जाननहार को जाने बिना परिणाम को जानने जाएगा तो पर्याय में अहंबुद्धि होगी। जिसे जानता है उसका श्रद्धान होता है। इसलिए आत्मा को जानते-जानते पर्याय को जाने तो अहंबुद्धि नहीं होती।

६७

जिज्ञासा : जैन का स्वरूप क्या?

समाधान : जाननहार को ही जानता है, पर जानने में नहीं आता यह जैन का स्वरूप है।

६८

जितनी मेहनत करनी हो उतनी इसमें कर कि मुझे "जाननहार जानने में आता है; वास्तव में पर जानने में नहीं आता"।

६९

आज मान, कल मान, चाहे अनंतकाल बाद मान ! परंतु मानना तो यह ही पड़ेगा कि: "जाननहार जानने में आता है; वास्तव में पर जानने में नहीं आता"।

७०

भले ही तू मना कर कि मुझे जाननहार जानने में नहीं आता, फिर भी प्रभु! तेरी पर्याय में तू अभी जानने में आ रहा है, हों !!!

७१

"जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" ऐसे भाव से ज्ञानी हो गए, ज्ञानी हो रहे हैं और ज्ञानी होंगे।

७२

संतों की वाणी कान में पड़नी मुश्किल है और उसका गहराई से अध्ययन भाग्यशाली कर सकता है। अब यदि अज्ञान में भी स्वपर का प्रतिभास ना हो रहा होता, और अकेले पर का ही प्रतिभास होता तो उसे जाननहार जानने में ही न आता। तो फिर बाल-गोपाल सभी को सदाकाल अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आता है- यह सूत्र झूठा पड़ जाता। अभवी हो या भवी हो दोनों को उनके ज्ञान में स्व-पर का प्रतिभास होता है। इसलिए भेदज्ञान का अवसर बच गया है। ओहो ! मेरे ज्ञान में मेरा ज्ञायक ही जानने में आता है, ऐसा प्रभु फरमाते हैं। ऐसा मेरे श्रीगुरु फरमाते हैं। मेरा परमात्मा मुझे जानने में आता है? आहा..!! यह क्या? ऐसा जरा विचार करके यदि पर का लक्ष छोड़े तो स्व का लक्ष हो जाता है।

७३

अपनी योग्यता और गुरुगम से ज्ञात हुआ कि: तुझे "जाननहार जानने में आता है" तुझे तेरा परमात्मा जानने में आता है ऐसा ज्ञान समय-समय प्रगट होता है। भगवान ने देखा कि उपयोग में उपयोग है। उपयोग में परज्ञेय नहीं है। इसलिए परज्ञेय को ज्ञान जानता भी नहीं है। जो अभेद है उसे ही ज्ञान जाना करता है।

७४

पहले पर जानने में नहीं आता और "जाननहार जानने में आता है"। पश्चात साधक हुआ तो पर जानने में आता है वह उसे व्यवहार है, परंतु (अनुभव से) पहले (पर का जानना) व्यवहार नहीं है अज्ञान है।

७५

विधि-निषेध का विकल्प छूटने के लिए आता है। पहले द्वेष का विकल्प 'पर जानने में नहीं आता' वह छूट जाता है। फिर "जाननहार ही जानने में आता है" वह विधिरूप विकल्प छूटकर "जाननहार जानने में आ जाता है"।

७६

जब शरीर को जानने में से निकालोगे तब "जाननहार जानने में आएगा"।

७७

किस प्रकार से बेलें लिपटती हैं? "मैं जाननहार हूँ, मुझे जाननहार ही जानने में आता है"।

७८

१- ध्येयरूप स्वप्रकाशक ⟶ जाननहार (ज्ञायक) जानने में आता है।
२- ज्ञेयरूप स्वप्रकाशक ⟶ परिणामी ज्ञायक जानने में आता है।
३- भेदरूप स्वपरप्रकाशक ⟶ ज्ञान की पर्याय जानने में आती है।

७९

जानने में आती है वह चीज जानने में नहीं आती, परंतु "जाननहार जानने में आता है"। यह मंत्र याद रखना। इसमें सम्यग्ज्ञान प्रगट होने की विधि भरी हुई है।

८०

इसकी धुन लगनी चाहिए कि : "मैं जाननहार हूँ और मुझे जाननहार जानने में आता है"।

८१

धर्मी के अंतर की खुमारी तो देखो !! जगत में मैं एक ही हूँ मुझे जाननहार ही जानने में आता है अन्य के साथ मेरा जानने का भी संबंध नहीं है।

८२

मुझे इतना पता है कि : मैं जाननहार हूँ और "जाननहार ही जानने में आता है" और मैं जाननहार को ही जानता हूँ। इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है। मुझे और कुछ पता नहीं है। इतनी जानकारी है इसलिए मैं ज्ञाता हूँ।

८३

पर को जाननेवाला तुझे अलग बताया, अब "जाननहार जानने में आता है" उसमें आ न? कौन जानता है शब्द को? यह कर्णइन्द्रिय। अर्थात् कान का उघाड़ अलग और ज्ञान का उघाड़ अलग। कान का उघाड़ पर की प्रसिद्धि करता है। ज्ञान का उघाड़ स्व की प्रसिद्धि करता है।

८४

"पर जानने में नहीं आता, जाननहार जानने में आता है" उसमें तो अनंत पुरुषार्थ है। उसमें विधि-निषेध है। पहले निषेध का विकल्प होता है, फिर निषेध का विकल्प जाता है, और फिर विधि का विकल्प भी जाता है।

प्रथम पक्ष में तो आ कि: "जाननहार जानने में आता है पर जानने में नहीं आता"। पक्षातिक्रांत तो बाद में। पक्ष में आये तो भी बहुत है। निर्णय तो कर। बाल-गोपाल सभी को जानने में आता है - ऐसा पाठ है उसे कबूल कर। १७, १८ गाथा सच्ची है ऐसा तो कह। उसमें "पर जानने में आता है" ऐसा लिखा है? बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा ही जानने में आता है। अकेला स्वप्रकाशक लिया है। नकार करता है कि

मुझे "जाननहार जानने में नहीं आता" - यह अज्ञान पोषक बात है।

८५

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा जो जानता है वह जैन है।

पहले ध्येय पलटता है, फिर ज्ञेय पलटता है। ध्येय पर्याय से सहित माना है, लेकिन पर्याय से रहित ही होता है। प्रथम नंबर ध्येय का है। तीनों काल ध्येय बंध-मोक्ष से रहित ही है। पर्याय से सहित मानता है वह उसकी कर्ताबुद्धि है। और पर्याय से रहित में आया वह अकर्ता में ही आ गया। और मैं पर को नहीं जानता, "जाननहार ही जानने में आता है" तो ज्ञेय पलटता है। सविकल्पदशा में ज्ञेय पलटता है। फिर निर्विकल्पध्यान में आत्मा ज्ञेय बन जाता है। ऐसी वस्तुस्थिति है।

८६

जिसे सम्यग्ज्ञान होने का काल पकता है उसे यह बात आती है कि: "जाननहार जानने में आता है"।

८७

"जाननहार जानने में आता है" ऐसे जाननहार का जानकार होने से ज्ञाता है।

८८

"जाननहार हूँ और वही जानने में आता है", इतना जानो। उसमें होने योग्य हो जाएगा और जानने में आने योग्य जानने में आ जाएगा।

८९

"भिन्ना भावा नो द्रष्टा" यह नक्की करनेवाला कौन है? अंतर्मुख हुआ ज्ञान "जाननहार जानने में आता है" ऐसा कहता है। राग मेरे में नहीं है ऐसा मैं जानता हूँ। अनादि से वास्तव में तो राग ही उसका ध्येय बन गया है। उसे सम्यग्दर्शन होगा कैसे? वह तो केवली जाने? हमारी जीभ तो उठती नहीं है।

९०

यदि सजग हो तो, मन का विषय (छः द्रव्य) तिरोभूत हो जाता है और जाननहार जानने में आ जाता है। और यदि सजग ना हो तो जाननहार तिरोभूत हो जाता है।

९१

धर्म तो सहज होता है। सहज है, सुगम है, परम सत्य है। बहुत लंबा करो तो फिसल जाते हैं और सीमित करो तो टिक जाते हैं। "जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है" इसप्रकार संक्षिप्त करो ना ?!

९२

१७, १८ गाथा में यह जाननहार अनुभव में आता है अर्थात् कि "जाननहार जानने

में आता है।" कितना स्पष्ट है।

९३

जाननहार जाननहार को नहीं जानता उसमें जाननहार जानने में आ जाता है। "नहीं" शब्द लगाया तो भेद का लक्ष छूट गया।

"जाननहार जानने में आता है" जो यह शब्द है, वह अनादि-अनंत का शब्द है। यह सूत्र नया नहीं है। क्योंकि "जाननहार जानने में आता है" वह सभी जीवों को जानने में आ रहा है। सभी जीवों को जाननहार जानने में आता है। शरीर-कुटुंब-कबीला जानने में नहीं आता, पर जानने में नहीं आता "जाननहार जानने में आता है" ऐसा मंत्र है।

९४

जिज्ञासा : आत्मा पर को क्यों नहीं जानता?

समाधान : उसका पर को जानने का स्वभाव नहीं है इसलिए नहीं जानता। जाननहार को ही जानता है। यह... आत्मा का ज्ञान जाननहार को जानना छोड़कर रागादि देहादि को जानने जाता ही नहीं। जब ऐसा भेदज्ञान का प्रकार भजता है कि "जाननहार जानने में आता है, और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" तब उसे आत्मदर्शन होता है। सम्यग्दर्शन हो जाता है। और साधना करके वह अल्पकाल में परमात्मा होता है।

९५

"जाननहार जानने में आता है" उसका नाम सम्यग्ज्ञान। क्योंकि जैसा था वैसा (यथार्थ) जाना इसलिए।

९६

परज्ञेयों से विमुख होता हुआ ज्ञान "जाननहार जानने में आता है" ऐसा लेने पर, परज्ञेयों से विमुख होकर स्वज्ञेय में आ जाता है। "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता" यह ज्ञेयों से विमुख हुआ ज्ञान है।

९७

"जाननहार जानने में आता है" उसमें ही जानने में आ जाएगा। गारंटी है। सर्वज्ञ भगवान की गारंटी है। आबाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आ ही रहा है। "जाननहार जानने में आ रहा है" उसके दर्शन कर तो जानने में आ जाएगा।

९८

ध्येय का स्वरूप क्या? ज्ञेय का स्वरूप क्या? ध्यान का विषय क्या? ध्यान किसका करना? ध्येय का ध्यान कैसे हो? तो कहते हैं- पर को जानना बंद कर ! "जाननहार जानने में आता है" वह ज्ञेय होता है तो अनुभव होता है।

९९

उपयोग में राग नहीं आया। उपयोग में तो स्वच्छता है। राग जानने में भी नहीं आता। "जाननहार जानने में आता है" यह ही भ्रान्ति टालने का उपाय है।

१००

ये पुत्र भिन्न हैं ऐसा जानता हूँ। परंतु जानते हो किसे? कौनसा ज्ञेय बना तुम्हारे वर्तमान ज्ञान में? हाय! हाय! जानने में से निकाल दोगे पुत्र को? जानने में से निकाल दोगे तब "जाननहार जानने में आ जाएगा"। कठिन बात है थोड़ी।

१०१

जानने में जानना (भेद) उसे नहीं जानता। किन्तु "मैं तो जाननहार हूँ" ऐसा जानता है। ध्यान को करता तो नहीं, परंतु ध्यान को जानता भी नहीं। जाननहार को ही जानता है।

१०२

इस... ज्ञान में अकेला स्व "जाननहार ही जानने में आता है", पर जानने में नहीं आता। इसलिए हम इसे शुद्ध कहते हैं।

१०३

पर के साथ ज्ञेय ज्ञायक का व्यवहार भी नहीं है। "जाननहार ही जानने में आता है" यह व्यवहार है। अभेदरूप से जाननहार जानने में आता है यह निश्चय है।

१०४

जिज्ञासा : ज्ञान में यह तो स्वीकार आता है कि "जाननहार जानने में आता है"। लेकिन श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शन क्यों प्रगट नहीं होता? जबकि समयसार १७, १८ गाथा में तो ऐसा लिखा है कि जाने हुए का श्रद्धान होता है।

समाधान : १७, १८ गाथा में जाने हुए का श्रद्धान होता है ऐसा लिखा है। उसका अर्थ ऐसा है कि.. जानने में आया उसका (नाम) अनुभव होता है, ऐसा लिखा है। वहाँ ऐसा है कि बाल-गोपाल सभी को अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा जानने में आता है। वह प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु परोक्षरूप से जानने में आता है। इतनी बात सच्ची है। श्रद्धा के विषय की उसमें बात नहीं है। परंतु "जाननहार जानने में आता है" उसका स्वीकार करे... तो अनुभवपूर्वक श्रद्धा प्रगट होती है।

१०५

जिज्ञासा : जब उपयोग सूक्ष्म होता है, तब क्या होता है?

समाधान : अकेला आत्मा "जाननहार ही जानने में आता है" वास्तव में दूसरा कुछ जानने में नहीं आता।

१०६

"जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है" लो ! इसमें १२ अंग पढ़ लिए।

१०७

"जाननहार जानने में आता है" उसे जानना और बार-बार जानते ही रहना और पर को न जानना वह ज्ञान का स्वभाव है। पर को लक्ष करके जानना ऐसा ज्ञान का स्वभाव है ही नहीं।

१०८

सर्वस्व त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप हूँ इसप्रकार ज्ञायक को ज्ञेय बनाते ही उपयोग ज्ञायक में घुस जाता है। द्रव्य गुण पर्याय से अभेद एकाकार उसका नाम भी ज्ञायक, और ध्येय का नाम भी ज्ञायक, और (स्व)ज्ञेय होता है उसका नाम भी ज्ञायक। ध्येय का ध्यान करे तो भी ज्ञायक, और (निर्मल) पर्याय से सहित अनुभव करे तो भी ज्ञायक। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। जो ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञात हुआ वही स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में है; परंतु अन्य कोई नहीं आता।

जो जानने में आया वह ज्ञात होता है। ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेय ज्ञात नहीं होता, ज्ञेयाकार अवस्था का भेद ज्ञात नहीं होता, उस समय ज्ञायक ज्ञात होता है। जो ज्ञायक जानने में आता है, "जाननहार जानने में आता है" उसमें उपयोग लगा तहाँ तो अनुभव हो गया।

१०९

सविकल्पदशा में क्रोध जानने में नहीं आता "जाननहार जानने में आता है" तहाँ तो निर्विकल्प हो गया।

११०

"जाननहार हूँ" तो दृष्टि का विषय दृष्टि में आ गया। और "जाननहार ही जानने में आता है" तो अनुभव होता है। रहित की श्रद्धा होती है तो (अनुभव होता है)। रहित के श्रद्धान बिना ध्यान करे तो अनुभव नहीं होता।

१११

"जाननहार जानने में आता है" तो अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है। उसमें उपचार से आत्मा आत्मज्ञान का कर्ता है ऐसा जानने में आता है। कर्ताबुद्धि नहीं है।

११२

(१) अनादि का प्रवाह है ---> "जाननहार जानने में आता है"।

(२) अनादि का महामंत्र है ---> "जाननहार जानने में आता है"।

(३) अनादि का मूल मंत्र है ---> "जाननहार जानने में आता है"।

जैसे णमोकार मंत्र मूल मंत्र है, ऐसे ही "जाननहार जानने में आता है" वह मूल मंत्र है। यह ऋषभदेव भगवान से लेकर महावीर भगवान पर्यन्त सभी का मंत्र है। यह अनादि-अनंत बात है नई बात नहीं है।

११३

"जाननहार जानने में आता है"... "जाननहार जानने में आता है"..., "जाननहार जानने में आता है"...., "जाननहार जानने में आता है"... तो जानने में आ जाएगा। है.. है.. करे तो अवकाश है। नहीं जानने में आता... नहीं जानने में आता... नहीं जानने में आता... नहीं जानने में आता... तो फिर कब जानने में आएगा?

११४

"जाननहार जानने में आता है" उसमें ध्येय और ज्ञेय के भेद समा जाते हैं।

११५

पर को जानता है इसलिए तू जाननहार है? या "जाननहार जानने में आता है" इसलिए तू जाननहार है? ऐसी बात अनंतकाल से सुनी नहीं है। और सुनने के लिए मिली तो विचार नहीं किया।

११६

होने योग्य हुआ करता है; "जाननहार जानने में आया करता है", देखो, यह अनुभव की दशा।

११७

ज्ञान ! ज्ञान तो स्वच्छ है; परंतु परलक्षवाली पर्याय पर को ज्ञेय बनाती हुई पर में अहं करती है, वह अज्ञानभाव है। ज्ञान में - ज्ञेयाकार अवस्था में मुझे तो "जाननहार जानने में आता है।" मुझे तो "जाननहार जानने में आता है, मुझे दूसरा कुछ जानने में नहीं आता", तब वह उपयोग अतीन्द्रियज्ञान में कन्वर्ट हो जाता है। सामान्य ज्ञान वह अतीन्द्रियज्ञान नहीं था, किन्तु जब विशेष अंतर्मुखी ज्ञान होता है तब उसे अतीन्द्रियज्ञान कहने में आता है। उसमें अतीन्द्रियज्ञानमयी परमात्मा जानने में आता है। कोई जीव ऐसा माने कि मुझे पर जानने में आता है तो उसका ज्ञान अज्ञान में कन्वर्ट हो जाता है। और उसका नाम अशुद्धोपयोग है और उसकी प्रवृत्ति से पूरा संसार खड़ा होता है।

११८

सैंकड़ों भव धारण करके, सैंकड़ों शास्त्र पढ़कर भी यह बात ना मिलती ऐसी दुर्लभ बात है--> "जाननहार जानने में आता है"।

११९

स्वीकार कर कि : "जाननहार जानने में आता है"। बाल-गोपाल में मैं आ गया

या फिर कोई निषिद्धता होगी? बाल-गोपाल सभी को आत्मा जानने में आता है या नहीं? इसमें सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा नहीं है। वह तो स्वभाव से ही जानने में आया करता है। ऐसा ज्ञान प्रगट होता है जिसमें आत्मा जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता। यह तो गुण और गुणी के अभेद होने की प्रक्रिया चलती है। गुण अर्थात् ज्ञान की पर्याय, गुणी अर्थात् द्रव्य। (ज्ञानपर्याय) भेद दिखता है तो पर जानने में आता है। यहाँ आत्मा में अभेद हो तो पर जानने में नहीं आता।

पाँच व्यक्ति पूछने आयें, समुद्र टटोला (शास्त्रों का गहराई से अभ्यास किया) मगर जाननहार को जाना नहीं। आगम से अनंतबार जाना किन्तु अनुभव से जाना नहीं। अनुभव से जाना तो ही जाना है।

१२०

जिज्ञासा : राग को जानने के काल में?

समाधान : 'ना'। राग को जानने का काल ही कहाँ है? राग झलकता है परंतु जानने में नहीं आता। तब "जाननहार जानने में आता है"। जानने में आ रहा है वह (अनुभव में) जानने में आ जाता है।

१२१

ज्ञान जानने में आता है। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा विकल्प आएगा लेकिन वह विकल्प लंबा नहीं चलेगा।

१२२

व्यवहार का निषेध करे तो स्वभाव का पक्ष अव्यक्तरूप से आ गया। "जाननहार जानने में आता है" यह विकल्प है या निर्विकल्प? श्रद्धा में तो निषेध है कि पर को नहीं जानता तो वह विकल्प लंबा नहीं होता। विकल्प होते हुए भी जाति अलग है।

१२३

"जाननहार जानने में आता है" वह विकल्प रहता है। है विकल्प परंतु "जाननहार जानने में आता है" ऐसा घूंटे तो विकल्प टूट जाता है। पर जानने में नहीं आता उसमें विकल्प लंबा नहीं होता। विकल्प टूट जाता है। एक विधिरूप विकल्प और एक निषेधरूप विकल्प है।

१२४

"जाननहार जानने में आता है" इस भाव में मोक्ष जैसी सर्वोत्कृष्ट वस्तु मिलती है; तो पर जानने में आता है, उसके फल में निगोद जैसी निकृष्ट वस्तु ही मिले ना? उसे निगोद मिले तो भी कम है। उसे जड़ हो जाना चाहिए था। इतना बड़ा पाप है।

१२५

साधक को होने योग्य होता है ---> वह सम्यक् इन्द्रियज्ञान है।

"जाननहार जानने में आता है" ---> वह अतीन्द्रियज्ञान है।

१२६

"जाननहार जानने में आता है" पर नहीं, ऐसा करके भी ज्ञान आत्मसन्मुख हो जाता है।

१२७

"जाननहार जानने में आ रहा है", ऐसा जानने में आता है उसका नाम अनुभव है।

१२८

जिज्ञासा : कैसा जाननहार जानने में आता है?

समाधान : यह.... अकेली ज्ञान और आनंद की मूर्ति ही जानने में आती है।

१२९

दीपक के तीन धर्म ! प्रकाशक, प्रकाश और प्रकाश्य। ऐसे ही आत्मा ज्ञान है, ज्ञेय भी है और ज्ञाता भी है। आत्मा ज्ञाता और ये बाहर के पदार्थ मेरे ज्ञेय वह भ्रान्ति है। वह व्यवहार नहीं है। वह भ्रान्ति छोड़ दे अब। मैं उसे नहीं जानता। "जाननहार जानने में आता है" उसमें आजा अब। **६ महीने अधिक से अधिक अभ्यास करेगा तो तुझे अनुभव हो जाएगा।**

१३०

प्रत्येक बात में यह सूत्र लगाना कि : "होने योग्य होता है: जाननहार जानने में आता है।" तो निधि मिल जाती है।

१३१

जिसमें सभी कुछ जानने में आता है ऐसा एक जाननहार जानने में आता है।

१३२

मानो या ना मानो, लक्ष करो या ना करो, समझो ना समझो; तो भी जाननहार का जानने में आना अनिवार्य है। अर्थात् "जाननहार जानने में आता है" यह अनिवार्य है।

१३३

"जाननहार जानने में आता है" बाल-गोपाल सभी को (वह) लिखा या नहीं लिखा? नींद में भी सभी को जानने में आता है। एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी सभी को ऐसा ही एक ज्ञान प्रगट होता है कि : जाननहार ही जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता और जो पर को जाननेवाला जो

ज्ञान प्रगट होता है वह इन्द्रियज्ञान पर को जानकर उसमें ममता, राग-द्वेष करके दुःखी होता है।

अब "जाननहार जानने में आता है" इसप्रकार जैसे ही सिंह गर्जना हुई, वहाँ भावेन्द्रियाँ शिथिल होकर उनका व्यापार बंद होकर अनुभूति हो जाती है। फिर भले ही इन्द्रियज्ञान उत्पन्न हो लेकिन उसमें आत्मबुद्धि नहीं होती।

१३४

भगवान महावीर ने कहा, सीमंधर भगवान ने कहा, उनके संतों ने कहा और उनकी परंपरा में यह आया, और भविष्य में भी यही आनेवाला है कि "जाननहार जानने में आता है"।

१३५

"जाननहार जानने में आता है" उसमें राग घटता जाता है। "जाननहार जानने में आता है" उसमें विकल्प की स्थिति और अनुभाग दोनों घटते हैं। मैं पर को जानता हूँ उसमें स्थिति और अनुभाग दोनों बढ़ते हैं। पहले में कषाय गलती है क्योंकि स्वभाव का स्मरण है।

१३६

पर को जाने वह कर्म ---> कर्म चेतना (अज्ञान)।
जाननहार को जाने वह धर्म ---> ज्ञान चेतना।

१३७

यह तो विदेह क्षेत्र से सीमंधर भगवान की वाणी की बात आई है। "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"।

१३८

निश्चय में पर की अपेक्षा नहीं होती। निषेध कर कि पर जानने में नहीं आता और "जाननहार जानने में आता है"। तो अनुभव होगा, तो ज्ञान भी जानने में आयेगा और आनंद भी जानने में आयेगा। तो निश्चय से स्वपरप्रकाशक है। आनंद पर है तथापि निश्चय में प्रदेशभेद नहीं है। (स्वज्ञेय में) आत्मा और ज्ञान के प्रदेश एक हैं।

१३९

पूरे समुद्र को टटोलने के बाद आना तो यहाँ है, "जाननहार जानने में आ रहा है"। जानने में 'आएगा' -ऐसा नहीं।

१४०

"जाननहार जानने में आता है" उसकी छानबीन (कुतर्क) करने जाएगा न तो अनुभव नहीं होगा। "जाननहार वह तो मैं ही हूँ" तो फिर "जाननहार जानने में आता है"

उसमें पर के लक्ष का निषेध हो जाता है।

१४१

जो जाननहार जानने में आ रहा है उसे ही जानना है और वह जानने में आ जाता है और शुद्धोपयोग प्रगट हो जाता है।

१४२

पर को जानना मेरे स्वभाव में अशक्य है। जानता है और फिर मुड़ता है ऐसा नहीं है। पहले पर को जाने और फिर वापस मुड़े ऐसा नहीं है। इन्द्रियज्ञान पर को जानता है और जहाँ "जाननहार जानने में आता है" वहाँ तो इन्द्रियज्ञान वापस मुड़ जाता है। वहाँ तो आत्मा के दर्शन हो जाते हैं। धर्म आसान है। अधर्म तो आत्मा के ऊपर बलात्कार करे तब प्रगट होता है। शास्त्र में ऐसा आता है कि: आत्मा अपनी आत्मा पर बलात्कार करता है तब विकल्प की उत्पत्ति होती है। वरना जाननहार तो सहज जानने में आया ही करता है। ऐसी अपूर्व बात इस शास्त्र में है।

१४३

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा जानना भूलकर अथवा मुझे सभी कुछ जानने में आ रहा है ऐसा (सामर्थ्य) जानना भूलकर ज्ञान खंड-खंड होता है।

१४४

हे भव्य ! तुम्हें जाननहार जानने में आ रहा है; ऐसा सुनकर कोई अंतर्मुख ना होवे ऐसा होता ही नहीं।

१४५

जितने सिद्ध हुए हैं वे जाननहार को जानने पर हुए हैं और उन्होंने पर को जानना बंद किया है।

१४६

पर का जानना बंद हुआ तो ज्ञेयभाव पर जीत हो जाती है। और भावकभाव पर भी जीत हो जाती है। "जाननहार जानने में आता है" यह महामंत्र है। लायक जीव का काम हो जाए ऐसी बात है। शॉर्टकट है एकदम। शास्त्र पढ़ने की, संस्कृत सीखने की कुछ जरूरत नहीं है। इन्द्रियज्ञान को जीतने पर राग बिना जीते ही जीत लिया जाता है।

१४७

श्रद्धा का जोर आवे तो ज्ञान भी श्रद्धा के आधीन हो जाता है। श्रद्धा का जोर आवे तो वैक्यूम ब्रेक लगती है। वैक्यूम ब्रेक ---> "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता"।

१४८

पर को जानने का निषेध करे तो जाननहार जानने में आ जाता है। उसमें तेरा हित है भाई ! पश्चात पर को जाने तो व्यवहार है।

१४९

"जाननहार जानने में आता है" तो धर्म है। (पर)ज्ञेय जानने में आते हैं तो कर्म होता है। धर्मी के आश्रय से धर्म होता है; पर के आश्रय से कर्म होता है।

१५०

"जाननहार जानने में आता है" उसे हम एक हजार नेत्रों से निहारते हैं। अरे! "जाननहार जानने में आता है" उसे हम अनंत नेत्र से देखते हैं।

१५१

मैं पर को जानता ही नहीं, मुझे तो "जाननहार ही जानने में आता है", संतों का यह टंकोत्कीर्ण महामंत्र है। जाननहार जाननहार को जानता है। मना करे, नहीं जाने तो भी जानने में आता है। ऐसी ही कोई उसकी उदारता है। वह बाल-गोपाल सभी को जानने में आया ही करता है। लेकिन उसका स्वीकार न करने से मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान होता है। वह ज्ञान का दोष है, गुण नहीं है। जहाँ ज्ञान का दोष होता है वहाँ श्रद्धा का दोष अविनाभावरूप से होता ही है।

१५२

अत्र ! तत्र ! सर्वत्र ! "जाननहार ही जानने में आता है"।

१५३

"जाननहार जानने में आता है" यह अखंड मंत्र है। अखंड धुन है।

१५४

"जाननहार जानने में आता है" यह रक्षा मंत्र है।

१५५

"मैं पर को जानता हूँ" वह महापाप का पाप है। हिंसा, झूठ, चोरी, चारित्र का पाप क्षम्य है। **"मैं पर को जानता हूँ", यह जगत के जीवों को गुण लगता है। जहाँ स्व को भूलकर पर को जानता है वह एकत्वबुद्धिरूप से परिणम जाता है। इसलिए स्व को जानना महापुण्य नहीं परंतु महाधर्म है।** स्व का अनुभव करना-जाननहार को जानना उसमें भव का अंत आ जाता है। बस इतना ही करना है कि "मैं पर को जानता ही नहीं", ऐसा भाव जहाँ आया वहाँ स्व जानने में आ जाता है। इतनी ही देर में स्व जानने में आ जाता है। अधिक समय उसमें नहीं लगता।

१५६

पहला जाननहार और दूसरा जाननहार उन दो का विचार करे न तो ख्याल में आ जाए। जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं हूँ तो अकर्ता में आया ना? और अकारक-अवेदक वह दृष्टि का विषय है। **अब दूसरी लाइन में ऐसा कहा कि "जाननहार ही जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" तो स्वज्ञेय आया या नहीं?** जानने की बात आई या नहीं? जो ये दस गाथा (स.सार.३७३-३८२) चलती हैं उनमें यह सार है। **इस सूत्र में बारह अंग का सार है। वास्तव में लोकालोक का प्रतिभास होता है परंतु वह जानने में नहीं आता। तो क्या जानने में आता है? जाननहार जानने में आता है। ऐसा है उसमें।**

१५७

कदाचित् ऐसा भी लिया कि "जाननहारा जानने में आता है"। अभेद को लक्ष में लिया तो भी अनुभव नहीं होता। क्योंकि अभेद ज्ञेय ज्ञान में नहीं आता। अभेद हुआ उसमें पुरुषार्थ है।

१५८

"जाननहार जानने में आता है" यह ज्ञानी का लक्षण है, पहचान है। ज्ञानी के अलावा यह बात कोई करता ही नहीं। सर्व दशाओं में "जाननहार जानने में आता है।"

१५९

"जाननहार जानने में आता है" उसमें सावधान है इसलिए उसे नया बंध नहीं होता। ज्ञानी को राग बंध का हेतु नहीं होता अपितु निर्जरा का हेतु होता है।

१६०

अमृत जैसी बात- पर को जानता ही नहीं। जाननहार को ही ज्ञान जानता है तो निश्चय स्वपरप्रकाशक ज्ञान प्रगट होता है। **परंतु कब? प्रथम व्यवहार स्वपरप्रकाशक का निषेध करे तब।**

१६१

ट्रेन में से उतरकर सीधा कहा कि: पंकज ! "जाननहार जानने में आता है"। दूसरा कुछ जानने में नहीं आता। परम सत्य बात है, त्रिकाल अबाधित बात है, सम्यक् होवे उसकी बात है। निशंक हो...! निशंक हो।

१६२

मुझे जाननहार ही जानने में आता है, मैं पर को जानता ही नहीं। तब इन्द्रियज्ञान को खुराक मिलती थी वह बंद हो गई।

१६३

अमूल्य महामंत्र ---> "जाननहार जानने में आता है"।

१६४

१) "जाननहार जानने में आता है" ---> वह ही मंगल है।

२) "जाननहार जानने में आता है" ---> वह ही उत्तम है।

३) "जाननहार जानने में आता है" ---> वह ही शरण है।

तीन लोक में इससे सर्वोत्कृष्ट कुछ भी नहीं है।

१६५

"जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता" इस प्रैक्टिस से जाननहार साक्षात् हो जाता है।

१६६

"जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं"। जाननहार कहा है ना? - वह...ज्ञायकभाव है...और वह...निष्क्रिय है। वह किसी की क्रिया करे ऐसा नहीं है। "जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं" अर्थात् अकर्ता में आया या नहीं? कर्ताबुद्धि गई या नहीं? पर्याय से रहित आया या नहीं? पहला पर्याय से रहित ध्रुव आत्मा है। दूसरा पर्याय से सहित हुआ। अपने को जाननेरूप परिणमता है आत्मा। मात्र जाननहार है उसमें अनुभव नहीं होगा। "जाननहारा जानने में आता है" तब अनुभव होता है। (-अभेद ज्ञेय की अपेक्षा)

१६७

तीर्थंकर का पेट खोल दिया ---> "जाननहार जानने में आता है"।

१६८

जितना जानने में आता है उतना उपादेय नहीं है। लक्ष के बिना बहुत जानने में आता है। लक्षपूर्वक तो एक "जाननहार जानने में आता है"।

१६९

चिद्विवर्तन में "जाननहार जानने में आता है"। पर्याय का विचार आता है ना? तब मेरे ज्ञान में ज्ञायक ज्ञात होता है वह पर्याय का निश्चय। द्रव्य का निश्चय अकर्ता ज्ञायक हूँ। ऐसा बारंबार विचार करना।

१७०

"जाननहार जानने में आता है" वह परोक्ष जानने में आता है, वह प्रत्यक्ष कैसे हो वह लाइन है। वह प्रयत्न चलना चाहिए। यह मार्ग भेदज्ञान का है। उपयोग क्रियाकांड में जाता है उसे वापस मोड़ दे। राग को जानने का (भी) मार्ग नहीं है तो फिर करने का तो प्रश्न ही नहीं है।

१७१

मेरा पुत्र जानने में नहीं आता, परंतु ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है" ऐसा लेने पर अनुभव हो जाता है।

१७२

पंच परमेष्ठी अनादि से हैं उसी प्रकार यह मंत्र अनादि से है। "जाननहार जानने में आता है पर जानने में नहीं आता"। जैसे पंच परमेष्ठी में कोई फेरफार होनेवाला नहीं है, चौथाकाल, पंचमकाल, भूत, भविष्य, वर्तमान चाहे जो काल हो, वैसे ही "जाननहार जानने आता है" उसमें कोई फेरफार होनेवाला नहीं है। चाहे जो काल हो।

१७३

अनादि से ज्ञान में "जाननहार ही जानने में आ रहा है"। ज्ञान है तो ही ज्ञायक जानने में आ रहा है, और जाननहार जानने में आ रहा है तो ही ज्ञान लक्षण है।

१७४

अनादि से "जाननहार ही जानने में आ रहा है।" ज्ञान में ज्ञायक ही ज्ञात होता है। (कथंचित्) अभेद होने पर भी ऐसा भेद द्रव्य-पर्याय के बीच में दिखता है तो मिथ्यात्व होता है।

१७५

"मैं जाननहार हूँ" और "जाननहार जानने में आता है" ऐसा विचार व्यवहार है। "मैं जाननहार हूँ और मुझे जाननहार जानने में आता है" ऐसा अनुभव निश्चय है।

१७६

आहाहा ! पर को जानना अज्ञान है। छोड़ दे ना अब !! जाननहार एक ही ज्ञात होता है। एक को ही जानो यह महामंत्र है।

१७७

पर का कर्ता तो नहीं है परंतु पर जानने में भी नहीं आता; "जाननहार ही जानने में आता है"। ऐसा बारंबार विचारना वह व्यवहार पात्रता है।

१७८

जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं हूँ तो अकर्ता आया या नहीं? ध्रुव आया। कर्ताबुद्धि गई। कर्ताबुद्धि गई, पश्चात अनुभव कैसे होता है? "जाननहार जानने में आता है" "ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक जानने में आता है", तब अनुभव होता है। समझ में आया?

१७९

"जाननहार जानने में आता है" वह मंगल प्रतिष्ठा है।

१८०

जिज्ञासा : सूत्र में आता है कि "मैं जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं।" अर्थात् कि मैं पर्याय बिना का ध्रुव आत्मा हूँ। निर्णय हो गया कि "मैं ज्ञायकभाव हूँ"। फिर दूसरे सूत्र में आता है कि: "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" तो वह... "जाननहार" जो पहली लाइन में निश्चित किया वह ही जाननहार है?

समाधान : ना, वह दूसरा है।

जिज्ञासा : तो वह जाननहार कैसा है?

समाधान : वह पहली लाइनवाला जो "जाननहार जानने में आता है" वह तो ध्रुव जानने में आता है। पर्याय से रहित है। फिर दूसरी लाइन में "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" ऐसा आया ना? जाननहार स्वयं आत्मा अपरिणामी और दूसरा परिणामी 'जाननहार जानने में आता है' इसलिए कर्म। इसप्रकार छठवीं गाथा का पहला पैराग्राफ और छठवीं गाथा का दूसरा पैराग्राफ दोनों इसमें हैं।

"जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं", अकर्ता आया अर्थात् दृष्टि का विषय आया। तो कर्ताबुद्धि गई। दूसरी लाइन में "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" तो पर को जानने की बुद्धि गई, ज्ञाताबुद्धि गई। १२ अंग का सार है यह।

१८१

"जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर नहीं जानने में आता" उसका अर्थ स्वप्रकाशक हुआ।

१८२

"जाननहार जानने में आता है और पर नहीं जानने में आता" अर्थात् कि जिसका लक्ष है वह जानने में आता है। जिसका लक्ष नहीं है वह जानने में नहीं आता। यह महासिद्धांत है।

१८३

सर्व हालतों में "जाननहार जानने में आता है"। राग निमित्त है तब जाननहार जानने में आता है।

राग के सद्भाव में भी "जाननहार जानने में आता है" ---> सविकल्पता।

राग के असद्भाव में भी "जाननहार जानने में आता है" ---> निर्विकल्पता।

पाँच महाव्रत जानने में आते हों तब क्या जानने में आता है? "जाननहार जानने

में आता है"। एक समय भी कम नहीं होता ! अविछिन्न धारा से ज्ञात होता है।

१८४

"जाननहार जानने में आता है" उसके बीज बो दिए गये, अंकुर फूटा और उसीमें फल भी आया।

१८५

"पर जानने में नहीं आता जाननहार ही जानने में आता है" उसमें स्वाश्रित निश्चयनय प्रगट होता है तब यह स्वपरप्रकाशक व्यवहार लागू पड़ता है। व्यवहार से स्वपरप्रकाशक कहा हो तो व्यवहार का निषेध करना चाहिए ना?

१८६

जाननहार, जाननहार, जाननहार है। खारापन नमक को प्रसिद्ध करता है। खारापन नमक द्रव्य की पर्याय है, वह सब्जी को प्रसिद्ध नहीं करती। पर्याय अपने द्रव्य को ही प्रसिद्ध करती है। उसीप्रकार ज्ञान जाननहार को ही प्रसिद्ध करता है। स्वीकार करे तो ज्ञानी हो जाता है।

१८७

जाननहार है इसलिए करना अशक्य है। और पर को जानना भी अशक्य है। क्यों अशक्य है? कि: "जाननहार जानने में आता है" इसलिए।

१८८

इन्द्रियज्ञान को जीतने की कला ! मैं पर को जानता ही नहीं, क्योंकि "जाननहार जानने में आता है"। (पर को) जानता नहीं तो फिर कर्तापना तो जीत ही लिया ना?

१८९

अनंत केवलियों ने कहा है; उसकी संधि लंबी है। "जाननहार ही जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता।

१९०

"मात्र जानना" लक्षण लेना, उसमें मात्र "जाननहार ही जानने में आ रहा है"।

१९१

सभी पर्यायें योग्यतानुसार प्रगट होती हैं। अब जो पर्याय प्रगट होती है उस पर्याय का प्रतिभास उपयोग में आता है। अब उपयोग में ऐसा आवे कि: "जाननहार जानने में आता है" तो काम हो जाए; अब यदि पर्याय जानने में आवे तो पर्यायदृष्टि हो जाती है। वह भी तेरा ज्ञेय नहीं है। पर्याय से अभेद पूरा द्रव्य-गुण-पर्याय वह अभेद ज्ञेय है। अब जाना हुआ प्रयोजनवान उसमें क्या दोष लगता है? पर्याय को मेरी मानूँ तो दोष? 'हाँ', दोष लगता है। क्योंकि तूने उसे अपना ज्ञेय बनाया, तो ज्ञायक लक्ष में से छूट गया।

१९२

इन्द्रियज्ञान पर को जानता है: 'मैं' "जाननहार जानने में आता है" उसे जानता हूँ; इसप्रकार "जाननहार जानने में आता है" उसमें आजा ना?

१९३

निरंतर ज्ञान आत्मा को जानता है। उसे नय लागू नहीं पड़ते। एक द्रव्य स्वभाव और एक पर्याय स्वभाव। स्वभाव को लक्ष में ले तो अनुभव हो। "द्रव्य को द्रव्य के स्वभाव से देख"! और "पर्याय को पर्याय के स्वभाव से देख"! तो एक अनुभव हो। नयातीत होने की यह विधि अर्थात् प्रकार बताते हैं।

"जाननहार जानने में आता है" अब नयों के विकल्पों के कोलाहल बंद करो, यदि आनंद का स्वाद लेना हो तो ! "जाननहार जानने में आता है" अर्थात् जानने में आया ही करता है। ज्ञान किसी काल में जानना छोड़ता ही नहीं। तो फिर क्यों अनुभव नहीं होता? तुझे कहाँ यह विश्वास है कि "जाननहार जानने में आता है"? मैं तो इसे जानता हूँ! इसे (पर को) जानता हूँ! तेरी मति विपरीत है। निमित्ताधीन दृष्टि है। निमित्त के लक्ष से जाननहार जानने में नहीं आता। त्रिकाली उपादान के लक्ष से "जाननहार जानने में आता है, आता है और आता ही है।"

लक्ष पलट दे ना ! यह जानने में आता है; यह जानने में आता है; रहने दे ना! "जाननहार जानने में आता है" अर्थात् जानने में आया ही करता है। जानता है और जानने में आता है; जानता है और जानने में आता है; यह फंक्शन अनादि से चल रहा है। आबाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा जनाया ही करता है! बोलो! यह शास्त्र का आधार।

जानता है वह ज्ञानप्रधान कथन है और आत्मा जनाया ही करता है वह ज्ञेयप्रधान कथन है। जानता है वह ज्ञान और जानने में आता है वह ज्ञेय। जाने भी आत्मा को और जनाये भी आत्मा। जाने ज्ञान और जानने में आये दुकान ऐसा नहीं है।

ज्ञान भी स्वयं, ज्ञेय भी स्वयं, ज्ञाता भी स्वयं, ऐसे तीन भेद करो तो तीन भेद हैं। भेद ना करो तो अभेद वस्तु है। जानता है और जानने में आता है ऐसे स्वभाव का स्वीकार करना वह पुरुषार्थ है।

१९४

अज्ञान के ऊपर एटम बम फेंका---> "जाननहार ही जानने में आता है और पर को जानता ही नहीं"।

१९५

मेरे ज्ञान में "जाननहार ही जानने में आता है, दूसरा कुछ जानने में आता ही

नहीं", तब परोक्ष अनुभूति होती है।

१९६

मुनिराज ६ महीने में क्वचित ही बोलते हैं, जो अत्यंत दुर्लभ है। ऐसा वचन ---> "जाननहार जानने में आता है"।

१९७

जिज्ञासा : लक्षण और लक्ष्य के बीच में अतद्भाव कहा?

समाधान : अर्थात् कि: लक्षण वह लक्ष्य नहीं है, और लक्ष्य है वह लक्षण नहीं है। उसका नाम अतद्भाव, द्रव्य वह पर्याय नहीं है, पर्याय वह द्रव्य नहीं है उसका नाम अतद्भाव है।

जिज्ञासा : अर्थात् सर्वथा भिन्न अतद्भाव में लेना?

समाधान : यहाँ अतद्भाव की बात मत करो, किन्तु जो जीव है वह उपयोग नहीं है, क्योंकि उपयोग अनित्य है। अनित्य उपयोग वह नित्य जीव नहीं है। 'यह' है वह 'यह' नहीं है। बस इतना ही यहाँ अतद्भाव में लेना !! यह उपयोग है वह जीव नहीं है, और यह जीव उपयोग नहीं है। अभाव नहीं लेना। पृथकपना नहीं लेना। सर्वथा पृथक नहीं लेना। नहीं तो "जाननहार जानने में आता है" यह वाक्य झूठा पड़ जायेगा। अतद्भाव में ज्ञानगुण है वह चारित्रगुण नहीं है और ज्ञानगुण वह दर्शनगुण नहीं है; दर्शनगुण है वह सुखगुण नहीं है। अंदर में भिन्नता है। अतद्भाव है। लक्षणभेद से भेद है। 'यह' है वह 'यह' नहीं है।

ज्ञानगुण है वह सुखगुण कहाँ है? दर्शनगुण है वह ज्ञानगुण कहाँ है? अतद्भाव "यह वह नहीं है" अंदर में भिन्नता है।

१९८

उत्पाद ध्रुव को प्रसिद्ध करता है उसका निषेध करके अज्ञानी होता है। प्रतिसमय उपयोग ध्रुव को प्रसिद्ध करता है। "चेतना चेतन को प्रसिद्ध करती है"। व्यय है वह ध्रुव को प्रसिद्ध करता है। ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है"। उगते हुए सूर्य का प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध करता है। व्यय होता है तब भी सूर्य को प्रसिद्ध करता है।

१९९

जाननहार प्रतिसमय जानने में आता है, परंतु जानता नहीं है। ज्ञान में जानने में आता है, प्रतिभास होता है, फिर भी निषेध करता है अतः जानने में नहीं आता, हकार करे तो सम्यक्त्व हो जाए। विश्वास आना चाहिए। व्यवहार का निषेध करे तब निश्चय प्रगट होता है। निश्चय के पक्ष में आना चाहिए। अभिप्राय बदलना चाहिए।

२००

जिसे सामान्य अनुभव का स्वीकार आता है उसे विशेष में भी अनुभव हो जाता

है। सामान्य अनुभव क्या है? "जाननहार जानने में आता है" वह सामान्य अनुभव है।

२०१

घटिया बढ़िया क्या? बात ही इतनी है कि, "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता"।

२०२

जिसका उपयोग अंतर्मुख होने का समय आ जाता है; उसे कोई परपदार्थ ज्ञेय के रूप में भासित होता ही नहीं है, तब अकेला ज्ञायक ही ज्ञेयपने भासित होता है। अंदर से एक ही ज्ञेय है- ज्ञायक ही ज्ञेय है, इस प्रकार जिसे भासित होता है उसे पर में से ज्ञेयत्वबुद्धि निर्मूल हो जाती है। एक ज्ञायक ही ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित होता है। उसकी दुनिया बदल जाती है। उसका लोक बदल जाता है। एक "जाननहार ही जानने में आता है" यह भासित होता है। यह बात उसे परम सत्यार्थपने भासित होती है।

२०३

"जाननहार जानने में आता है" ---> समकित, अथवा सम्यक् सन्मुख ।
पर जानने में आता है ---> स्पष्ट मिथ्यादृष्टि।

२०४

चैतन्य में नित्य उपयुक्त शक्ति के कारण "जाननहार ही जानने में आता है" और "जाननहार को ही जानता हूँ"।

२०५

जो ज्ञान आत्मा को जानता है वह ज्ञान ही ज्ञान है। वह ज्ञान परज्ञेयों से अत्यंत विमुख और स्वभाव के सन्मुख है। उसमें मात्र "जाननहार ही जानने में आता है"।

२०६

उपदेश तो बहुत लोग देते हैं लेकिन उपाय बताना मुश्किल है। भाव निक्षेप से जो तीर्थंकर हैं उन्हें वह नहीं जानता। साक्षात् तीर्थंकर तुम्हारे ज्ञान का ज्ञेय नहीं हैं। निक्षेप बाहर में घटाता है। यहाँ क्यों नहीं घटाता? **स्थापना निक्षेप से तीर्थंकर भगवान विराजमान हैं; उन्हें हम नहीं जानते। क्योंकि निक्षेपों का समूह कहाँ जाता रहा, वह जानने में नहीं आता। भाव निक्षेप से तीर्थंकर भगवान जनाते हैं या नहीं? कहते हैं: "ना" हमें तो "जाननहार जानने में आता है"।**

२०७

प्रमाण में से द्रव्य का निश्चय निकालना वह पहले प्रकार का भेदज्ञान है। अब यह दूसरे प्रकार का भेदज्ञान कि स्वपरप्रकाशक ज्ञान वह भी प्रमाणज्ञान है। उसमें से ज्ञान की पर्याय का निश्चय निकालना चाहिए। स्वपरप्रकाशक वह

प्रमाणज्ञान का वाक्य है। पूरा जगत उसे ही ज्ञान मानता है। इसलिए उसकी भेदज्ञान की शक्ति ढँक गई है। प्रमाण में से निश्चय निकाले वह जिनवचन में कुशल है (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)। अतः स्वपरप्रकाशक में भेदज्ञान का प्रयोग करना चाहिए। "जाननहार ही जानने में आता है, वास्तव में पर नहीं जानने में आता"। इसप्रकार इसमें भी ऊपर-ऊपर से सामान्य पक्ष आता है। फिर अधिक अधिक भेदज्ञान होने पर कोई अपूर्व पक्ष आता है। और फिर थोड़े ही क्षणों में-सेकंडो में अनुभव होता है। वह तो अपने घोलन में है और अनुभव हो जाता है। इसलिए तुम्हें इस प्रकार की प्रैक्टिस करना यह एक ही उपाय है।

२०८

भगवान ! तू पर को जानता ही नहीं। पूज्य गुरुदेव फरमाते हैं। अर्थात् कि तेरे ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है"। वाह रे ! मेरा दिन सुधर गया।

२०९

जो पर को नहीं जानता ऐसे जाननहार को जानता हूँ। "मैं जाननहार हूँ" ऐसा जिसे लगा उसे "जाननहार ही जानने में आता है।"

२१०

यह स्वभाव की बात ऐसी है। पर को नहीं जानता और पर जानने में नहीं आता। "जाननहार जानने में आता है" और ज्ञान जाननहार को ही जानता है। इस बात की जितनी जो कीमत करेगा वह नियम से मोक्षगामी ही होगा। उसे केवलज्ञान हो जानेवाला ही है। इतनी पक्की बात है, और इतनी ही सच्ची बात है। लिख लो, लिखवा लो ऐसी बात है।

२११

ज्ञानी के एक वचन के ऊपर विश्वास कर ना ! ज्ञानी का वचन मात्र इतना ही है कि: तुझे "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। इसके ऊपर विश्वास रखकर तू अंदर में जा, प्रयोग कर ! तुझे ऐसा ही स्वरूप भासित होगा। हमारी गारंटी है।

२१२

जिसे ज्ञान होता हुआ भासित होता है उसे क्रोधादिक होते हुए भासित नहीं होते। उसीप्रकार जिसे "जाननहार जानने में आता है" ऐसा भासित होता है, उसे पर जानने में आता है ऐसा भासित नहीं होता।

२१३

जब तक शुद्धात्मा का स्वरूप ख्याल में नहीं आता, तब तक "जाननहार जानने

में आता है" यह ख्याल में नहीं आता। उसे ऐसा लगता है कि "जाननहारे को जाना नहीं" तो जानने में आएगा कहाँ से? जाननहार में परिणाममात्र का अभाव है। जाननहार ज्ञायकभाव में प्रमत्त-अप्रमत्त भाव का अभाव है। बंध-मोक्ष के परिणाम से रहित है। कर्ता भोक्ता के भाव से शून्य है।

२१४

सर्वज्ञदेव की, श्रीगुरु की देशना इतनी ही है कि : "जाननहार ही जानने में आता है।" और वास्तव में आत्मा पर को जानता ही नहीं। इतना ही कहना है। पर को जानना बंद करके, व्यवहार का निषेध करके, "जाननहार जो वास्तव में जानने में आता है" उसे ही जानना है।

२१५

"परमात्म तत्त्व में ध्यानावली नहीं है"। यह कहाँ से उत्पन्न हुई? आत्मा में जाकर आत्मा का अनुभव करते हैं तो आत्मा में तो ध्यानावली नहीं है। "नहीं है" और फिर "है" ऐसा किसने कहा? !

वैसे ही जानने में तो आता है जाननहार और मैं "पर को जानता हूँ" वह कहाँ से आया? मैं पर को जानता हूँ वह किसने कहा? यह अज्ञान के घर में से आया है। "ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का"। स्वरूप में तो नहीं है पर को जानना ! तो आया कहाँ से? ज्ञान की पर्याय का निश्चय तो आत्मा को जानने का है। तो फिर यह कहाँ से चला? किसने चलाया?

२१६

जिज्ञासा : वास्तव में करना क्या था?

समाधान : कि जो पर के साथ ज्ञेय-ज्ञायकपने का व्यवहार था, उसे व्यवहार जानकर, उसका तो निषेध करना था। मैं ज्ञायक और पर ज्ञेय ऐसा नहीं है। मैं ही ज्ञायक हूँ और मैं ही ज्ञेय हूँ और ऐसा निश्चय ज्ञेय-ज्ञायक का अभेद अनुभव वह ही आत्मा का स्वरूप है। "मैं जाननहार हूँ" और मैं ही ज्ञेय होने से मैं ही जानने में आ रहा हूँ। अर्थात् कि "जाननहार ही जानने में आ रहा है"; उसमें ही अनुभव होता है।

२१७

देखो अब मुद्दे की बात आती है। ज्ञेयाकार अवस्था में अर्थात् कि ज्ञेयों का जब ज्ञान में प्रतिभास होता है तब ज्ञान उसे नहीं जानता। परंतु ज्ञेय ज्ञात होते हैं उस काल में इसका (आत्मा का) प्रतिभास भी ज्ञान में होता है।

उस काल में जो प्रतिभास होता है वह ज्ञात होता है या उस समय आत्मा ज्ञात होता है? यदि ऐसा लगे कि ये परज्ञेय ज्ञात होते हैं तो अज्ञानी। इन परज्ञेयों का प्रतिभास होता है तब भी प्रतिभास जानने में नहीं आता परंतु "जाननहार जानने में आता है"। तो

अंदर में आकर अनुभव हो जाता है। यह अनुभव की विधि है।

२१८

आत्मा आत्मा को जानता है ऐसा भेद छूट जाता है। ज्ञायक ज्ञायक ही है, उसमें अनुभव होता है। उसमें भेद छूटकर निर्विकल्प आत्मा की अनुभूति होती है। इसलिए ज्ञाता वह तो वह ही है। "जाननहार वह ज्ञायक, जानने में आया वह भी ज्ञायक ही है"। परिणमन हो जाता है फिर ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय का भेद नहीं रहता।

२१९

कषाय से अनुरंजित परिणाम को लेश्या कहते हैं। पूरे दिन, २४ घंटे उपयोग को राग में रंगता है। आहाहा ! उपयोग उस राग से भिन्न है। "उपयोग में उपयोग है"। उपयोग में राग नहीं है ऐसा उपयोग है, जिसमें आत्मा जानने में आ रहा है; और जिसमें पर जानने में नहीं आता। फिर भी उपयोग में राग का प्रतिभास होता है। प्रतिभास का निषेध नहीं है, लेकिन मुझे वह....जानने में आता है उसका निषेध है। वह नहीं जानने में आता "जाननहार जानने में आता है" ऐसा कहते हैं।

सामान्य का विशेष सामान्य को ही प्रसिद्ध करता है उस न्याय से: उपयोग राग को प्रसिद्ध नहीं करता क्योंकि वह राग का विशेष नहीं है। उपयोग शरीर का विशेष नहीं है, इसलिए शरीर को प्रसिद्ध नहीं करता। शरीर का प्रतिभास होता है तब शरीर को नहीं जानता। राग का प्रतिभास होता है तब ज्ञान राग को नहीं जानता।

दुःख का प्रतिभास होता है तब दुःख को वेदता तो नहीं लेकिन दुःख का ज्ञायक भी नहीं है। यह लंदन में लक्ष्मी बहिन बीमार थीं तब कहा था। ईला बहिन बीमार थीं तब भी कहा था। दोनों को कैंसर था। लंदन से फोन आया कि डॉक्टर ने कहा है कि अब अंतिम टाइम है तो **सल्लेखना, प्रत्याख्यान, त्याग कुछ करवायें? मैंने उनसे कहा!! उस...रास्ते पर बिल्कुल मत चढ़ना।**

पर्याय में जो दुःख होता है, दुःख का पर्याय में वेदन होता है, उसका आत्मा वेदक नहीं है। फिर इस...दुःख को मैं जानता भी नहीं। "मैं जाननहार हूँ, और जाननहार जानने में आता है"। ऐसा प्रयोग करेगा तो अनुभव हो जाएगा।

२२०

यह पदार्थ ज्ञेय है। ज्ञेय के दो प्रकार हैं। एक स्वज्ञेय दूसरा परज्ञेय है। ज्ञेय के रूप में जगत में छह द्रव्य हैं। ज्ञेयाकार होने से अर्थात् ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हो रहे हैं, जानने में आ रहे हैं तब भी ज्ञान उन्हें जानता नहीं है।

जानने में आते हैं अवश्य !! परंतु ज्ञान उन्हें जानता नहीं है। और वे जानने में आया करते हैं, जानने में आना (प्रतिभास होना) बंद नहीं होता, परंतु उन्हें जानना (लक्ष)

बंद हो जाता है। उसे जब तक ऐसा लगता है न कि ये ज्ञेय मुझे ज्ञात होते हैं तब तक अज्ञानी है। परंतु इन ज्ञेयों का तो मात्र प्रतिभास होता है; तब ये ज्ञेय मुझे नहीं ज्ञात होते, मुझे तो ज्ञायक ज्ञात होता है। उसी समय ज्ञेय से व्यावृत्त होकर अर्थात् ज्ञेय से वापस मुड़कर !! ज्ञेय को जानने में रुका हुआ था, उसे जानना बंद हो जाता है।

"जाननहार जानने में आता है" वहाँ पूरा शुद्धोपयोग होकर अनुभव हो जाता है। वह बात इसमें समाहित की है। ध्यान रखकर सुनने लायक है। प्रयोग करेगा तो सफल होगा। यह प्रयोग अफर है।

कदाचित् अनुभव हो, कदाचित् अनुभव ना हो, ऐसे इसमें कदाचित् या कथंचित् नहीं है। सर्वथा है। जैसा ये संत कहते हैं ऐसा करे तो अनुभव हुए बिना रहता नहीं।

संत कहते हैं वैसा कर, तेरी मान्यता को छोड़ दे ! मैं पर को जानता हूँ, क्या नहीं जानता? क्या स्वपरप्रकाशक नहीं है? नहीं तो एकांत हो जाएगा ! - ये शल्य सारे निकाल दे। एक बार हम कहते हैं वैसा प्रयोग कर।

२२१

पर को नहीं जानता "जाननहार ही जानने में आता है" और "जाननहार को ही जानता है" ऐसी जीव वस्तु है।

२२२

तुम्हारे से कुछ ना हो सके तो इतना करना ! मैं पर को नहीं जानता तो अव्यक्तपने भी "जाननहार जानने में आ जाएगा"। और तुम जाननहार में आ जाओगे।

"जाननहार जाननहार को जानना छोड़कर रूप को जानने जाता ही नहीं"।

२२३

१ - "जाननहार को ही जानता है" ऐसे आत्मा का श्रद्धान ---> वह सम्यग्दर्शन।

२ - "जाननहार ही जानने में आता है" ऐसे आत्मा का ज्ञान ---> वह सम्यग्ज्ञान।

३ - "जाननहार ही जानने में आता है" ऐसे आत्मा की लीनता ---> वह सम्यक् चारित्र है।

२२४

"जानने में आता है जाननहार" और मानता है कि पर जानने में आता है यह अक्षम्य भूल है।

२२५

जिज्ञासा : प्रत्येक उत्पाद ध्रुव को प्रसिद्ध करके ही व्यय होता है ! तो वह ज्ञानी को ही लागू पड़ता है ना?

समाधान : कथंचित्, सर्वथा नहीं है। कथंचित् क्या? सभी के पास उपयोग

लक्षण है। चैतन्य अनुविधायी परिणाम वह उपयोग। उसमें बाल-गोपाल सभी को ज्ञायक का प्रतिभास होता है। प्रतिभास के बिना नहीं रहता। यह उपयोग वास्तव में तो लक्ष्य को ही प्रसिद्ध करता है। अब जिसके ख्याल में आता है कि "जाननहार जानने में आता है" तो शुद्धोपयोग होता है।

२२६

जिज्ञासा : आज तक शुद्धोपयोग क्यों नहीं हुआ?

समाधान : जीव ने अनादिकाल से असाधारण बड़ी भूल की है। जो उपयोग प्रगट होता है, उसमें यह जानने में आता है, यह जानने में आता है अर्थात् पर जानने में आता है, ऐसा जहाँ आया तो उसी समय इन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ अतः उसके ज्ञान में जाननहार जानने में आते हुए भी जानने में नहीं आया, इसलिए शुद्धोपयोग नहीं हुआ।

अब उसे यह विचार करना चाहिए कि मेरे ज्ञान में स्व जानने में आता है या पर जानने में आता है? जो उपयोग से अनन्य है वह जानने में आता है। जो उपयोग से अन्य है वह जानने में नहीं आता। तो शुद्धोपयोग हो जाता है।

२२७

"जाननहार जानने में आता है" इस स्वभाव के पक्ष और लक्ष पूर्वक इन्द्रियज्ञान रुक जाता है।

२२८

मैं पर को नहीं जानता, तो पर्याय में से मैं-पना छूटा....तो "जाननहार जानने में आता है" ऐसा आया। फिर "मैं जाननहार हूँ" तो ज्ञान भी सम्यक् हो गया।

२२९

मुझे लगता है यह हवा चालू हो गई है। "आत्मा पर को नहीं जानता, और जाननहार जानने में आता है" यह हवा चालू हो गई है। यह... हवा फैलेगी और वह दूषित हवा निकल जाएगी।

२३०

स्वपरप्रकाशक के ऊपर अर्थात् स्व-पर दोनों को जानता है उसके ऊपर क्रोस मार दो। लेकिन उसके बदले ऐसा लेना कि स्व-पर का प्रतिभास होता है। स्व-पर के प्रतिभास में कर्ताबुद्धि समाप्त होती है। स्व-पर के प्रतिभास में आया तो ज्ञाता-ज्ञेय की भ्रान्ति भी चली जाती है और "जाननहार जानने में आता है" उसमें आ जाता है।

२३१

जिज्ञासा : प्रतिमा को ज्ञान जानता है या इन्द्रियज्ञान जानता है?

समाधान : इन्द्रियज्ञान जानता है। इन्द्रियज्ञान जाने तो जानो। मैं प्रतिमा को

जानता ही नहीं। मैं तो "जाननहार को जानता हूँ"। समय-समय जाननहार जानने में आते हुए भी उसे लक्ष में नहीं आता। बाल-गोपाल सभी को अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आते हुए भी उसका लक्ष वहाँ नहीं है इसलिए अज्ञानी रह जाता है।

२३२

निंबू की खटास में दाल प्रसिद्ध होती है या निंबू प्रसिद्ध होता है? यदि दाल खट्टी तो नींबू गया और निंबू की अवस्था भी गई। ज्ञायक गया और उपयोग लक्षण भी गया।

ज्ञान में राग ज्ञात होता है तो ज्ञायक भी दृष्टि में से गया और उपयोग लक्षण भी गया। राग जानने में नहीं आता "जाननहार जानने में आता है", ऐसा ले ना एक बार ! थोड़ी देर तो प्रयोग कर ऐसा सिखाते हैं।

२३३

जिज्ञासा : प्रतिसमय अज्ञानी को भी आत्मा जानने में आता है?

समाधान : प्रतिसमय अज्ञानी को भी "जाननहार जानने में आता है," फिर भी एक समय भी जानता नहीं है। इसलिए जानना बाकी है। ज्ञान में उसका प्रतिभास होता है। ज्ञान में ज्ञानत्व है और ज्ञायक में ज्ञेयत्व है, इसलिए जानने में आता है लेकिन जानता नहीं है। जाने तो सम्यग्ज्ञान हो जाये। एक जानना बाकी रह गया। जानने में आते हुए भी निषेध-नकार करता है। हकार करे तो सम्यग्दर्शन हो जाए। प्रतिभास तो हर समय होता है।

२३४

वर्तमान चेतना में आत्मा जानने में आता है। केवलज्ञान में आत्मा जानने में आता है, वैसे ही मेरे चिद्विवर्तन में "जाननहार जानने में आता है" तो प्रत्यक्ष हो जाता है।

२३५

पर्याय की तरफ से विचार करना हो, तो ऐसा विचार करना कि मेरे ज्ञान की पर्याय में "जाननहार जानने में आता है पर जानने में नहीं आता"। उपयोग में उपयोग है। जो है वह जानने में आता है। राग नहीं है तो राग ज्ञान का ज्ञेय नहीं होता।

२३६

जिज्ञासा : राग ज्ञान का ज्ञेय है?

समाधान : ज्ञान का ज्ञेय भगवान आत्मा है। ध्यान का ध्येय भगवान आत्मा है। राग को करना, राग को जानना संसार है।

२३७

"ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ" अर्थात् कि ज्ञेय जो रागादि, दुःखादि जानने में आयें तो आयें ! परंतु मैं उन्हें नहीं जानता। मैं तो "जाननहार जानने में

आता है" उसे जानता हूँ। विशेष सामान्य को जानता है। जिसका विशेष है उसे ही जानता है।

यह ट्यूबलाइट है ना ?! प्रकाश है ना ?! यह परपदार्थ को प्रसिद्ध नहीं करता। वह प्रकाश की पर्याय ट्यूबलाइट को प्रसिद्ध करती है। यदि ये पदार्थ ज्ञात होते हैं तो उसके ज्ञान में ट्यूबलाइट संबंधी अँधेरा (है)। उसी प्रकार ज्ञान में जलहल ज्योति जानने में आ रही है, वह जानने में नहीं आती और यह (पर) जानने में आता है तो अज्ञान हो गया।

२३८

"रागादि और देहादि ज्ञान में ज्ञात होते हैं तब उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है"। उसका स्पष्टीकरण चल रहा है। यदि जाननहार जानने में नहीं आता और परवस्तु जानने में आती है तो ज्ञेयकृत अशुद्धता हो गई। फिर से... यह लकड़ी है ना? यह लकड़ी ज्ञान में प्रतिभासित होती है तब आचार्य भगवान कहते हैं कि: तेरे ज्ञान में यह लकड़ी ज्ञात नहीं होती। तेरे ज्ञान में जाननहार जानने में आता है ऐसा ले ना !! यदि ऐसा नहीं लेगा और लकड़ी जानने में आती है (ऐसा लेगा) तो ज्ञेयकृत अशुद्धता हो गई। क्योंकि ज्ञान जिसका है उसे न जाने उसका नाम अज्ञान। शास्त्रों को नहीं जानता इसलिए अज्ञान ऐसा नहीं है। नय-निक्षेप-प्रमाण को नहीं जानता इसलिए अज्ञान ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ के नियम अलग होते हैं न?

२३९

जब ज्ञेय जानने में आते हैं तब आत्मा जानने में न आये तो तो अज्ञानी बन गया। अर्थात् ज्ञेयकृत अशुद्धता हो गई। परंतु जब ज्ञेयों का प्रतिभास जानने में आता है तो भी ज्ञेयकृत अशुद्धता हो गई? अरे ! सुन !! ज्ञेयों का प्रतिभास होता है तब भी "जाननहार जानने में आता है" ऐसा कहते हैं। निर्विकल्पध्यान में तो 'जाननहार जानने में आता है' किन्तु सविकल्प ज्ञान में भी 'जाननहार जानने में आता है'। आहाहा! यह तो अनुभव कैसे हो उसकी विधि बताते हैं।

राग कर्ता का कर्म तो नहीं, किन्तु ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं है। ज्ञान का ज्ञेय निज परमात्मा है वही जानने में आता है, दूसरा जानने में आता नहीं है। जैसे ही अंदर में से ऐसी श्रद्धा उठी उस ही समय अनुभव हो जाता है।

२४०

लड़ाई में शांतिनाथ भगवान चक्रवर्ती खड़े हैं ऐसा दिखता है तब वे जाननहार को जानते हैं। (प्रश्न:-) परंतु साहब! निर्विकल्पध्यान में जाते हैं तब उन्हें जाननहार जानने में आता है - यह... तो ठीक है। परंतु सविकल्पदशा में जाननहार जानने में आता है?

(उत्तरः-) "हाँ" ज्ञान ज्ञायक का संबंध छोड़ता ही नहीं। इसलिए समय-समय ज्ञायक जानने में आता है।

२४१

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं आती? क्योंकि जब ज्ञेय जानने में आते हैं तब उसे जाननहार जानने में आ रहा है। "ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...", जाननहार हूँ ऐसा ज्ञात होता है।

'ज्ञातः'- "जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ" वह सर्व अवस्थाओं में ज्ञायक जानने में आता है। सादि अनंतकाल। नींद में हो तो भी जाननहार जनाया करता है। परिणति में भी आहा! दो भाग पड़ जाते हैं। एक इन्द्रियज्ञान और एक अतीन्द्रियज्ञान, ज्ञान के दो भाग पड़ जाते हैं। वरना इन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रियज्ञान ऐसे ज्ञान के दो भाग नहीं पड़ते उससे पहले भी इन्द्रियज्ञान तो आत्मा से सर्वथा भिन्न है। वैसे उपयोग लक्षण आत्मा से सर्वथा भिन्न नहीं है। इसलिए उपयोग लक्षण में आत्मा जनाया करता है।

वे दो भाग प्रथम परोक्षरूप हैं। अनुभव होने पर प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

२४२

ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं है? ज्ञेय ज्ञात होते हैं तब ज्ञेय में आत्मबुद्धि होकर अज्ञान क्यों नहीं होता? ज्ञानी को ज्ञेय प्रतिभासते हैं तो भी अज्ञान क्यों नहीं होता?

ज्ञानी को ज्ञेयों का प्रतिभास होता है, परंतु अज्ञान नहीं होता और अज्ञानी को ज्ञेयों का प्रतिभास होने पर अज्ञान हो जाता है। क्यों? क्योंकि एक ज्ञेय को जानने पर आत्मबुद्धि करता है। और सावधान होवे तो ! ज्ञेय जानने में आते हैं तब उसे "जाननहार जानने में आता है" इसलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता-अज्ञान प्रगट नहीं होता।

२४३

श्रद्धा सम्यक् करने के लिए अनेकांत लेना कि...जाननहार ही सर्वथा जानने में आता है। सर्वथा पर जानने में नहीं आता।

२४४

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है", उसमें ध्येय और ज्ञेय समझाओ।

समाधान : जाननहार अर्थात् ध्रुव ज्ञायक और वही जानने में आता है। ज्ञान में ध्येय पूर्वक ज्ञेय हो जाता है। "जाननहार जानने में आता है"। जाननहार अर्थात् सामान्य स्वभाव। ज्ञान में क्या जानने में आया? आत्मा जानने में आया। किसमें जानने में आया?

जिज्ञासा : पर्याय में आत्मा जानने में आता है ना?

समाधान : अनुपचरित सद्भूत व्यवहार तक आया हो तो वह भेद उलंघना मुश्किल होता है। **भेद से समझाया। पर्याय में "जाननहार जानने में आता है"। पर्याय में तेरा आत्मा जानने में आता है।** राग, शरीर कुछ जानने में नहीं आता। वह तो भिन्न है तेरे से। वहाँ से तो खिसक गया। अंदर में आया तो "जाननहार जानने में आता है"।

जाननहार- त्रिकाली ध्रुव द्रव्य। वह किसमें जानने में आता है? पर्याय में जानने में आता है। तो पर्याय में ज्ञायक आत्मा जानने में आता है यह बात तो सही है। पर्याय में राग जानने में आता है यह बात तो १००% झूठी है। ज्ञान में आत्मा जानने में आता है यह बात १००% सच्ची है। परंतु यह... इतना भेद रह गया। द्रव्य पर्याय का भेद छूटे तब ज्ञेय हुआ कहलाता है। ध्येय पूर्वक ज्ञेय। **ध्येय तो हाथ में आया; परंतु पर्याय अभेद नहीं होती तब तक ज्ञेय नहीं होता। निर्मल पर्याय कथंचित् अभिन्न होती है।**

२४५

छह द्रव्य जानने में आते हैं- इसमें उनका प्रतिभास रखा। वास्तव में छह द्रव्य जानने में नहीं आते- इसमें ज्ञेय का लक्ष छुड़ाया। फिर छह द्रव्य जानने में आते हैं ऐसी पर्याय जानने में नहीं आती- इसमें पर्याय का लक्ष छुड़वाया और "वास्तव में जाननहार जानने में आता है"- इसमें जाननहार का लक्ष कराया।

२४६

१- अकेला पर जानने में आता है ---> मिथ्या एकांत।

२- स्व-पर दोनों जानने में आते हैं ---> मिथ्या अनेकांत।

३- "जाननहार ही जानने में आता है" ---> सम्यक एकांत।

४- "जाननहार जानने में आता है, पर नहीं" ---> सम्यक अनेकांत।

२४७

नींबू की खटास नींबू से संबंध छोड़ती नहीं और दाल से संबंध जोड़ती नहीं। दाल खट्टी यह बात झूठी है। निंबू खट्टा यह बात सच्ची है। ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं है? अब कारण देते हैं।

परपदार्थ जब ज्ञात होते हैं तब उसके ज्ञान में अज्ञान क्यों नहीं होता? क्योंकि वे ज्ञात होते हैं तब "जाननहार को जानता है" परज्ञेय को नहीं जानता।

२४८

जिज्ञासा : (ज्ञानी को) ज्ञेय जानने में आते हैं तब ज्ञेयों में आत्मबुद्धि क्यों नहीं होती? देह मेरी-ऐसी ममता क्यों नहीं होती?

समाधान : जब देह जानने में आती है तब "जाननहार जानने में आता है",

इसलिए देह में ममता नहीं होती; मोह नहीं होता। यदि "जाननहार न जनाये" और देह जानने में आये तो ममता हुए बिना न रहे। ये तो भव के अंत की बातें हैं। दुःख का नाश करके परमात्मा होने की बातें हैं। एक समय ऐसा अनुभव करे तो अल्पकाल में मुक्ति। "एक समय की कमाई अनंतकाल तक खायेगा"।

२४९

यहाँ कहते हैं लोभ कषाय से भिन्न भगवान आत्मा है। उस लोभ को जानना बंद कर दे तो निर्लोभ अवस्था प्रगट होगी। यह समयसार की बात कोई अपूर्व है। क्यों ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं आती? यह राग जानने में आता है तो 'मैं रागी'- ऐसा ज्ञानी को क्यों नहीं लगता? अथवा जिसे ज्ञान होनेवाला हो उसे राग जानने में आता है? या नहीं आता?

"जाननहार जानने में आता है" तो उसे अनुभव हो जाता है। और अनुभव हो जाने के पश्चात राग जानने में आये तो भी ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं होती? कहते हैं; राग जानने में आता है तब "जाननहार जानने में आता है"। ऊर्ध्वपने आत्मा ही जानने में आता है। ऐसी कोई अपूर्व दशा है। साधक ही साधक की दशा को जानता है।

२५०

जिज्ञासा : जाननहार को जानने का फल?

समाधान : "जाननहार को ही जाना"। आनंद को जाना तो लक्ष आनंद के ऊपर चला जाता है, वह तो भेद का कथन है। (जाननहार को जैसे ही जाना कि मैं जाननहार हूँ वहाँ आनंद लक्ष के बिना जानने में आ जाता है।)

२५१

उपचरित सद्भूत व्यवहारनय का फल यह है कि अनुपचार में चला जाये तो ज्ञेय-ज्ञायक संकर दोष निकल जाता है। अनुपचार में भी अनुभव नहीं होता। यह तो शास्त्र से बात समझाते हैं ना? घर की बात कहाँ है? **अनुपचार में ज्ञान सो आत्मा। अथवा "जाननहार जानने में आता है"। जाननहार ध्रुव ज्ञायक और जानने में आता है- वह द्विविधपना आया उसमें, तब तक आत्मा जानने में नहीं आता।**

२५२

पर को जानता ही नहीं, जाननहार को जानता है - जिसका काल पक गया होगा ना! उसे यह आयेगा। उसे आये बिना रहनेवाला नहीं है।

२५३

"होने योग्य होता है, जाननहार जानने में आता है"। उसमें ज्ञाता हो जाता है। "होने योग्य होता है" मात्र इतना ही जानना वह ही क्रोध है। कर्ताबुद्धि वह ही क्रोध है।

२५४

"जाननहार जानने में आता है" यह एक सूत्र है। जिसमें बारह अंग रहे हुए हैं। बारह अंग का सार भरा है।

२५५

सामान्य ज्ञान में जाननहार जानने में आता है यदि इतना भेद रहेगा तो संसार है। अभेद में भेद करके समझाते हैं।

२५६

"जाननहार जानने में आता है" इतना जानो बस। इतने में "होने योग्य" हो जाएगा। जानने में आने योग्य जानने में आ जाएगा।

२५७

"जाननहार जानने में आता है" यह अभिन्न का भावार्थ है।

२५८

वह पाठ आया। अज्ञान क्यों नहीं होता ज्ञेयों के प्रतिभास के समय? और अज्ञानी को ज्ञेयों के प्रतिभास के समय अज्ञान क्यों होता है? और ज्ञानी को परपदार्थ प्रतिभासित होने पर भी अज्ञान क्यों नहीं होता? ज्ञेयलुब्ध क्यों नहीं होता? ज्ञेय में एकाकार क्यों नहीं होता?

क्योंकि... ज्ञेयाकार अवस्था में। आहाहा! ज्ञेय हैं उनका प्रतिभास यहाँ होता है। (अंदर) तो ज्ञानाकार। परंतु ज्ञेयों की अपेक्षा से उसे ज्ञेयाकार ज्ञान कहा जाता है।

ये ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं तब "जाननहार जानने में आता है" इसलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं होती। ज्ञेयों में आत्मबुद्धि लागू नहीं पड़ती। राग जानने में आये तो 'मैं रागी' ऐसा उसे नहीं लगता। दुःख जानने में आये तब 'मैं दुःखी' ऐसा उसे नहीं लगता।

नहीं लगने का कारण क्या? कि दुःख प्रतिभासित होता है तब सुखमय आत्मा प्रतिसमय जानने में आता है। "जाननहार जानने में आता है" इसलिए दुःख में आत्मबुद्धि, दुःख में भोक्ताबुद्धि और दुःख में ज्ञाताबुद्धि नहीं होती।

२५९

"जाननहार जानने में आता है, पर नहीं" उसका नाम मोक्ष। पर जानने में आता है उसका नाम संसार।

२६०

पूरे विश्व में एक "जाननहार ही जाननहारपने ज्ञात होता है"। उसे अंदर से ही भासित होने लगता है कि एक ज्ञायक ही ज्ञेय है। जिसमें ज्ञान तन्मय हो ऐसा ज्ञेय तो एक

ज्ञायक ही है। जिसे अंदर से श्रद्धा से भासित होता है उसे पर को जानने का निषेध करनेवाली ऐसी निश्चयनय की वाणी भी मिल जाती है।

२६१

पर को नहीं जानता ऐसा कहा ! उसमें क्या आ गया साथ में? कि: "जाननहार को ही जानता है"। जाननहार को किस प्रकार जानता है? कि: "मैं जाननहार हूँ" ऐसा जानता है। तुम पर को जानने का निषेध तो करो जरा ! तो तुम्हें स्वयं स्वतः ऑटोमेटिक जाननहार जानने में आ जाएगा।

२६२

"जाननहार जानने में आता है" इन दो को अभेद करो तो मैं तो ज्ञाता ही हूँ।

२६३

वस्तु की स्थिति का स्वीकार अर्थात् "जाननहार जानने में आता है"। और उसके स्वीकार का नाम ही अनुभव है।

२६४

ज्ञान का लक्षण पर को न जानना, "जाननहार को ही जानना", यह ज्ञान का लक्षण इन्द्रियज्ञान में नहीं है। इसीलिए वह ज्ञान नहीं है।

२६५

स्वभाव से ही "जाननहार जानने में आ रहा है"; जानने में आ रहा है उसमें स्वभाव ही लक्ष में आता है।

२६६

ज्ञान के लक्षवाला पार्ट एकदम सही लिया है कि: "जाननहार ही जानने में आता है और पर जानने में ही नहीं आता।"

२६७

जीव के परिणाम उसे कहते हैं कि जिसमें "जाननहार जानने में आये" और दूसरा कुछ जानने में न आये।

२६८

अनादि-अनंत उपयोग लक्षण है। उपयोग लक्षण आत्मा का है। इसलिए उसमें आत्मा ही जनाया करता है या नहीं? केवलज्ञान न हो तो जानने में आता है या नहीं आता? प्रत्यक्ष अनुभव हो तो जानने में आता है या नहीं? अरे ! जानने में आता है, जानने में आता है और आता ही है। आहाहा! अरे! मुझे मेरे ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है", दूसरा कुछ नहीं जानने में आता। वहाँ तो अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होकर आनंद आएगा तुझे।

२६९

विधि-निषेध नय में है। स्वभाव से ही ज्ञान आत्मा को जान रहा है, उसमें विधि-निषेध का विकल्प नहीं आया। दोनों एकसाथ जाते हैं। बाल-गोपाल में मैं आ गया या नहीं? बाहर रहा या आ गया? (आ गया।) मेरे ज्ञान में मेरा परमात्मा जाननहार जानने में आता है।

२७०

पर को जानना चालू रखने से अपने अस्तित्व का नाश होता है। पर को जानना बंद करने पर "जाननहार जानने में आता है"। ऐसा लेने पर अपने अस्तित्व का निर्णय होता है।

२७१

पर को जानना बंद तो करो जरा; तो जाननहार नियम से जानने में आएगा। जिस-जिसको जानने में आया था, उस-उसको पर को जानने का निषेध करने पर तुरंत ही जानने में आया था। जिसे जानने में आ रहा है उसे भी पर को जानने का निषेध करने पर तुरंत ही जानने में आ जाता है। आहाहा! जो पर को जानने का निषेध करता है उसे ही "जाननहार जानने में आता है"। यह त्रैकालिक सत्य है।

२७२

"जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा तुम्हारा स्वभाव है। पर जानने में न आये ऐसा भी तुम्हारा स्वभाव ही है। ज्ञान में स्वभाव से ही "जाननहार जानने में आता है"। यह नय की बात नहीं है।

२७३

"जाननक्रिया का स्वभावभूत होने से निषेध नहीं किया गया है"। (स.सार गाथा-६९,७०) रागादि से मोक्ष तक के परिणाम हैं वे अजीव के हैं। इसलिए उनका निषेध किया गया है। उपयोग कर्माधीन नहीं है, कर्म से निरपेक्ष है। उपयोग तो स्वभावभूत क्रिया होने से उसमें जाननहार ही जानने में आता है।

२७४

"जाननहार मुझे जानने में आता है" इसमें किसी भी प्रकार के व्यवहारनय के विकल्प या निश्चयनय के विकल्प नहीं होते। स्वभाव तक पहुँच जाए तो विकल्प की उत्पत्ति नहीं होती। मन के संग से विकल्प उत्पन्न होते थे, अब आत्मा के-स्वभाव के संग में जाता है तो विकल्प रहते नहीं।

२७५

जिज्ञासा : कैसा जाननहार जानने में आता है?

समाधान : यह....मत पूछो तो अच्छा। क्योंकि ध्येय जानने में आता है या अभेद ज्ञेय जानने में आता है, ऐसे भेद करोगे तो जाननहार नहीं रहेगा।

२७६

"जाननहार ही जानने में आता है" दूसरा कुछ जानने में ही नहीं आता। लाख बात की एक बात, दूसरी कोई बात मत सुनो!! निर्दयता से व्यवहार का निषेध करना।

२७७

मूलमंत्रेभ्यो नम: ---> "जाननहार जानने में आता है"।

जिस समय उपयोग में जाननहार जानने में आ रहा है, उस समय श्रद्धा भी करनी है, ज्ञान भी करना है। **ज्ञान सरदार है इसलिए जाने हुए का श्रद्धान होता है। "जाननहार जानने में आता है", वह ज्ञान नया प्रगट होता है, उसके साथ श्रद्धान भी प्रगट होता है। जाने हुए का श्रद्धान होता है।**

निगोद के जीव में भी उपयोग है। उपयोग की स्वच्छता ऐसी है कि: उसमें स्व-पर का प्रतिभास होता है। अर्थात् निज परमात्म द्रव्य भी जानने में आता है। क्योंकि उसमें ज्ञेयत्व है; इसलिए उसका भी प्रतिभास होता है। अब यह सामान्य लक्षण सभी जीवों के पास है। उसमें से कोई जीव सामान्य ज्ञान का आविर्भाव करता है, और ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव करता है, तो वह सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

सामान्य ज्ञान का आविर्भाव कैसे हो? विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव कैसे हो? उसकी व्याख्या की है। जिसके फल में शुद्धोपयोग प्रगट होता है, वह कैसे हो? कहते हैं कि: "जाननहार जानने में आता है और परपदार्थ ज्ञात नहीं होते"। ज्ञेयाकार ज्ञान तिरोभाव को प्राप्त होता है परंतु उसका अभाव नहीं होता, ध्यान रखना।

२७८

अब सामान्य ज्ञान का आविर्भाव कैसे हुआ? कहते हैं कि: सामान्य ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता था। उपयोग का अभाव नहीं होता। परंतु पर का लक्ष था। क्योंकि उस उपयोग में ज्ञानानंद परमात्मा जानने में आते हुए भी उसका दुर्लक्ष करके, मुझे यह (पर) ज्ञात होता है; यह ज्ञात होता है; यह ज्ञात होता है; इसप्रकार ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव अर्थात् अज्ञान और सामान्य ज्ञान का तिरोभाव करता है। उसका प्रतिभास था लेकिन आविर्भाव नहीं था। अज्ञानी, अभव्य को भी प्रतिभास छूटता नहीं है। ख्याल में आया?

२७९

"मैं जाननहार हूँ और जाननहार मुझे जानने में आता है" इतना ही मेरा कार्य है। राग जाननहार का कार्य नहीं है। क्योंकि राग जानने में आता नहीं है। जानने में आये तो वह कर्म हो जाये।

२८०

"ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का" ज्ञायक पर का नहीं है अर्थात् पर को जानता नहीं है और ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। इसमें ज्ञान ज्ञायक को जान लेता है। उस समय ज्ञायक पर को नहीं जानता - ऐसा निषेधक निश्चयनय है। और यह निश्चयनय है वह दो रूप में है। जैसे ही पर को जानने का निश्चय से निषेध किया तो जाननहार जानने में आ गया। यह निश्चयनय परिणमनरूप है, विकल्परूप नहीं है।

२८१

जिसे तू देख रहा है उसे देखना बंद कर; तो तुझे देखनेवाला दिखेगा। पर को नहीं जानता ! तो जाननहार तो है ना? वह किसे जानता है? कि: जाननहार जाननेवाले को जानता है। यह बात तुरंत ही समझ में आएगी। क्योंकि जाननेवाले का कोई न कोई विषय अवश्य होता ही है। पर ज्ञान का विषय नहीं है, तो ज्ञान का विषय कोई ना कोई तो है। **पर को जानना बंद कर तो जाननहार अपनेआप ज्ञान का विषय हो जाएगा। विषय बनाना नहीं पड़ता। अपनेआप विषय बन जाता है।**

२८२

अभी तो "जाननहार जानने में आता है" इसका स्वर्णिम अवसर आ गया है। जिन जीवों का मोक्ष जाने का काल निकट आ गया है उन्हें स्वयं अंदर से जाननहार ही ज्ञेयपने भासित होता है।

२८३

"अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा जानने में आ रहा है"; जानने में आ रहा है उसका **अर्थ:** "उपयोग में उपयोग है"। "उपयोग में उपयोग है" उसमें भी स्वप्रकाशकपना निकला। उपयोग में उपयोग है अतः जाननहार ही जानने में आता है, इसलिए स्वप्रकाशक ही है।

२८४

जो ज्ञायक का प्रतिभास था। अब जिसका सम्यग्दर्शन होने का काल पकता है, तब उसे अंदर से आता है कि "जाननहार जानने में आता है, मुझे पर जानने में नहीं आता"। ऐसा काल जब आता है तब विशेष ज्ञेयाकारज्ञान का तिरोभाव होता है।

अर्थात् कि पर के लक्षवाला इन्द्रियज्ञान रुक जाता है। परंतु उसका अभाव नहीं

होता।

मुझे "जाननहार जानने में आता है" तो लक्ष पर के ऊपर से छूट जाता है। और उपयोग अंदर में जाकर शुद्धोपयोगरूप हो जाता है। उस शुद्धोपयोग का लक्षण एकांतरूप से स्वप्रकाशक है। उसमें स्वपरप्रकाशक नहीं है।

एकांतरूप से स्वप्रकाशक का न्याय क्या? कहते हैं - उपयोग को एकांतरूप से सामान्य का ही अवलंबन है, विशेष का अवलंबन नहीं है तो फिर पर का तो अवलंबन कहाँ से हो? दोनों का प्रतिभास है उसका निषेध नहीं है। परंतु साध्य की सिद्धि स्वपरप्रकाशक में नहीं होती। उल्टा स्वपरप्रकाशक के पक्ष में अज्ञान हो जाता है।

२८५

परमात्मा परिणमता ही नहीं और परिणमता है तो ज्ञानरूप से ही परिणमता है। सभी के ज्ञान में जाननहार तन्मय है। इसलिए ज्ञान में "जाननहार ही जानने में आता है"।

२८६

जिस ज्ञान में प्रवचन ज्ञात होते हैं उस ज्ञान में आत्मा ज्ञात नहीं होता। विशेष ज्ञान में आत्मा ज्ञात नहीं होता। सामान्य ज्ञान में जाननहार रहता है इसलिए सामान्य ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है"।

प्रवचन को जाननेवाला ज्ञान अलग है। आत्मा को जाननेवाला ज्ञान अलग है। परमात्मा में परमात्मा को जाननेवाला ज्ञान प्रगट होता है। परमात्मा में पर को जाननेवाला ज्ञान प्रगट नहीं होता।

२८७

दो ज्ञेयों को जाननेवाला एक ज्ञान नहीं है। स्व-पर दो ज्ञेयों को जाननेवाले दो ज्ञान हैं। जिस ज्ञान में पर ज्ञात होता है उसमें स्व ज्ञात नहीं होता। सामान्य ज्ञान मात्र "जाननहार को ही जानता है" पर को जानता ही नहीं।

२८८

लक्षण और लक्ष्य का भेद रहता है तब तक भी आत्मा जानने में नहीं आता। **ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। उस (भेद) में भी आत्मा ज्ञात नहीं होता, तो फिर ज्ञान में स्व-पर जानने में आता है उसमें तो आत्मा कहाँ से जानने में आएगा बापू तुझे!** रहने दे!! रहने दे!! आजा मोक्षमार्ग में। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले ले ना; पर जानने में नहीं आता। वास्तव में, यह शब्द क्यों लगाया? प्रतिभास होता है लोकालोक का, उसे उड़ाया नहीं जा सकता परंतु प्रतिभास होते हुए भी उसका लक्ष पलट गया। शरीर का प्रतिभास है, लक्ष पलट गया बस। ज्ञायक ज्ञात होता है। प्रतिभास

रह गया और अनुभव हो गया। प्रतिभास को उड़ाया नहीं जाता।

२८९

यह किसके घर में से बात आई है कि ६ द्रव्यों को ज्ञान जानता नहीं है? किसी तीर्थंकर ने ऐसा कहा है? (यह अज्ञानी का तर्क है)। अनंतों तीर्थंकर हुए। वर्तमान में होंगे। भगवान की दिव्यध्वनि में आया है। किसी तीर्थंकर ने कहा ही नहीं है कि : ज्ञान पर को जानता है। वह तो जाननहार को जानता है; पर को नहीं जानता। (परपदार्थ) व्यवहार से तो ज्ञेय है ना? व्यवहार से ज्ञेय अर्थात् ऐसा है नहीं। उपचार के कथन हैं सभी। **बहुत से जीवों का काल पका होगा, इसलिए यह गुप्त खजाना बाहर आ गया।**

२९०

वास्तव में चार गतियों में से किसी गति की भावना ही नहीं होती। मेरे में कोई गति ही नहीं है। उसमें ऐसा कहा कि...."आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान"। "मैं जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं"। उसमें बारह अंग का सार है। फिर "जाननहार जानने में आता है" और दूसरा कुछ जानने में नहीं आता। क्योंकि जाननहार में दूसरा कुछ है ही नहीं। तो जानने में कहाँ से आए? उसकी तो यह चर्चा चलती है। ये क्षायिकभाव के स्थान नहीं हैं। ये क्षयोपशमभाव के स्थान नहीं हैं।

२९१

पर का, भेद का लक्ष करना वह ज्ञान का स्वभाव नहीं है। जाननहार जानने में आता है उसे जानना वह ज्ञान का स्वभाव है।

२९२

शक्ति ---> "जाननहर जानने में आता है।"

शक्ति की व्यक्ति प्रगट होती है उसमें ---> "जाननहार जानने में आता है।"

२९३

श्रीमद्जी जैसे श्रीमद्जी कहते हैं : "षट् स्थानक से भिन्न बताया आप"। आप अर्थात् आत्मा। मोक्षमार्ग और मोक्ष से भिन्न दृष्टि में आयेगा। न्यारा है इसलिए जाननहार है। सतत वह ही आता है कि "जाननहार जानने में आता है।" पर्यायमात्र से भिन्न है भाई!

आहा! पर्याय से रहित ऐसा श्रद्धान करना। **ध्येय दृष्टि में आयेगा तो अनुभूति की पर्याय से सहित और आनंद की पर्याय से सहित ज्ञान जान लेगा। अपरिणामी का श्रद्धान और परिणामी का ज्ञान होगा।**

२९४

"जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता" वह बात बहुत जरूरी है।

२९५

जिज्ञासा : कैसा जाननहार है?

समाधान : निरंतर ज्ञान में जानने में आ रहा है वैसा जाननहार है।

२९६

निरंतर "जाननहार जानने में आता है" ऐसी अनादि की स्वानुभूतिरूपी रमणी के पास जाता है।

२९७

"ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का", क्रोधादि उपयोग में नहीं हैं इसलिए जानने में नहीं आते। **ज्ञान के कोने कोने में सर्वांग ज्ञान ही व्यापक है। इसलिए ज्ञान में अन्य का प्रवेश नहीं है। इसलिए जानने में नहीं आता। जानने में नहीं आता इसलिए जानने में नहीं आता। जानने में अर्थात् क्रोधादि का प्रवेश नहीं है इसलिए जानने में नहीं आता। ज्ञान में जाननहार ही व्यापक है इसलिए "जाननहार ही जानने में आता है।"**

२९८

तुम्हारे ज्ञान में इस समय "जाननहार जानने में आ रहा है।" जानने में स्वयं आ ही रहा है। आत्मा को जानना नहीं है। चालू फंक्शन का स्वीकार करना वह महान पुरुषार्थ है।

२९९

"जाननहार जानने में आता है।" उपयोग में उपयोग है। इस उपयोग में लोकालोक तो जानने में नहीं आता, परंतु उपयोग भी जानने में नहीं आता। ज्ञान में तो ज्ञायक ही ज्ञात होता है। ज्ञान, ज्ञान को नहीं जानता, तो वह ज्ञान की पर्याय पर को कैसे जाने? ज्ञान की पर्याय अपना अस्तित्व भूलकर ज्ञायक को प्रसिद्ध करती है- इसलिए वह आत्मा ही है।

३००

चोट लगे तो काम हो, तथा मैं पर को जानता हूँ वह निकल जाये और "जाननहार जानने में आ जाए"। इन्द्रियज्ञान रह जाए।

३०१

ज्ञान प्रगट हो रहा है। अर्थात् ज्ञान में जाननहार ज्ञायक ही ज्ञात हो रहा है, उसका नाम संवर, उसका नाम विशेष ज्ञान, उसका नाम धर्म। विशेष में विशेष का स्वीकार नहीं होता, विशेष में तो सामान्य का स्वीकार हो रहा है।

३०२

आत्मा को जानो ! आत्मा को जानो ! अब तो जाननहार जानने में आ रहा है, तो पुरुषार्थ क्या करना? पहले जाननहार को जानना है, ऐसा था। अब तो जाननहार जानने में आ रहा है। इसलिए कुछ करना नहीं है। वास्तव में तुझे कुछ भी करना नहीं है। जैसा है वैसा स्वीकार करना है। बस इतना ही है।

३०३

जिज्ञासा : जाननहार जानने में आये ऐसा कोई उपाय बताओ?

समाधान : हे भव्य ! तुझे निरंतर जाननहार ही जानने में आ रहा है। पर को तू जानता ही नहीं। पर को तूने कभी जाना भी नहीं।

३०४

सभी को जाननहार ही जानने में आता है इसलिए तो सभी जाननहार ही हैं।

३०५

"जाननहार जानने में आता है" वह ज्ञान; और पर जानने में नहीं आता वह वैराग्य है।

३०६

जाननहार अखंड ज्ञायक भगवान जानने के स्वभाव से भरा है। और वह कभी पर को जानने गया ही नहीं, ऐसे जाननहार को जानता हूँ।

३०७

जाननहार पर को जानता ही नहीं। जाननहार जाननहार को ही जानता है। इस ज्ञान के विश्वास के बिना विषयों की (पर को जानने की) अभिलाषा छूटती नहीं है।

३०८

"जाननहार को ही जानता है", और "जाननहार ही जानने में आता है", ऐसा यह ज्ञायक ज्ञेय है।

३०९

ज्ञान का स्वभाव ऐसा है कि जाननहार को जानने पर "जाननहार ही जानने में आता है।"

३१०

"जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता" इसमें त्याग धर्म आ गया।

३११

पर को नहीं जानता, और "जाननहार जानने में आता है" ऐसा घूंटन अंदर से

उठेगा तो ज्ञेय पलट जायेगा।

३१२

दूसरा वास्तव में कुछ जानने में नहीं आता; जाननहार ही जानने में आता है। उसमें "दूसरा वास्तव में कुछ जानने में नहीं आता" उसमें बहुत माल है।

३१३

मैं अनादिकाल से ज्ञान के बाहर गया ही नहीं। आत्मा चार गति में घूमा है वह आत्मकथा नहीं है, संसार कथा है। आत्मकथा तो इतनी ही है "ज्ञान में जाननहार ही जानने में आ रहा है।" उसका स्वीकार वह पुरुषार्थ है और वह धर्म है।

३१४

कुंदकुंदाचार्य भगवान ने कहा, "तू जाननहार को जान"। अमृतचंद्र आचार्य भगवान ने कहा: "जो जानने में आ रहा है उसे जान"। दोनों की संधि है। एक आचार्य ने कहा कि "जाननहार को जान!" तो उससे कर्ताबुद्धि पुष्ट होती हो ऐसी बात नहीं है। अमृतचंद्र आचार्य कहते हैं कि : "जानने में आ रहा है उसे तू जान" इससे ज्ञाताबुद्धि होती हो वैसा भी नहीं है। विवक्षा समझनी चाहिए।

३१५

अतीन्द्रियज्ञान तो है नहीं, और इन्द्रियज्ञान में आत्मा जानने में नहीं आता! तो आचार्य भगवान ने किस प्रकार से कहा कि "जाननहार जानने में आ रहा है"!? सामान्य ज्ञान में सभी को अनुभूतिस्वरूप आत्मा जानने में आता है। ऐसा जो जानता है उसे सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। वह नया प्रगट होता है। विशेष नया प्रगट होता है। सामान्य है वह नया प्रगट नहीं होता। घटना नयी घटित होती है। क्योंकि वह घटना है, स्वभाव नहीं है। और स्वभाव नया नहीं होता।

३१६

न समझ में आए तो निराश मत होना। मैं जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आ रहा है, उसने पूरा जिनशासन जान लिया। (जानना) कुछ बाकी रहता नहीं है।

३१७

अभवी निगोदिया को स्व-पर का प्रतिभास होता है; प्रतिभास टलता नहीं है। परंतु जब निषेध करता है कि: मुझे जाननहार ही जानने में आता है, तब पर का प्रतिभास रह जाता है। और उपयोग कन्वर्ट होकर अतीन्द्रियज्ञान हो जाता है। परंतु यह पहेली सुलझाना कठिन है। निकट भवि (जीव) को पहेली का सुलझाव जरूर आ जाता है।

३१८

वह वाक्य इतना इम्पोर्टेंट है कि... **मेरे पास आकर बहुत लोग प्रश्न करते हैं**

कि : अस्ति से बात करो ना? प्रश्न तो होता है ना? तब मैंने कहा, पर जानने में नहीं आता ऐसा क्यों कहा पता है? **उसको शल्य है कि "पर जानने में आता है"। यह... शल्य निकालने के लिए "पर जानने में नहीं आता" ऐसा कहा। तब अस्ति में आयेगा। तब अंदर में आएगा। पर जानने में आता है, ऐसा श्रद्धान में है न? स्व-पर जानने में आता है वह मिथ्या श्रद्धा है।**

कहते हैं कि: "जाननहार जानने में आता है" अस्ति से बात करो ना? तो उसे कहते हैं कि तुझे जानने में नहीं आयेगा। मैं पर को जानता हूँ ऐसा शल्य छुपा है।

भूल कौन बताए? और इस भूल का ज्ञान सभी को नहीं होता। परन्तु जब काल पकता है तब...."मैं पर को जानता हूँ" यह मेरी भूल है ऐसा समझ में आता है।

३१९

समयसार की १४४ गाथा है। उसमें संपूर्ण कर्ता-कर्म अधिकार का सार है। ऐसा करने से जीव को सम्यग्दर्शन होता है। कैसा करने से? आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना वह। इतने भेद से समझाते हैं। परन्तु जब "जाननहार जानने में आता है" तब ये सब विकल्प शांत हो जाते हैं। विराम को प्राप्त हो जाते हैं। नयों के विकल्प विराम पाते हैं। उसमें A..to..Z.. प्रोसेस है। प्रथम क्या? और पश्चात् क्या? (ऐसे दो प्रश्न हैं।)

३२०

"मैं जाननहार हूँ, जाननहार जानने में आता है"। **"मैं जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है" वह भेद से बात समझाई।** परंतु **भेद रहता नहीं। भाषा से समझाया इसलिए भेद है और वह (अनुभव) तो वचनातीत है। भेद नहीं रहता। उसे वाणी का वाच्य ग्रहण करना चाहिए। "जाननहार जानने में आता है" उसमें अभेद को लेना चाहिए। कोई वाणी को पकड़े कि यह तो तुम भेद से बात करते हो? शब्द म्लेच्छ नहीं होना चाहिए। "जाननहार जानने में आता है" यह तो महामुनि का वाक्य है। छठ्ठे सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले मुनिराज कहते हैं।**

३२१

परिणाम सर्वथा भिन्न है इसलिए कर्ता नहीं है। परिणाम से सर्वथा भिन्न है इसलिए जानता नहीं है। ज्ञान और ज्ञेय तो अभिन्न हैं। जो ज्ञान है वह ही ज्ञेय है, वह ही ज्ञाता है। जाननहार प्रतिसमय आबाल-गोपाल सभी को जानने में आ रहा है। उसके उपर विश्वास नहीं आता।

३२२

दर्पण में सोमवार को मुख दिखाई दिया। मंगलवार को! यह मुख जानने में आता है या दर्पण जानने में आता है? गुरु की वाणी में आया कि दर्पण की स्वच्छता में दल ज्ञात होता है। दूसरे दिवस गया मंदिर में; मुख का प्रतिभास तो होता है उसे मिटाया नहीं जा सकता।

कल तो मुख जानने में आता था, आज दल जानने में आता है। वहाँ तीसरा कोई आया; ऐसा रहने दो! मुख भी ज्ञात होता है और दल भी ज्ञात होता है ऐसा अनेकांत रखो तुम!

निश्चय की बात सुननेवाले, कहनेवाले, अनुभव करनेवाले कम ही होते हैं। **स्वपरप्रकाशक में प्रतिभास की मुख्यता है,** जानने की मुख्यता नहीं है। स्वप्रकाशक कहा वहाँ निश्चय कहा है। हमें व्यवहार के वचन में से निश्चय निकाल लेना चाहिए।

३२३

१ समकित होगा तब ---> जाननहार जानने में आ रहा है उसमें होगा।

२ श्रेणी होगी तब ---> जाननहार जानने में आ रहा है उसमें होगी।

३ मोक्ष होगा तब ---> जाननहार जानने में आ रहा है उसमें होगा।

३२४

स्वपरप्रकाशक है फिर भी पर को नहीं जानता; स्व को ही जानता है। स्वपरप्रकाशक पहेली है। स्वपरप्रकाशक को (जैनदर्शन में से) उड़ाया ना? कि: **"ना"। स्वपरप्रकाशक को रखकर स्वप्रकाशक हो जाता है। स्वपरप्रकाशक उड़ता नहीं। अनंत पदार्थों का, लोकालोक का प्रतिभास होता है; परन्तु वे जानने में नहीं आते। अब जब अनुभव का काल आता है तब, अर्थात् कि पर के प्रतिभास के काल में पर तो जानने में नहीं आता, पर का प्रतिभास हुआ वह भी जानने में नहीं आता। परंतु जाननहारा जानने में आता है। तब उसे अनुभव हो जाता है।**

३२५

"जाननहारा जानने में आता है" वह जैन का जवाब है, और पर जानने में आता है वह भ्रमणा का भूत है।

३२६

आबाल-गोपाल सभी को सदाकाल अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा ही जानने में आ रहा है। अर्थात् **"जाननहार ही जानने में आता है" ऐसा विचार करेगा, निर्णय करेगा तो अनुभव हो जाएगा। यह छोटा मुँह बड़ी बात नहीं है।**

३२७

जाननहार ही जानने में आ रहा है - यह एक ही बात नहीं सुनी, यह एक ही बात सुनने जैसी है।

३२८

जाननहार को जानता है, पर को नहीं जानता वह ही जीव है।

३२९

स्वभाव चालू है। स्वभाव क्या? "जाननहार जानने में आता है" इस स्वभाव का कभी अभाव हुआ ही नहीं।

३३०

परिणाम को जानने जाए ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है, परिणाम को भगवान ने परद्रव्य कहा है। आहार के परिणाम, पुण्य के परिणाम, उन्हें ज्ञेय बनाए तो, भगवान आत्मा ज्ञान का ज्ञेय रह जाएगा। उसे जाननहार जानने में आते हुए भी जानने में नहीं आएगा। परिणाम परज्ञेय है स्वज्ञेय नहीं है।

३३१

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा (कुंदामृत कहान स्वाध्याय मंदिर में) लिखा है। जाननहार जानने में 'आएगा' वैसा नहीं लिखा है। बाल-गोपाल सभी को जानने में आता है। जो पढ़े उसे "जाननहार जानने में आता है" ऐसा लिखा है?

जिज्ञासा:- तो प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता?

समाधान:- पर को जानता हूँ, या पर्याय को जानता हूँ, वह शल्य रह गया। द्रव्यलिंगी मुनि की यह भूल रह गई। तो फिर सामान्य मनुष्य तो भ्रमित होवे ही न ?!

३३२

पर को जानता है उसमें इन्द्रियज्ञान प्रगट होता है। "पर को नहीं जानता जाननहार जानने में आता है" उसमें अनुभव होता है। अनुभव होने के बाद वह किसकी बात माने ?! शक्कर पंचमकाल है इसलिए फीकी है? अरे! मैंने चखी है फिर फीकी की बात कहाँ है ?! चौथे काल में मीठी पंचमकाल में फीकी ऐसा नहीं होता। वेद्य = जानना। वेदक= जाननेवाला। वेद= to know.

यहाँ वेद वह भोक्ता के रूप में नहीं है। "जाननहार जानने में आता है", "जाननहार जानने में आता है" ऐसे दो भेद पड़े या नहीं? भेद नहीं है परंतु शिष्यों को समझाने के लिए कहा है। जाननहार मैं और केवली भगवान, पंच परमेष्ठी ज्ञान के ज्ञेय। मैं उन्हें जानता हूँ तो भ्रान्ति। जाननेवाला भी आत्मा, जानने में आता भी आत्मा। दो भेद नहीं हैं वस्तु तो एक ही है।

३३३

पुद्गल की अनंत शक्ति को अल्प शक्तिवाला नहीं जानता, परंतु अनंत शक्तिवाला हो वही जानता है। वास्तव में तो पुद्गल को जानने की शक्ति ही नहीं है (आत्मा में)। वह तो अपने को जाननेवाला है। पुद्गल को और उसकी अनंत शक्ति को जाने तो यह जाननहार जानना रह जाता है। (१) बाल-गोपाल सभी को जानने में आ रहा है। (२) "जाननेवाला जानने में आता है" (३) ध्रुव ज्ञायक परमात्मा जानने में आता है।

३३४

ज्ञान प्रगट करने का सीधा-सादा उपाय ---> "जाननहार जानने में आता है"।

३३५

यद्यपि आत्मा और ज्ञान है तो तादात्म्य स्वरूप। प्रकाश और प्रकाशक एक सत्ता है। तादात्म्य स्वरूप होते हुए भी क्षणमात्र को भी सेवन नहीं करता। मुझे ज्ञान जानने में आता है, ज्ञायक जानने में आता है, जाननहार जानने में आता है, उसमें वह आता नहीं है। यह वाक्य उसे बैठता नहीं। इस प्रकार यह.... (पर) जानने में आता है, यह जानने में आता है.... क्या पर जानने में नहीं आता? उसे जाननहार जानने में आता है ऐसा कैसे समझ में आये? यह... बहुत सूक्ष्म बात है। इन्द्रियज्ञान से प्रत्यक्ष दिखता है ना? वहाँ चिपक गया है।

३३६

"मैं करनेवाला नहीं हूँ मैं जाननेवाला हूँ"। "जाननहार ही जानने में आता है", बस। इसमें ४ वाक्य लिखे हैं। सूरज का स्वभाव प्रकाश और प्रकाश का स्वभाव? सूरज को तन्मयरूप से प्रसिद्ध करने का है। प्रथम से ही ज्ञान और ज्ञायक है तो तन्मय परंतु उसका स्वीकार नहीं आता।

३३७

स्वयं बुद्धत्व और बोधित बुद्धत्व उस कारणपूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। स्वयं अपनेआप से जानना वह स्वयंबुद्धत्व। और दूसरे के बताने से जानना वह बोधितबुद्धत्व। या तो स्वयं अपनेआप चिंतवन करके निश्चित करता है कि ओहो! मुझे तो "जाननहार जानने में आता है" तो अनुभव हो जाता है।

या तो ज्ञानी का योग हो तब देशना मिलती है कि तुझे देह जानने में नहीं आता! परज्ञेय जानने में नहीं आता। तेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है। हमें ज्ञायक जानने में आता है; तुम्हें ज्ञायक जानने में आता है, ऐसा उपदेश जहाँ आया; वहाँ वह पर का निषेध करके, व्यवहार का निषेध करके; "जाननहार जानने में आता है" उसमें आ गया। वह बोधिबुद्धत्वपना हुआ। इसप्रकार उपदेश से भी अनुभव होता है।

३३८

ज्ञान आत्मा को ही जान रहा है, और "जाननहार ही जानने में आ रहा है"। हे! मोक्षार्थी जीवों! इसका परम उल्लास से श्रद्धान करो।

३३९

परद्रव्य को मैं जानता हूँ ऐसा जो जगत के जीव आग्रह करते हैं वे तो सम्यक्त्व के सन्मुख भी नहीं हैं। सभी के आत्मा पर को न जानें ऐसे ही हैं, हों!! **स्व को जानना छूटता नहीं - ऐसा लेना हों!** भले ही प्रत्यक्ष न होवे, परंतु परोक्ष में तो आ जाता है। पर को जाने ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। स्व को जाने ऐसा ही ज्ञान का स्वभाव है।

स्व कदाचित् प्रत्यक्ष न हो तो परोक्ष में रखो कि: बाल-गोपाल सभी को "जाननहार जानने में आता है।" अर्थात् प्रतिभास तो हो रहा है। परोक्ष अनुभूति तो हो रही है, परंतु पर जानने में आता है ऐसा माने तो उसे प्रत्यक्ष अनुभूति कहाँ से हो? वह तो बाहर चला गया।

कलशटीका कलश ८ में- **उद्योतमानम् उन्नीयमानम्** ये दो शब्द लिखे हैं। "जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है"। अर्थात् पर को नहीं जानती। विषय बहुत सुंदर बाहर आ गया है। ज्ञेय की भूल निकल जाएगी।

३४०

युगलजी साहब भिंड शिविर के समय बहुत प्रसन्न हुए। पर मेरा ज्ञेय नहीं है तो आत्मा ज्ञेय हो जाएगा। विधि-निषेध कर कि "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता"।

३४१

"जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता", उसमें आया तो तो इन्द्रियज्ञान बंद हो गया, तो मोह चला गया। "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। पर को जानना भ्रांति है, ऐसा शास्त्र में लिखा है। करना तो तेरे स्वभाव में नहीं है, परंतु पर को जानना तेरे स्वभाव में नहीं है। सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है, चारित्र वृक्ष और केवलज्ञान फल है।

३४२

ध्येय हाथ में आये पश्चात ज्ञेय में भूल हो, तो ध्येय का स्वरूप धुँधला होता हुआ वह स्वरूप मिट जाता है और क्रम से निगोद में चला जाता है। थोड़े काल के बाद संस्कार छूट जाते हैं। अब पर का प्रतिभास उपयोग में होता है तब "जाननहार जानने में आता है" तो पूरा आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय सहित ज्ञेय होता है। पर्याय अकेली ज्ञेय नहीं होती, परिणामी अभेद आत्मा ज्ञेय होता है।

३४३

कहने का आशय यह है कि ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है इतना पक्ष आ जाए तो बस।

जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं। "जाननहार जानने में आता है" बस। ये दो ही वाक्य हैं। दो में सभी कुछ आ जाता है। मैं जाननहार हूँ, रागादि का करनेवाला नहीं। जैसे चक्षु देखनेवाले हैं वैसे "मैं जाननहार हूँ"। "मैं जाननहार हूँ करनेवाला नहीं"।

जिज्ञासा : इतना ज्यादा आसान हो तो सभी ही प्राप्त कर लें ?!

समाधान : सभी प्राप्त कर लें ऐसा ही है। परंतु उसे वह बात समझ में आनी चाहिए न? मैं राग का करनेवाला नहीं हूँ। करनेवाला ना हो तो कोई बात नहीं परंतु राग जानने में तो आता है न? (यह शल्य पड़ा है)।

३४४

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा विकल्प वह व्यवहार ब्रह्मचर्य है। "जाननहार जानने में आता है" वह निश्चय ब्रह्मचर्य है। उसके फल में स्वाभाविक शील की प्राप्ति होती है।

३४५

मैं जो ये सब बातें करता हूँ वे सभी बातें शास्त्र में हैं। "अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय" पुस्तक में तीन भागों में १३ व्याख्यान हैं। आत्मा पर का करनेवाला नहीं है, परिणाम का ज्ञाता नहीं है।

"जाननहार जानने में आता है" सब कुछ उसमें है। ध्येय, ध्यान और ध्याता तीनों बातें हैं। यह ऐसी पलों में कुदरती बाहर आ गया है। तीन तीन आचार्य और एक गुरुदेव! इसप्रकार चार चार इकठ्ठे होकर एक अज्ञानी को समझाते हैं।

३४६

अपूर्व बात : अनुभव के लिए आसान में आसान उपाय। "**आत्मा एव** जानने में आता है"। उसमें बारह अंग का सार है।

३४७

पर को जानना स्वभाव मानता है पूरा विश्व। अब जहाँ पर को जानना स्वभाव मानता हो जीव, तो उसे पर को जानने का निषेध भी नहीं आता। तो फिर उसका उपयोग अभिमुख होकर मुझे जाननहार जानने में आता है, ऐसे विचार में भी नहीं आता तो अनुभव तो कहाँ से आए!! जिसे विचार में आएगा उसे अनुभव में आने की शक्यता है। परंतु मैं पर को जानता हूँ ऐसी हठ पर चढ़ा हुआ आत्मा उसका निषेध नहीं कर सकता। कि वास्तव में पर मुझे जानने में नहीं आता। इन्द्रियज्ञान आत्मा का ज्ञान ही नहीं है। वह...

वास्तव में ज्ञान ही नहीं है, ज्ञेय है।

३४८

ठंडी-गरम अवस्था को भावेन्द्रिय जानती है, ज्ञान नहीं जानता। राग को कौन जानता है? राग बुद्धि का विषय है। उसे मन जानता है। तुझे उसका जाननेवाला बताया, अब" मैं जानता हूँ" वह शल्य निकाल दे न? "जाननहार जानने में आता है" उसमें आजा ना!!!

३४९

जिज्ञासा : "मैं जाननहार हूँ" ऐसा विकल्प वह ध्येय का पक्ष है। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा विकल्प वह ज्ञेय का पक्ष है। दोनों विकल्प अनुभूति के काल में छूटते हैं; अथवा अनुभूति होने से पहले कोई क्रम पड़ता है?

समाधान : दोनों विकल्प एक समय में छूटते हैं। दृष्टि का विषय ध्येय और ज्ञेय एक समय में होता है। सोमवार को ध्येय हो, मंगलवार को ज्ञेय हो ऐसा नहीं है। एक समय में है। अनुभव के काल में कालभेद नहीं है।

३५०

सभी विचारों को छोड़कर एक जाननहार हूँ और "जाननहार जानने में आता है", फिर जरा आगे बढ़कर कि वास्तव में पर जानने में नहीं आता। "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता", ऐसा लेना। निश्चय से "जाननहार जानने में आता है" और व्यवहार से पर जानने में आता है, वैसा मत लेना। 'जाननहार हूँ' उसमें 'करनेवाला नहीं हूँ' ऐसा समाहित हो गया। "जाननहार जानने में आता है" तो पर जानने में आता नहीं, ऐसा आ गया। ऐसे भेदज्ञान के विचार से जीव को अनुभव हो सकता है।

३५१

मैं पर को नहीं जानता यह निषेधरूप बाड़ है। तब अंदर "जाननहार जानने में आता है" ऐसी खेती होगी।

३५२

जानने के अलावा आत्मा का कोई धर्म नहीं है। आत्मा का धर्म कहो या ज्ञान का धर्म कहो। जितना कहना हो उतना कहो! किन्तु मुझे तो अकेला "जाननहार जानने में आता है"। बस उसका मनन, चिंतन करके उसकी श्रद्धा दृढ़ करना। जब श्रद्धा पराकाष्ठा पर पहुंचेगी तब इन्द्रियज्ञान का व्यापार बंद हो जाएगा। नया अंदर का ज्ञान उघड़ जाएगा और बाहर का ज्ञान बंद हो जाएगा।

"पर जानने में नहीं आता जाननहार जानने में आता है"। पर जानने में नहीं आता, ऐसा किसलिए कहा? पर को मैं जानता हूँ ऐसी मिथ्या श्रद्धा है। जानने में आता है

तुझे ज्ञान अथवा जानने में आता है ज्ञायक, अथवा जानने में आता है स्वज्ञेय; और तू मान रहा है कि पर जानने में आता है तो ज्ञान भी सच्चा नहीं और श्रद्धा भी सच्ची नहीं है।

३५३

"जाननहार जानने में आता है" महा रहस्य का उद्घाटन है।

३५४

एक द्रव्यरूप (ध्येयरूप) सामान्य और दूसरा ज्ञेयरूप सामान्य। ये जो **दूसरे प्रकार का सामान्य है उसमें निरंतर जाननहार जानने में आता है। और पर को कभी जानने गया ही नहीं। इसलिए उसमें कभी इन्द्रियज्ञान नहीं होता।**

३५५

जिज्ञासा : जाननहार कब जानने में आवे?

समाधान : पर्याय, पर्याय को सर्वथा भूल जाये और द्रव्य को देखे तब जाननहार जानने में आये।

३५६

स्वपरप्रकाशक के काल में भी "जाननहार जानने में आता है"। "जाननहार जानने में आता है" उससे अधिक क्या चाहिए।

३५७

भगवान की वाणी में आया है। महाविदेहक्षेत्र की वाणी इंपोर्टेड है। महाविदेह के संतों की कही हुई बात है। पर को जानने से इन्द्रियज्ञान और राग-द्वेष-मोह उत्पन्न होता है इसलिए वास्तव में पर जानने में नहीं आता, परंतु जाननहार जानने में आता है उसमें आत्मशांति होती है।

३५८

प्रतिसमय ज्ञान प्रगट होता है। प्रतिसमय ज्ञान का अज्ञान करता है, तो अज्ञानी बन जाता है। उसे 'राग का कर्ता हूँ' ऐसा प्रतिभासित होता है। अब दूसरा जीव अपनी योग्यता से और गुरु निमित्त हों, गुरु ऐसा कहते हैं कि तुझे जाननहार जानने में आता है। तू तो अनादि-अनंत शुद्ध है, तू अशुद्ध हुआ नहीं है। अशुद्धता परिणाम का धर्म है, अशुद्धता तेरा धर्म कहाँ है?

आबाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा तो जानने में आ रहा है। तेरे ज्ञान में क्या जानने में आता है वह हम जानते हैं। कि : तेरे ज्ञान में स्व-पर का प्रतिभास होने से जाननहार ही जानने में आ रहा है।

ऐसी बात पात्र जीव सुनता है तब विषय को पलटता है। मुझे तो जाननहार जानने में आता है। बस! वहाँ से उपयोग ने विषय को बदल दिया। अनादि से उपयोग

राग के प्रतिभास को अपना मानता था, अब! राग भिन्न है, ज्ञान भिन्न है। राग उड़कर यहाँ नहीं आता। परंतु राग मेरे में होता है तो ज्ञान का अज्ञान कर दिया। अर्थात् मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्ररूप विशेष अपेक्षा से परिणम जाता है। सामान्य अपेक्षा से अकर्ता होने पर भी विशेष अपेक्षा से कर्ता होता है, वह उसका अज्ञान है।

वही आत्मा अपनी योग्यता से गुरुगम से स्व-पर के प्रतिभास में से स्व के प्रतिभास का आविर्भाव करता है तो ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव होता है कि : मुझे पर जानने में नहीं आता- उसमें इन्द्रियज्ञान क्षणभर रुक जाता है।

"मुझे तो जाननहार जानने में आता है" तो उसे अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होकर आत्मदर्शन प्रगट हो जाता है। यह एक विधि है और यह शास्त्रों में लिखी हुई है।

३५९

आबाल-गोपाल सभी को "जाननहार जानने में आता है।" अनुभूतिस्वरूप आत्मा जानने में आता है। अतः अनादि-अनंत लागू पड़ता है। "जाननहार जानने में आता है" वह तादात्म्य है।

३६०

कुर्सी जानने में आई तो ज्ञान कुर्सी का हो गया? तो ज्ञान जड़ हो गया। ज्ञान कुर्सी का नहीं है, इसलिए ज्ञान में कुर्सी जानने में नहीं आती। ज्ञान आत्मा का है इसलिए ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। ज्ञान शास्त्र का नहीं है इसलिए ज्ञान में शास्त्र जानने में नहीं आते। यदि ज्ञान शास्त्र का हो तो ज्ञान में शास्त्र जनाये! परंतु ज्ञान तो आत्मा का है इसलिए ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। ज्ञान राग का नहीं है इसलिए ज्ञान में राग जानने में नहीं आता। "जाननहार जानने में आता है", बस दूसरा कुछ नहीं है।

बहुत विस्तार करने जाओ तो निश्चय से खिसक जाते हैं। और थोड़ा विस्तार करने से व्यवहार मर्यादारूप रहता है। ज्यादा विस्तार करे तो वह व्यवहार मर्यादा के बाहर जाता है। दूसरों को समझाने के लिए दूर किसलिए जाना?!

३६१

ऊपर से पूरा पैराग्राफ ध्येय का सिद्ध किया पश्चात ध्यान कैसे हो- यह प्रश्न था। अनुभव सहज है। श्रद्धा का जब बल आता है तब परिणाम आत्माभिमुख हो जाता है। **श्रद्धा का ऐसा बल आता है कि परिणाम मेरे से भिन्न है। इसलिए मैं परिणाम का कर्ता नहीं हूँ। दूसरी बात, श्रद्धा का ऐसा बल आता है कि परिणाम जानने में ही नहीं आते। तब "जाननहार जानने में आ जाता है"। तब सहजपने "जाननहार जानने में आ जाता है।" जाननहार हो जाता है। परिणाम को मैं नहीं जानता तब वास्तविक जाननहार होता है। "जाननहार जानने में आता है" वह प्रश्न मुद्दे का था।**

३६२

इन्द्रियज्ञान तो बंध का कारण है, अशुचि है। जीव की यह और इतनी भूल कि मैं पर को जानता हूँ। वह संसार है। "पर को जानता ही नहीं, जाननहार जानने में आता है"। पहले थोड़ा (निषेध), फिर अंदर से विधि-निषेध का जोरदार बल आता है, विकल्प टूट जाता है, और अनुभव होता है।

३६३

जिस समय स्व-पर दो का प्रतिभास है तब जरा सी भूल करता है। स्व का प्रतिभास होता है उस तरफ लापरवाह रहता है। "जाननहार जानने में आते हुए भी" उसका निषेध करता है स्वयं खुद ही। और जो वास्तव में भिन्न हैं; रागादि, देहादि उनके प्रतिभास के काल में उसका उपयोग पर के ऊपर जाता है। उपयोग सभी को स्वच्छ प्रगट होता है। जो प्रतिभास होता है रागादि देहादि का, उसमें मेरेपने की कल्पना करता है। कल्पना करते ही ज्ञान का अज्ञान हो गया। इतनी जरा सी भूल में अनंतकाल गया। अब इतनी जरा सी भूल कैसे टले? बाहर की मेहनत किए बिना...जो प्रगट होता हुआ उपयोग है, उसमें अनंतकाल से परज्ञेय जानने में आते हैं वह अनंत दुःख और अनंत संसार का कारण है।

३६४

अब जीव का काल पकता है तब तेरे ज्ञान में तेरा "जाननहार आत्मा जानने में आता है", पर जानने में नहीं आता। जगत में तेरा कोई ज्ञेय ही नहीं है।

३६५

स्वपरप्रकाशक का अर्थ स्व-पर का जानना हो तो दोनों का लक्ष होना चाहिए। परंतु स्व-पर दोनों का लक्ष तो नहीं है, तो स्व-पर दोनों को नहीं जानता, अतः स्व-पर को जानता है वह बात रहती नहीं। विधि-निषेध करे कि पर को नहीं जानता, "जाननहार जानने में आता है", विषय भेद से दो भेद पड़ जाते हैं।

३६६

जिज्ञासा : पाँच इन्द्रिय के विषय को कैसे जीतना?

समाधान : पाँच इन्द्रिय पर को प्रसिद्ध करती हैं, तब मैं पर को जानता ही नहीं। इन्द्रियज्ञान जानता है ऐसा भी नहीं लेना। मुझे तो "जाननहार जानने में आता है" प्रतिसमय। बाल-गोपाल सभी को अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा प्रतिसमय जानने में आता है।

ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास होता है। परंतु उसकी दृष्टि पर के ऊपर है, इसलिए उसे "जाननहार जानने में आता है", ऐसा भासित नहीं होता और सम्यग्दृष्टि को

"जाननहार जानने में आता है" तो सम्यक् प्रकार से अनुभव होता है।

३६७

सुख का समुद्र ---> जाननहार जानने में आता है।

पाप का समुद्र ---> पर जानने में आता है।

अज्ञान को करता है ऐसा ना लिखकर; "अज्ञानरूप ज्ञान परिणाम को करता होने से".....ज्ञान की गर्दन मरोड़ दी और ज्ञान का अज्ञानत्व कर दिया। प्रगट तो ज्ञान होता था! उसमें तन्मयरूप से तो आत्मा जानने में आ रहा था.....और उसके साथ राग भी प्रतिभासित होता था।

राग को मैं करता हूँ; राग जानने में आता है; वह राग मेरा है; राग मेरे ज्ञान का ज्ञेय है -- इसतरह जानने के काल में स्व को भूलता है और ज्ञान का अज्ञान कर देता है।

"जाननहार जानने में आता है" और राग भिन्न जानने में आता है - ऐसा भेदज्ञान नहीं करता। ज्ञान में राग कहाँ आ गया है? तेरे ज्ञान में राग नहीं आता, और राग को ज्ञान जानता भी नहीं....और ज्ञान में राग ज्ञात भी नहीं होता क्योंकि वह भिन्न है। ज्ञान में ज्ञायक ज्ञात होता है और ज्ञान ज्ञायक को जानता भी है।

३६८

"ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक ज्ञात होता है", यह वीतराग देव का फरमान है। ज्ञेय तो जानने में नहीं आते, ज्ञेयाकार ज्ञान जानने में नहीं आता; परंतु "जाननहार जानने में आता है"।

३६९

अनादि से परावलंबी और दीन-हीन हो गया है। जिसमें सुख नहीं है उसमें सुख मानता है। जिसमें ज्ञान नहीं है उसमें ज्ञान मानता है। सुख और ज्ञान तो यहाँ भरा है। सुख और ज्ञान बाहर नहीं है। परपदार्थ में ज्ञान भी नहीं है और सुख भी नहीं है। इसलिए परपदार्थ का अवलंबन लेनेवाले को ज्ञान भी नहीं होता, और सुख भी नहीं होता।

भगवान आत्मा में सुख भरा हुआ है, और ज्ञान भी भरा हुआ है और अंतर्मुख होकर अवलंबन लेने पर सुख प्रगट होता है। आत्मा का सुख, हों! "हाँ" सुख में सेल्सटैक्स वगैरह कुछ लगता नहीं। जो आत्मा में नहीं है उसे आत्मा करता नहीं। पुण्य को नहीं करता और धर्म को भी नहीं करता।

३७०

जिज्ञासा : प्रतिभास के समय भेदज्ञान नहीं होता तो क्या करना?

समाधान : स्वपर के प्रतिभास के समय "जाननहार जानने में आता है" और पर जानने में नहीं आता ऐसा निषेध करना। मन में शक्ति है स्वपर का विचार

करने की। कि : अकर्ता हूँ और कर्ता नहीं हूँ; ऐसे भेदज्ञान का अभ्यास करते करते उपयोग अभेद की तरफ ढल जाएगा। अभेद के आश्रयपूर्वक पर का निषेध करता है ना? सविकल्प मानसिक ज्ञान में निर्णय होता है।

३७१

खूब अच्छी प्रकार से, अंतर से समझकर आगम से, युक्ति से, तर्क से, गहरे अनुमान ज्ञान से.... उथला अनुमान ज्ञान इसमें काम नहीं लगता। तब उसका काल भी पका है, **और वह जोरदार निषेध करता है कि: मुझे पर जानने में नहीं आता, "जाननहार जानने में आता है।" तब बहिर्मुखी ज्ञान का क्षय नहीं होता परंतु इन्द्रियज्ञान का व्यापार अटक जाता है।** अथवा ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव होता है। तब एक अंतर्मुखी ज्ञान आत्मा के दर्शन कर लेता है। इन्द्रियज्ञान के साथ एकता टूटती है। परिणति रह जाती है।

अब इन्द्रियज्ञान पर को जानता हुआ परिणमता है, परंतु मैं पर को जानता हूँ ये शल्य निकल गया। अज्ञान दशा में पर को इन्द्रियज्ञान जानता था, मानता था कि: "मैं पर को जानता हूँ" जानता है दूसरा, मानता है "मैं पर को जानता हूँ," वहाँ इन्द्रियज्ञान में उसने एकता की थी। भेदज्ञान से एकता तोड़कर अतीन्द्रियज्ञान आत्मा के साथ अहम् करके अनुभव करता है तब इन्द्रियज्ञान का क्षय नहीं होता, उपशम नहीं होता परंतु लब्धरूप से काम करता है। पाँच इन्द्रिय के विषय को जानता है वह भले ही जाने, परंतु मैं नहीं जानता। "मैं तो जाननहार को जानता हूँ।" **ऐसे एक ज्ञान में दो विभाग पड़ जाते हैं। जब तक केवलज्ञान नहीं होता तब तक (खंडज्ञान) चालू रहता है।**

३७२

प्रतिसमय कोई भी प्रसंग हो तब वहाँ तुम्हें प्रयोग करना है कि "जाननहार जानने में आता है।" ऐसा होता है वह सिद्धांत है। वह प्रयोग है। इन्द्रियज्ञान जब प्रगट हो तब ऐसा आना चाहिए कि" मैं पर को जानता नहीं हूँ"। ऐसा प्रतिसमय का पुरुषार्थ है।

३७३

पुण्य को करना अशक्य है। होता है उसे करना क्या? परिणाम होने योग्य होता है और "जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले ले ना! फिर पुण्य का त्याग करना और... धर्म का ग्रहण करना वगैरह त्याग ग्रहण से शून्य है आत्मा। हो उसे करना क्या? ना हो उसे करना क्या? एक सत्ता के दो टुकड़े मत कर। (कर्ता और अकर्ता ऐसे विभाग नहीं हैं।) दो होकर एक परिणाम को करे ऐसा भी है नहीं।

नरसिंह मेहता कहते हैं,

"मैं करूँ, मैं करूँ, वही अज्ञानता, शकट का भार जैसे श्वान ताने;

सृष्टि मंडान है सर्व एनी पेरे, कोई योगी योगीश्वरा जाने"।

योगी अर्थात् धर्मात्मा और योगीश्वरा अर्थात् परमात्मा जानते हैं। बाकी कोई नहीं जानता।

"नयन नी आलसे रे न निरख्या हरि ने जरी।" जानने में तो आता है प्रतिसमय आत्मा, परंतु "यह जाननहार जानने में आता है" ऐसा नहीं लगता। ये सब जानने में आते हैं ऐसा जानकर अनादि से इन्द्रियज्ञान प्रगट कर रहा है।

३७४

इन्द्रियज्ञान में ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं तब "जाननहार जानने में आता है।"

३७५

जाननहार को जानना छोड़कर अन्य सभी जानने से क्या फायदा!

३७६

पुरुषार्थ स्वयं को करना पड़ता है। लक्ष्मी पुरुषार्थ से नहीं मिलती। पैसा भी पुण्य से मिलता है। वरना पूरी जिंदगी गधा मजदूरी करे तो भी १००० रुपये इकट्ठे नहीं होते। उसे ऐसा लगता है कि ऐसे करूँ तो पुरुषार्थ है, ऐसा लगता है; परंतु पर में पुरुषार्थ नहीं होता।

पुरुषार्थ स्वभाव में होता है। स्वभाव के सन्मुख होकर स्वभाव का अनुभव करना वह पुरुषार्थ है। राग करना, काम करना, यह मिल चलाना, वह पुरुषार्थ नहीं है। वह तो अज्ञान है। कर्ताबुद्धि का भूत चिपक गया है। होते हैं स्वयं जड़ चेतन के परिणाम, "होने योग्य होता है, जाननहार जानने में आता है।" यह स्थिति है परंतु उसे स्वीकार नहीं आता।

३७७

जिज्ञासा : राग और ज्ञान एकसाथ होते हैं, आभास भी उसी समय होता है, तो राग का लक्ष छूटे किस प्रकार?

समाधान : छोड़े तो छूटे। ज्ञायक का लक्ष करे तो छूटे। राग की पकड़ रखनी है, छोड़ना नहीं है और कैसे छूटे पूछता है?!

राग मेरे में होता है वह ध्येय की भूल। और राग को जानता हूँ वह ज्ञेय की भूल। अनुभव नहीं होगा। "जाननहार जानने में आता है मुझे राग जानने में नहीं आता"। राग है और जानने में ना आए? कहाँ होता है परंतु? इस तरफ आजा ना! यहाँ (आत्मा में) आकर देखता हूँ तो राग मेरे में नहीं है। परमात्मा में राग होता है?

जिज्ञासा : परमात्मा में भक्ति का राग होता है कि नहीं?

समाधान : निज परमात्मा में राग जरा भी नहीं होता। बाहर में योग्यता के

अनुसार साधक को आता है, उसे भिन्न जानता है। अभिन्न नहीं जानता; उसे अपना स्वरूप ना जानकर विभाव जानता है।

३७८

अज्ञानी का लक्ष पर के ऊपर होने से राग से तादात्म्य मानता है इसलिए उसे "जाननहार जानने में आता है" ऐसी बुद्धि खिसक गई है।

३७९

"जाननहार जानने में आता है" वह बात याद करना, कराना वह भी बाधारूप है।

३८०

"ज्ञान भिन्न राग भिन्न।" सोगानीजी ने एक व्याख्यान सुना और रात को ध्यान में बैठ गए। सोनगढ़ की समिति के रूम में सुबह ४-५ बजे तो सम्यग्दर्शन लेकर खड़े हो गए। एक रात्रि में संसार का अंत। पूर्व के जोरदार संस्कार थे, परंतु वर्तमान पुरुषार्थ ही काम करता है।

जो उपयोग बहिर्मुख है उस बहिर्मुख उपयोग को बंद कर कि पर को जानता नहीं हूँ। "जाननहार ही जानने में आता है।" इसप्रकार बहिर्मुख उपयोग बंद होता है और "जाननहार जानने में आता है" वह उपयोग नया प्रगट होता है। पर को जानने के निषेध में (बहिर्मुख उपयोग) बंद हो जाता है। वैक्यूम ब्रेक लगता है हों! मोटर का वैक्यूम ब्रेक लगता है तो एक इंच भी मोटर चलती नहीं। कोई लापरवाही से चल रहा हो तो भी बच जाता है।

वैसे ही मैं "पर को नहीं जानता" उसमें वैक्यूम ब्रेक लगता है। इन्द्रियज्ञान का अभाव नहीं होता। परंतु इन्द्रियज्ञान रुक जाता है। पर के संबंधवाला व्यापार रुक जाता है और "जाननहार जानने में आता है"। अंदर में से आया वह अंतर्मुख अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होकर आत्मा का अनुभव करता है। और भव का अंत आ जाता है।

३८१

इस काल में साक्षात् अनुभव होता है, प्रत्यक्ष अनुभव होता है, परोक्ष की बात नहीं है। शक्कर जीभ पर रखे फिर किसी से पूछता है या नहीं पूछता? यह शक्कर खट्टी है? यह शक्कर कड़वी है? वह पूछता ही नहीं। वैसे ही अंतर्दृष्टि द्वारा चैतन्य परमात्मा को देखा कि "जाननहार वह ही मैं हूँ", करनेवाला मैं नहीं और "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"; ऐसी कर्तृत्वबुद्धि छोड़कर, और पर का ज्ञेयत्व छोड़कर, आत्मा ही ज्ञाता, आत्मा ही ज्ञेय, आत्मा ही ज्ञान, ऐसे अभेदपने अनुभव करता है तो भव का अंत आ जाता है।

३८२

"जाननहार जानने में आता है" यह मूल वस्तु है और नींव की बात है।

३८३

तुम भयंकर से भयंकर भ्रमणा में हो कि पर जानने में आता है। परंतु "जाननहार जानने में आता है" ऐसा तुम्हारा स्वरूप है।

३८४

ज्ञेय के प्रतिभास के समय "जाननहार ही जानने में आता है" बस। ज्ञेय के प्रतिभास के समय ज्ञेय जानने में नहीं आता। स्व और पर दोनों ज्ञेय होते हैं। उसका नाम ज्ञेयाकार ज्ञान है। जब ज्ञान अंदर में झुकता है तब जगत के पदार्थ अवस्तु हैं। निर्मल पर्याय का भेद अवस्तु है।

३८५

जानता है इन्द्रियज्ञान और मानता है मैं जानता हूँ वह भूल हो गई। ये (परपदार्थ) ज्ञेय नहीं है, ज्ञेय यहाँ (अंदर में) ही है। जानता है वह ज्ञान और जानने में आता है वह ज्ञेय। जानने में क्या आता है? अपना आत्मा। शरीर जानने में नहीं आता, फैक्ट्री जानने में नहीं आती, स्पेयर पार्ट्स जानने में नहीं आते, "जाननहार जानने में आता है"। जाननहार और जानने में आता है इन दोनों का विकल्प टूट गया तो अनुभव हो गया। फैक्ट्री में ऐसा अनुभव हो सकता है।

३८६

इन्द्रियज्ञान बढ़े तो सम्यग्दर्शन हो जाए ऐसा नहीं है। तो तो हिरण और मेंढक को सम्यग्दर्शन होगा ही नहीं। इन्द्रियज्ञान के साथ कोई संबंध नहीं है सम्यग्दर्शन का। आहाहा! तो तो विद्वानों का तो इन्द्रियज्ञान बहुत बढ़ता है। किसान को, तिर्यञ्च को इन्द्रियज्ञान न बढ़े तो भी उन्हें सम्यग्दर्शन होता है। समवशरण में गाय, भैंस, हाथी को सम्यग्दर्शन होता है।

अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव भी जब इन्द्रियज्ञान से भिन्न आत्मा को जानता है तब उसे अंदर में "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" भले ही पर का प्रतिभास हो! परंतु उसका लक्ष पर के ऊपर से छूट जाता है। उसे अंतरलक्ष होता है तब साक्षात् परमात्मा के दर्शन होते हैं। तब से ही मोक्षमार्ग शुरू होता है। इसलिए इन्द्रियज्ञान को जीतना बहुत ऊँचे में ऊँची बात है।

३८७

सत्य वाणी सुनने को मिलनी मुश्किल है। पुण्य से सच्ची वाणी सुनने को मिलती है। चक्रवर्ती से भी अधिक पुण्य बढ़ जाए तो सुनने को मिलती है। (किन्तु) उसमें पुरुषार्थ

नहीं है। पुरुषार्थ तो ज्ञान भिन्न और राग भिन्न में है।

राग के सद्भाव के समय राग उपयोग में नहीं है तो फिर ज्ञायक से तो भिन्न हो ही ना?! उसमें तुझे क्या शंका पड़ती है! ऐसा जब ज्ञान में जानता है कि ज्ञान में स्व जानने में आता है, और पर जानने में आता है, उसमें स्व क्या! और पर क्या! उसका भेदज्ञान करना है।

"जाननहार जानने में आता है" ज्ञायक वही मैं हूँ। यह राग और देहादि जानने में आते हैं वे मेरे भाव नहीं हैं, पराये भाव हैं। ऐसा जानकर भेदज्ञान करके, पर्याय के ऊपर से लक्ष छोड़कर, द्रव्य के ऊपर लक्ष आता है तो आत्मा का साक्षात् अनुभव इस काल में होता है।

३८८

मुझे हेयरूप से, ज्ञेयरूप से अन्य कुछ जानने में नहीं आता "जाननहार ही जानने में आता है"।

३८९

राग के सद्भाव में राग का लक्ष छोड़कर आत्मा का अनुभव हो सकता है। राग का अभाव करने की जरूरत नहीं है। राग रह गया परंतु राग का राग छूट गया। पुत्र रह गया और पुत्र की ममता छूट गई। अरे! एक बार तेरे ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में आता है "जाननहार जानने में आता है" उसके पक्ष में तो आजा। 'ना' करेगा तो 'ना' आएगी और 'हाँ' करेगा तो हालत होगी। 'ना' के दो प्रकार हैं (१) नरक (२) निगोद। सब लोग समझ लेना।

ज्ञान पर को किस नय से जानता है और किस नय से नहीं जानता ऐसा उसमें है ही नहीं। (स्वभाव से) जानता ही नहीं। वह तो जाननहार को ही जानता है। प्रतिसमय "जाननहार हूँ" अर्थात् ज्ञायक हूँ; "जाननहार जानने में आता है" अर्थात् ज्ञायक जानने में आता है, शास्त्र में है, जाननहार अर्थात् ध्रुव परमात्मा ज्ञायक और वह वर्तमान वर्तते ज्ञान में ज्ञात हो रहा है। ज्ञात होगा ऐसा नहीं लिखा, ज्ञात हो रहा है। इस तरफ उपयोग करे तो जरूर ज्ञात हो जाए। पर को मैं जानता हूँ वह शल्य है।

आहा! उपचार के कथन मार डालते हैं जीव को। फिर शास्त्र में आता है कि "सर्व को जानता है वह आत्मा को जानता है, और आत्मा को जानता है वह सर्व को जानता है" (प्र.सार गाथा-४८); सर्व को जाननेवाले आत्मा को मैं जानता हूँ यह बड़ी भूल है। उसे जानता ही नहीं, फिर उसका जाननेवाला कहाँ रहा?

निमित्त का प्रतिभास देखकर (व्यवहार से) कथन आता है, निमित्त के प्रतिभास के समय उपादान जानने में आता है। निमित्त के प्रतिभास के समय निमित्त जानने में नहीं

आता। निमित्त उपादान की घोषणा करता है या निमित्त निमित्त की घोषणा करता है? क्या है उसमें !?

३९०

आत्मा स्व को जानना छोड़कर पहले थोड़े समय पर को जान ले, फिर अंदर आत्मा को जानने जाए ऐसा है नहीं। आत्मा को छोड़कर पर को जानने जाता है वह ज्ञान आत्मा का है नहीं। वह ज्ञेय का ज्ञान होने से ज्ञेय ही है। ये पाँच इन्द्रिय हैं, भावमन है उसकी बात है। द्रव्येन्द्रिय तो जड़ है। भावेन्द्रिय ज्ञेय को जानने जाये तो भले ही जाये परंतु आत्मा अपने को जानना नहीं छोड़ता और मुझे पर जानने में आता है उसका स्वीकार नहीं करता। यह जीव स्वयं ज्ञान का अज्ञानत्व और स्वयं ज्ञान का ज्ञानत्व करता है।

"जाननहार जानने में आते हुए भी..." आहा! ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास होते हुए भी... पूज्य गुरुदेव ने कहा कि आत्मा का उपयोग पर को जानने जाता ही नहीं। तो फिर पर की तरफ उपयोग लगाने की बात ही कहाँ रही। ऐसी अनेक-अनेक बातें कर गए हैं।

३९१

"जाननहार ही जानने में आता है" राग जानने में नहीं आता। क्यों जानने में नहीं आता? उसमें नहीं है इसलिए जानने में नहीं आता। उसमें जो है वह सब जानने में आता है।

३९२

जाननहार जानता है ---> प्रचलित बात।

जाननहार जानने में आता है ---> अप्रचलित बात।

३९३

ज्ञान की पर्याय सामान्य विशेष स्वरूप है। सामान्य ज्ञान का अभाव नहीं होता। तिरोभाव रहता है। सामान्य ज्ञान कि जिस ज्ञान में आबाल-गोपाल सभी को जाननहार जानने में आता है, परंतु वह जानता नहीं। उस अपेक्षा से सामान्य ज्ञान का तिरोभाव किया और विशेष ज्ञान का आविर्भाव हुआ। मुझे पर जानने में आता है...मुझे यह जानने में आता है...! परंतु मुझे सामान्य ज्ञान में सामान्य (त्रिकाली) जानने में आता है, ज्ञायक जानने में आता है।

द्रव्यार्थिकनय की आँख खोलकर देखता हूँ तो सामान्य ज्ञान में परोक्षरूप से आत्मा जानने में आता है। अब जब "जाननहार ही जानने में आता है" वास्तव में पर जानने में नहीं आता ऐसे स्वभाव के पक्ष में आये जीव तो अंतर्मुहूर्त में अथवा अधिक से

अधिक ६ मास में अनुभव हो।

३९४

"जाननहार जानने में आता है" ---> अंतर्मुख होने की और रहने की यह विधि है।

३९५

अपनी बुद्धि से डाले हुए शुद्धनय के अनुसार बोध होनेमात्र से, बस "जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आ गया"। इतने में काम हो गया। अरे! भव का अंत आ गया। एक पैसे का खर्च नहीं।

३९६

उपयोग में राग नहीं है, "सामान्य उपयोग में उपयोग है इतने में तो शुद्धोपयोग हो जाता है"। "वर्तमान वर्तते ज्ञान में जाननहार जानने में आता है"। राग मुझे ज्ञात ही नहीं होता, क्योंकि राग उसमें नहीं है। ज्ञायक में तो राग नहीं है परंतु उपयोग में भी राग नहीं है।

३९७

कुंदामृत कहान स्वाध्याय हॉल में लिखा है कि "जाननहार जानने में आता है"। जाननहार एक आत्मा वह जानने में आता है। परंतु ऐसा नहीं लिखा कि स्व-पर दो जानने में आते हैं। जाननहार एक ज्ञायकभाव और वह जानने में आता है। जानने में आयेगा नहीं। वर्तमान में सभी को बाल-गोपाल सभी को....

तो ये राग-द्वेष के परिणाम और शरीर, देव-गुरु-शास्त्र तुझे जानने में नहीं आते? कि: "ना", मुझे जानने में नहीं आते। सम्यग्दर्शन से पहले? कि: "हाँ"। सम्यग्दर्शन से पहले।

सत् का सहारा ले तो सत् की प्राप्ति हो जाएगी। सम्यग्दर्शन होने से पहले "मैं पर को जानता हूँ"...."मैं पर को जानता हूँ" तो सम्यक्त्व के सन्मुख भी नहीं है। इन्द्रियज्ञान पर को जानता है वह सौ प्रतिशत सत्य बात, और आत्मा का ज्ञान पर को नहीं जानता और जाननहार को जानता है वह शत प्रतिशत सत्य बात है। कथंचित् नहीं है, सर्वथा सत्य बात है। क्योंकि ज्ञान और ज्ञायक अभेद है।

क्योंकि आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान वह आत्मा ही है। "जिसका जो होता है वह वही होता है"।

३९८

बहिर्मुख ज्ञान का जब तक निषेध नहीं आता तब तक अंतर्मुख ज्ञान का पक्ष भी नहीं आता। (यदि) अंतर्मुख ज्ञान का पक्ष आ जाए कि "जाननहार जानने में आता है,

वास्तव में पर जानने में नहीं आता" ऐसे विधि-निषेध के विकल्प में यदि आएगा तो इन्द्रियज्ञान क्रम क्रम से शिथिल हो जाएगा। उसे जो विपरीत मान्यता सहारा देती थी वह खिसक जाती है और सच्ची मान्यता हो जाती है कि : "मैं पर को जानता ही नहीं, मुझे तो जाननहार ही जानने में आता है"।

जाननहार ज्ञात होने से पहले, जाननहार ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष होने से पहले उसे सविकल्प भेदज्ञान होता है। सविकल्प भेदज्ञान में पर को जानने का निषेध करता है। अर्थात् उसमें ज्ञान का निषेध नहीं आता, उसमें तो बहिर्मुख इन्द्रियज्ञान का निषेध आता है।

३९९

राग भिन्नपने जानने में आता है परंतु अभिन्नपने जानने में नहीं आता। दुःख भिन्नरूप से ज्ञात हो ऐसा ज्ञान प्रगट होता है। परंतु दुःख अभिन्नपने जनाय ऐसा ज्ञान प्रगट नहीं होता। ऐसा एक सामान्य ज्ञान है कि : "उपयोग में उपयोग है।" उपयोग में क्रोधादि दुःख है ही नहीं। उसका नाम सामान्य ज्ञान कहा जाता है। सामान्य ज्ञान का पक्ष कहो या निश्चय ज्ञान का...! कि : "मुझे जाननहार जानने में आता है"। तो शुद्धोपयोग होकर साक्षात् अनुभव होता है।

४००

"जाननहार जानने में आता है" यह सद्भूत व्यवहार हुआ - दो हुए; भेद हुआ तो छट्ठे में आ गया। पश्चात "जाननहार वही मैं हूँ", "जो चेदा सो अहम्" तो सातवें में आ गया।

४०१

गुरुदेव फरमाते थे कि : अच्छे घर का प्रस्ताव आये तो हर्षपूर्वक स्वीकार कर लेना, मना मत करना। वैसे ही यह परमात्मा का प्रस्ताव है। तेरा आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न प्रगट परमात्मा है और प्रत्यक्ष है। तेरी देर करने से ही देर है। तू हाँ कर इतनी ही देर है कि: "जाननहार जानने में आता है"। उसकी "हाँ" कर। बाकी सब हो जायेगा। तेरा हाँ करने का काम है।

४०२

ज्ञेयों के सद्भाव में या... ज्ञेयाकार के सद्भाव में... "जाननहार जानने में आता है"।

४०३

"जाननहार जानने में आता है" उसे मुख्य रखकर शास्त्र पढ़ना।

४०४

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा कहो या "उपयोग में उपयोग है" ऐसा कहो

(एकार्थ हैं)।

४०५

लक्षण तो लक्ष्य से अभेद है वह कभी अलग नहीं पड़ता। आत्मा भी अपने स्थान से छूटकर उसे जानने नहीं जाता। पाँच इन्द्रियों के विषयों को जानने नहीं जाता। अपने को ही जाना करता है। निरंतर आत्मा अपने को ही जाना करता है। २४ घंटे, वर्तमान में! परंतु उसे श्रद्धा में नहीं आता कि: "जाननहार जानने में आ रहा है"।

उपयोग प्रगट होता है प्रतिसमय वह आत्मा को जानता है। और यदि आत्मा को प्रसिद्ध ना करे तो लक्षण और लक्ष्य दोनों का नाश हो जाये, इसलिए ऐसा फंक्शन चालू ही है। जानता है और जानने में आता है। निरंतर आबाल-गोपाल सभी को, छोटे बड़े सभी को, एकेंद्रीय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक सभी को, सदाकाल में- तो वर्तमान में रात्रि भी आ जाती है या नहीं? अनुभूतिस्वरूप लिखा है। इन्द्रियज्ञानस्वरूप या रागस्वरूप ऐसा नहीं लिखा।

ज्ञानस्वरूप आत्मा सदाकाल अनुभव में आता है। "जाने और जनाय", जानता है और जानने में आता है। ज्ञान न जाने और आत्मा जानने में न आये ऐसा किसी भी काल में नहीं होता, होनेवाला नहीं है, माने न माने वह उसकी स्वतंत्रता है।

४०६

इन्द्रियज्ञान पर को जानता है, अब वैसा भी नहीं लेना। मुझे तो प्रतिसमय "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा लेना।

४०७

मूल में भूल इतनी ही है कि.....जाननहार जानने में आते हुए भी उसे अंदर से अनंतकाल से ऐसा शल्य हो गया है कि : "मैं पर को जानता हूँ।" पर को जानता हूँ वह अनंत दुःख और अनंत संसार का कारण है। **पर को जानता हूँ वह भ्रान्ति है; व्यवहार नहीं है। उसमें स्वपरप्रकाशक का शल्य घुसाता है इसलिए यह बात बैठती नहीं है। वह.....प्रमाणज्ञान का वचन है। प्रमाण व्यवहारक्रिया नहीं रोक सकता। निश्चय से स्व को जानता है, व्यवहार से पर को जानता है, सीधी बात है... अरे! सीधी बात नहीं है, विपरीत बात है।**

४०८

यह बोल इसलिए स्पष्ट किया है। मुझे जानने में नहीं आयेगा!! जानने में नहीं आयेगा ऐसा नहीं। वह तो जानने में आये बिना रहेगा ही नहीं। "मैं इसे (पर को) जानता हूँ वह लक्ष छोड़ दे!" "आत्मा जानने में आता है, जाननहार ही जानने में आता है"। वह जाननहार ज्ञात होने पर लोकालोक उसमें ज्ञात हो जाता है- प्रतिबिंबित होता है उसे

निकाल नहीं सकते। प्रतिभास निकाला नहीं जा सकता।

क्योंकि प्रतिबिंब और प्रतिभास ज्ञान की अवस्था है, ज्ञेय की अवस्था नहीं है। आत्मा की सापेक्षता से वह ज्ञानाकार है और वही पर्याय ज्ञेय की सापेक्षता से ज्ञेयाकार है।

४०९

प्रगट होते हुए उपयोग में उपयोग आ जाता है कि... मुझे "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। बहिर्मुख उपयोग होता था इसलिए इन्द्रियज्ञान होता था, वह ज्ञान का दोष है। ज्ञान तो आत्मा का है और वह आत्मा की तरफ मुड़ जाता है कि: मुझे तो मेरे ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है"। ऐसा भेदज्ञान करे तो आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है।

४१०

"जाननहार जानने में आता है", यह प्रयोग करने से पहले 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी क्षेत्र विशुद्धि हो जानी चाहिए। फिर सविकल्पदशा में "जाननहार ही जानने में आता है", ऐसा प्रयोग करने से उपयोग अंदर की तरफ आएगा ही।

४११

गुरुदेव ज्ञान में आते थे और गुरुदेव ही ज्ञान में उपयोगात्मक आवें; और आत्मा का अनुभव हो जाए, ऐसा तीन काल में बननेवाला नहीं है। उपकारी गुरु को जो प्रसिद्ध करता है इन्द्रियज्ञान... उसको मर्यादा में लाना! कि... गुरुदेव आप मुझे जानने में नहीं आते हैं। "मुझे जाननहार जानने में आता है"। **गुरुदेव को प्रसिद्ध करना वह ज्ञान की मर्यादा नहीं है। आत्मा को प्रसिद्ध करना वह ज्ञान की मर्यादा है।**

४१२

केवली भगवान व्यवहारनय से सर्व को, स्व-पर दोनों को जानते हैं। और निश्चय से स्व को जानते हैं। जानते हैं वह देखकर उपचार करने में आता है। जो ऐसा मानेगा कि ज्ञान पर को जानता है, उसे तीन काल में सम्यग्दर्शन होनेवाला नहीं है। छह द्रव्य हैं अवश्य, भगवान ने कहे हैं, और वे प्रतिभासित भी होते हैं, परंतु उन्हें जानता नहीं है। प्रतिभास के समय उन्हें जानता हूँ तो अज्ञान। उन्हें नहीं जानता "जाननहार जानने में आता है" तो उसी समय अनुभूति होगी और आनंद आयेगा।

४१३

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है" उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय लेना या त्रिकाली ही लेना?

समाधान : त्रिकाली आत्मा ही जानने में आता है ऐसा लेना। 'जाननहार' एक शब्द है। 'जानने में आता है' वह दूसरा शब्द है। "जाननहार जानने में आता है" ऐसे हैं ना

दो शब्द। तो क्या जानने में आता है? त्रिकाली सामान्य ज्ञायकभाव है वह जानने में आता है। अब किसमें जानने में आता है? ज्ञान में। तो ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है"। अभेद होकर अनुभव हो तो उसका नाम ध्येय पूर्वक ज्ञेय हो गया। फिर "जाननहार" और "जानने में आता है" वह अलग नहीं रहता। कथंचित् अभेद होता है। एकाकार उसमें लीन हो जाता है। तल्लीन हो जाता है।

जाननहार ---> त्रिकाली द्रव्य और वह मुझे पर्याय में जानने में आता है। "उपयोग में उपयोग है"। जो है वह जानने में आता है। मेरे ज्ञान में क्रोध तो जानने में आता नहीं, ज्ञान में दूसरी वस्तु हो तो जानने में आये ना?

ऐसा कहते हैं कि... ज्ञान का उत्पाद होता है। समय-समय ज्ञान प्रगट होता है। यहाँ टर्निंग पोइंट है "उपयोग में उपयोग है"। अर्थात् कि जो है वह...जानने में आता है, क्रोध ज्ञायक में तो नहीं है, परंतु उपयोग में भी नहीं है। ऐसा अविपरीत ज्ञान जब उद्भव होता है तब शुद्धोपयोग के सिवाय दूसरा कुछ नहीं करता।

४१४

महाविदेहक्षेत्र में से आए हुए पुरुष की यह बात है। सामने साइकिल पड़ी थी। (गुरु ने) फिर तीन बार पूछा- जानने में क्या आता है? तीनों बार कहा, **साइकल।** यह प्रत्यक्ष जानने में आता है उसकी मना कैसे करनी? किसके लक्ष से मना करनी?! परंतु मुझे यह पर जानने में आ रहा है। और ज्ञानी कहते हैं कि तुझे "जाननहार जानने में आ रहा है"। यह **साइकल** जानने में आती है वह भ्रान्ति थी। बंध अधिकार में अध्यवसान कहा। और २७१ कलश में भ्रान्ति कहा है। ये सभी मंत्र हैं।

४१५

जिज्ञासा : ज्ञानी का लक्षण क्या, ज्ञानी की पहचान क्या?

समाधान : "जाननहार जानने में आता है" वह ज्ञानी का लक्षण है। वह ज्ञानी का लक्षण बांधा। किसी भी हालत में...सर्व हालतों में "जाननहार जानने में आता है"। सविकल्पदशा में "जाननहार जानने में आता है"। शास्त्र लिखते हैं तब "जाननहार जानने में आता है।" राग निमित्त है। राग के सद्भाव में भी "जाननहार जानने में आता है।" राग के अभाव में भी "जाननहार जानने में आता है"। उसमें तो जाननहार जानने में आता है। निर्विकल्प ध्यान में राग का अभाव है तब क्या जानने में आता है? "जाननहार जानने में आता है"।

पाँच महाव्रत जानने में आते हों तब क्या जानने में आता है? जाननहार जानने में आता है। एक समय कम बत्ती नहीं होता। उपयोग और परिणति दोनों में अविच्छिन्न धारा से "जाननहार जानने में आता है।" ये ज्ञानी का लक्षण है।

४१६

मोक्षमार्ग प्रकाशक में कहा है कि: "मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ" उसमें निरपेक्ष कहा। ज्ञेय का संबंध तोड़ दिया। जो समयसार की १५वीं गाथा में ज्ञेयलुब्ध ज्ञान है उसे इन्द्रियज्ञान कहा। जिसे इन्द्रियज्ञान से अलग ज्ञान प्रगट होता है उसे इन्द्रियज्ञान (से भिन्न) अतीन्द्रियज्ञान का पता चलता है, कि...यह तो "जाननहार जानने में आ रहा है"। जानने में आ रहा है; उसे जाने तो आत्मज्ञान कहलाता है। जब उसे जाने तब।

४१७

जो सामान्य का विशेष है वह आत्मा की पर्याय है। विशेष अर्थात् पर्याय-परिणाम। वह विशेष किसका है? आत्मा का है। इसलिए उस विशेष में आत्मा ही जानने में आता है। परंतु उस विशेष में दूसरे का सामान्य ज्ञात नहीं होता। और दूसरे के विशेष भी ज्ञात नहीं होते। दूसरे के सामान्य और विशेष ज्ञात होते हैं वह ज्ञान मेरा नहीं है। जिस ज्ञान में आत्मा ज्ञात होता है वह ज्ञान मेरा है। उसमें अनुभव हो जाता है।

"जाननहार जानने में आता है" दूसरा कुछ जानने में नहीं आता। उसमें अनुभव होता है। यह अनुभव की गाथा है, हों!! आबाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आता है।

४१८

कहते हैं कि एक ऐसा स्वभाव प्रत्येक जीव को; प्रत्येक समय जैसे इन्द्रियज्ञान प्रगट होता है, राग भी प्रगट होता है, वैसे तीसरा अंश ज्ञान भी प्रगट होता है। सभी को सामान्य ज्ञान प्रगट होता है। इन्द्रियज्ञान प्रगट नहीं होता। परंतु सामान्य ज्ञान उपयोग लक्षण प्रगट होता है।

जो अनादि-अनंत अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव दोष से रहित है, सभी जीवों में ऐसा उपयोग होता है, सर्व अवस्था में होता है और सबको होता है।

किसी को ज्ञान का उपयोग प्रगट होवे और... किसी को ज्ञान का उपयोग प्रगट ना होवे ऐसा है नहीं। उपयोग तो प्रत्येक जीव को उत्पादरूप होता है। वह ज्ञान की क्रिया है। उस ज्ञान की क्रिया में वह ज्ञान जिसका है वह उसमें जानने में आता है। वह ज्ञान राग का नहीं है इसलिए राग जानने में नहीं आता और ज्ञायक जानने में आता है तो ज्ञान प्रगट होकर शाश्वत रहता है। ऐसा का ऐसा ज्ञान। आबाल-गोपाल सभी को सदाकाल अपना भगवान आत्मा अनुभव में आता है। लिखनेवाले को यह ख्याल है कि: मैं अज्ञानी अप्रतिबुद्ध जीव को उपदेश देता हूँ। तो ऐसा नहीं कहते कि राग भी जानने में आता है और कथंचित् तेरा आत्मा भी जानने में आता है।

तेरा ज्ञान ऐसा प्रगट होता है कि जिसमें राग जानने में नहीं आता और आत्मा

ज्ञात हुए बिना नहीं रहता। प्रतिसमय आत्मा जानने में आता है ऐसा कहते हैं। कहा न... भगवान आत्मा आबाल-गोपाल सभी को सदाकाल! अशुभ मुहूर्त में भी आत्मा ही जानने में आता है।

काली चौदस कहते हैं ना! दिवाली के पहले, तो उसमें अमावस का अँधकार होता है। उस अँधकार में भी एक प्रकाश की किरण प्रगट होती है, और उसमें परमात्मा जानने में आता है। प्रत्येक जीव को सामान्य ज्ञान उपयोग में आत्मा जानने में आता है। अब जब इन्द्रियज्ञान में पर जानने में आता है, तब उस ही समय ऐसा ज्ञान प्रगट होता है जिसमें आत्मा जानने में आता है। क्योंकि सारा ही ज्ञान यदि इन्द्रियरूप हो गया हो तो लक्षण का अभाव हो जाए। सारा ही ज्ञान, सामान्य अपेक्षा से इन्द्रियज्ञानरूप पराश्रित हो गया हो तो लक्षण का अभाव हो जाये।

दूसरा जो जड़ अचेतन है इन्द्रियज्ञान वह सर्वथा भिन्न है। राग तो अचेतन है, परंतु शास्त्रज्ञान अचेतन है। इसलिए उसके सद्भाव में भी! क्या कहा? राग अनादि का अज्ञानी को प्रगट होता है, और इन्द्रियज्ञान भी राग को जाननेवाला प्रगट होता है। ऐसे निमित्त के संयोग में उपादान में क्या होता है?

कहते हैं : उपादान में आत्मा जानने में आता है। क्षणिक उपादान- उपयोग वह स्वच्छ है। उसे अभी शुद्ध नहीं कहा जाता, किन्तु उसे स्वच्छ कहा जाता है। परंतु उस ज्ञान में आत्मा जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता। वैसे ज्ञान (इ. ज्ञान) और ज्ञान के बीच का भेदज्ञान करने पर उस ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है"। तब ऐसा आएगा कि "जाननहार ही जानने में आता है", पर जानने में नहीं आता। उसी समय निर्विकल्प ध्यान में अनुभव होता है।

सम्यग्दृष्टि जीवों को इस प्रकार अनुभव हुआ है, और तब इन्द्रियज्ञान रुक जाता है। क्षणभर भले वह उपयोग लब्ध होवे परंतु व्यापार क्षणभर रुक जाता है।

ऐसा कहते हैं कि तेरे ज्ञान में प्रत्येक समय तेरा भगवान आत्मा जानने में आता है। "ना" मत कर! "हाँ" कर। हाँ कर तो हालत होगी। "हाँ" करते ही किसी को अंतर्मुहूर्त में अनुभव होता है। किसी को टाइम लगता है, परंतु स्वीकार कर कि : **"जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता"। ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकांत भेदज्ञान परक है। यह भेदज्ञान का प्रकार है।**

आत्मा आत्मा को जानता है वैसे ही पर को जानता है वह अनेकांत है या नहीं? परंतु जहाँ ज्ञान पर को जानता ही नहीं तो फिर वहाँ ज्ञान कथंचित् पर को जानता है वह बात कहाँ है?! उसे जानता है इन्द्रियज्ञान और आरोप आया आत्मा के ऊपर कि : आत्मा उसे जानता है। १४ गुणस्थान, मार्गणास्थान को... कौन जानता है? आत्मा का लक्ष तो

आत्मा के ऊपर से छूटता नहीं और भेद का लक्ष होता नहीं। इसलिए बिना लक्ष का जानपना वह आत्मा का जानपना नहीं है। लक्षपूर्वक जानता है उसे आत्मा को जाना ऐसा कहने में आता है। आत्मा के ऊपर ही ज्ञान का लक्ष है। उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आत्मा का लक्ष छोड़कर पर को जानने रुकता है वह तो मिथ्याज्ञान है। वह अनंतकाल से प्रगट होता है।

सदाकाल "स्वयं ही", "ही" सम्यक् एकांत किया। स्वयं ही जानने में आता है और दूसरा जानने में नहीं आता। आहा! **इस ज्ञानप्रधान कथन में "ही" लगाया। दृष्टिप्रधान कथन में तो "ही" आता है, परंतु ज्ञानप्रधान कथन में 'ही' आता है तब ही सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। दोनों "ही" में एक "ही" सम्यग्दर्शन का उत्पादक और दूसरा "ही" सम्यग्ज्ञान (अर्थात् स्याद्वाद) का उत्पादक- ऐसा नहीं है।**

परंतु यह तो ज्ञान का स्याद्वाद है उसमें "ही" कहाँ लगाया? उसका नाम अनेकांत है कि: "जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता", उस... "ही" में सम्यग्ज्ञान का जन्म होता है। मेरे में परिणाममात्र का प्रमत्त-अप्रमत्त का अभाव है। मैं ऐसा ज्ञायकभाव हूँ। ज्ञायकभाव है वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। यह..."ही" सम्यग्दर्शन का उत्पादक है। उसमें सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। इस 'ही' में सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। और दोनों साथ ही प्रगट होते हैं। कहने में कथन में देर लगती है। ऐसी सूक्ष्म चर्चायें जगत को हजम नहीं होती! क्या करें!!

४१९

"ज्ञान में जाननहार जानने में आ रहा है", ऐसा स्वीकार करना उसका नाम संवर धर्म है।

४२०

ज्ञान में स्वभाव से ही "जाननहार जानने में आता है।" यह निश्चयनय की बात नहीं है। स्वाभाविक बात है।

४२१

"पर्याय होने योग्य होती है"।

(१) उसमें पर्याय का काल भी पलटता नहीं और पर्याय का भाव भी पलटता नहीं।

(२) और आत्मा पर्याय को करता नहीं है।

(३) वैसे ही पर्याय ज्ञान में ज्ञात हुऐ बिना रहती नहीं।

(४) और आत्मा पर्याय को जानता नहीं।

(५) "वह तो जाननहार जानने में आता है" उसे जानता है। अर्थात्

"जाननहार को ही जानता है।"

४२२

जिज्ञासा : ज्ञेयाकार ज्ञान में जाननहार किस प्रकार से जानने में आता है?

समाधान : क्योंकि, ज्ञेयाकार ज्ञान ज्ञान से ही हुआ है। इसलिए ज्ञेयाकार अवस्था में, ज्ञान दिखता है। और ज्ञान जिससे हुआ है वह ही ज्ञान में जानने में आता है। अर्थात् "जाननहार ही जानने में आता है"।

४२३

भेदज्ञान नहीं है इसलिए राग रहित भगवान आत्मा में लीनता नहीं होती, इसलिए स्थिर नहीं होता। राग से विकल्प से भिन्न हूँ, ऐसा श्रद्धान हो तो ठहरने की सामर्थ्य आये।

बहुत लोग तो ध्यान में बैठ जाते हैं; दो दो, चार चार घंटे बाद कहते हैं लीन हुआ नहीं जाता। क्यों लीन नहीं हुआ जाता? तू आत्मा को जानने का प्रयोग नहीं करता। कि: प्रथम "जाननहार जानने में आता है।" उसके बदले तू ध्यान में चढ़ गया है। जिसमें उपयोग को जोड़ना है, लीन करना है, एकाग्र करना है, उसको तो तू जानता नहीं। तू तो ध्यान में चढ़ गया है। ध्येय के स्पष्ट ज्ञान बिना ध्यान अर्थात् चारित्र उदय नहीं होता।

४२४

जिज्ञासा : जानने में आता है आत्मा! तो उस ही ज्ञान को आत्मज्ञान ना कहा जाए?

समाधान : जो ज्ञान आत्मा को जाने उसे आत्मज्ञान कहते हैं।

यह "जाननहार वह ही मैं हूँ" "ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता। सभी को बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा अनुभव में आते हुए भी पर के साथ एकत्वबुद्धि होने से अज्ञान खड़ा होता है।" इसलिए "जाननहार वही मैं हूँ" ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता। अर्थात् जानने में आता है...परंतु यह "जाननहार जानने में आता है" ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता। जानता नहीं है ना जाननहार को? यह "जाननहार जानने में आता है" ऐसा कहाँ स्वीकार करता है!! **आत्मा जानने में आता है और आत्मज्ञान नहीं होता: क्योंकि लक्ष नहीं है वहाँ।**

४२५

"जाननहार जानने में आता है" वह स्वभाव है और स्वभाव के लक्ष से शुद्धोपयोग प्रगट होता है।

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा पढ़ना। "जाननहार जानने में आता है" अर्थात् कि अनुभव में आता है, अर्थात् ज्ञात हो रहा है। जो जानने में आता है वह मैं हूँ। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा फुटनोट में लिख लेना। "जाननहार जानने में आता है

वह मैं हूँ"। इसमें जानता है और जनाता है, इन दोनों के बीच का अंतर है जिसका स्पष्टीकरण देवलाली में आया था।

४२६

चलते-फिरते, खाते-पीते, दूसरों के साथ बात करते हों तब, "जाननहार जानने में आता है।" यह... निरंतरता छूटती नहीं।

४२७

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा समयसार में आया ना? २०० वर्ष पहले भावार्थकर्ता ने लिखा १७, १८ गाथा में। यह किसी की बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह अनुभव करने के लिए महामंत्र है।

४२८

पुत्र भी जानने में आता है और जाननहार भी जानने में आता है, ऐसा रखो ना? "जाननहार ही जानने में आता है" और पुत्र जानने में नहीं आता। यह अनुभव की रीत है। ना मत करना; हाँ करना। गुरुदेव कहते थे, हाँ करेगा न तो हालत होगी। अर्थात् अनुभव होगा। मुझे मेरा आत्मा जानने में नहीं आता!! ज्ञानी को जानने में आता है! रहने दे न! तू ज्ञानवान है। ज्ञानवान को ज्ञानी कहा जाता है।

४२९

१७, १८ गाथा के भावार्थ में पहले तो यह...जाननेवाला अनुभव में आता है..."सो मैं हूँ" जो "जाननहार सो मैं हूँ।" वह बात आयी कि नहीं इसमें? वही बात है इसमें। "जाननहार जानने में आता है" स्पष्ट लिखा है इसमें। यह अनादि का प्रवाह है। "जाननहार ही जानने में आ रहा है" यह अनादि का प्रवाह है। "जाननहार जानने में आता है" यह अनादि का मूल मंत्र है। जैसे नमस्कार मंत्र अनादि का है वैसे यह प्रवाह अनादि का है।

ऋषभदेव भगवान से महावीर भगवान पर्यंत सभी ज्ञानियों का यह मंत्र है, अनादि है। किसी व्यक्ति की बात नहीं है।

४३०

भेदज्ञान ग्राही है वह शाक का लोलुपी नहीं है, सब्जी की गृद्धता नहीं है। यह तो विवेक किया कि: अरे! इसमें नमक है। यह सब्जी अलग और नमक अलग। इस प्रकार...! ज्ञेय संबंधी ज्ञान अलग और आत्मा का ज्ञान अलग। क्या कहा? ज्ञेय तुम्हारे ज्ञान में जानने में आते हैं, ये...ज्ञेय है, ये...ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव हुआ।

अब जो मोह सहित का तुमने ज्ञान का अनुभव किया, राग से सहित ज्ञान का

अनुभव किया, अब भेदज्ञान करे कि: ज्ञेय ज्ञात नहीं होते मुझे तो मेरा आत्मा जानने में आता है ऐसा भेदज्ञान किया। इसप्रकार नजर (बाह्य) ज्ञेय के ऊपर है, और उपयोग वहाँ से छूट जाता है। अरे! मुझे तो "जाननहार जानने में आ रहा है", वहाँ मात्र ज्ञान का स्वाद आया। उसमें संबंधवाला जो ज्ञान अर्थात् अज्ञान था, वह अब आत्मा के संबंधवाला ज्ञान प्रगट होता है। तब राग रहित, मोह रहित अकेले ज्ञान का स्वाद आता है, उसमें आनंद का स्वाद आता है, ऐसा बताते हैं।

४३१

मकान ज्ञात होता है तो भी "ज्ञान जानने में आता है" और "ज्ञेय जानने में आता है तो भी ज्ञान जानने में आता है"। ₹ १०० की नोट ज्ञात होती है तो भी ज्ञान जानने में आता है। ज्ञान ही निश्चित करता है ना? ज्ञान ही जानने में आता है, इसे पकड़कर रखो तुम। "जाननहार जानने में आता है," "जाननहार जानने में आता है" "जाननहार जानने में आता है" महामंत्र है। "जाननहार हूँ करनेवाला नहीं"। फिर दूसरा मंत्र क्या है? "जाननहार जानने में आता है" पर जानने में नहीं आता। बस चार बोल हैं, वाक्य दो बस। मोक्ष हो जाएगा। लिखना हो तो लिख लेना!!

४३२

"मैं जाननहार हूँ" और करनेवाला नहीं हूँ। "जाननहार जानने में आता है" और "वास्तव में पर ज्ञात नहीं होता"। इस मंत्र की साधना मन में करना, बोलना नहीं। किसी के साथ बातचीत नहीं करना। किसी के साथ बातचीत करोगे तो वह ऐसा कहेगा कि यह पागल हो गया है। यह तुम्हें जानने में नहीं आता? मंत्र की साधना प्राइवेट होती है। गुफा में होती है न? यह अंतर्मुख होने की कला है।

४३३

भगवान महावीर ने कहा, ऐसा सीमंधर भगवान की वाणी में भी आया। उसे संतों ने सुना और उनकी परंपरा में आया। भविष्य में भी वह आनेवाला है। "जाननहार जानने में आता है" वह स्थिति है। जैसे प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध करता है, कोई काल ऐसा नहीं आएगा कि प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध ना करे। क्योंकि वह वस्तु की स्थिति है।

४३४

जिस निमित्त के सद्भाव में "जाननहार जानने में आता है" उस ही निमित्त के अभाव में वह ही जानने में आता है, दूसरा नहीं।

४३५

"जाननहार को जानता हूँ" वह विकल्प है। "नहीं जानता जाननहार को" वह अनुभव है।

४३६

सम्यग्दर्शन होने के बाद अनंत समय नहीं लगता। ज्यादा में ज्यादा असंख्य समय में, और अधिक से अधिक पंद्रह भव में मुक्ति प्राप्त करता है। (सम्यग्दर्शन चालू हो तो...) उसमें लिमीट है। यह सारा ही चमत्कार "जाननहार जानने में आता है" उसका है।

"प्रभु मैं ज्ञायकरूप केवल जाननहारा रे"।

४३७

मैं निरंतर जाननहार को ही जानता हूँ उसमें कभी खंड नहीं पड़ता।

४३८

जिज्ञासा : अध्यवसान- महापाप से बचने का उपाय क्या?

समाधान : मैं पर को जानता ही नहीं, मात्र "जाननहार को ही जानता हूँ"; यह ही एकमात्र उपाय है।

४३९

"अब क्यों न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से"।

"जाननहार जानने में आता है" यह बात अनंतकाल से रह गई थी। जिसका ध्यान खिचेगा कि अरे! मुझे तो "जाननहार जानने में आता है" वह अवश्य अनुभव को प्राप्त करेगा।

४४०

कर्ताबुद्धि तो कदाचित् जाए सविकल्पदशा में; धारणा में से वह जाए; परंतु...पर को नहीं जानता, यह...धारणा में भी नहीं आता। मैं पर को जानता नहीं ना! "जाननहार जानने में आता है" यह...धारणा में भी नहीं आता। जीव विधि-निषेध में भी नहीं आते।

४४१

नव तत्त्व के नैमित्तिक परिणामों में अथवा नव तत्त्व रूप क्षणिक उपादान में बहुत काल से छुपी हुई आत्मज्योति। आत्मज्योति तो थी परंतु वह तिरोभूत-ढकी हुई थी।

जैसे अग्नि में सुवर्ण तपाने के लिए रखा हो, उसमें अनेक प्रकार के वर्ण होते हैं। उसमें से एकाकार सुवर्ण को बाहर निकालता है वैसे, वर्ण में छुपे हुए सुवर्ण को बाहर निकालता है। इसी रीति से नौ तत्त्वों में छुपी हुई आत्मज्योति को अंतर्मुख होकर...शुद्धनय से बाहर निकालकर..."जाननहार ही जानने में आता है", ध्रुव जानने में आता है; दूसरा कुछ जानने में नहीं आता। अकेला आत्मा ही जानने में आता है, दूसरा कुछ जानने में नहीं आता, इसप्रकार स्वप्रकाशक ही है।

४४२

समयसार गाथा १७, १८ में "जाननहार जानने में आता है" वह सरलता की पराकाष्ठा है।

पहले अनुभव करने के लिए पर को जानने का निषेध करना पड़ेगा कि मैं "पर को नहीं जानता"। **एक बार तुमने जाननहार को जान लिया फिर पर जानने में आये तो भी पर जानने में नहीं आएगा। ज्ञान ही जानने में आएगा। ज्ञान मुख्य हो गया; ज्ञेय गौण हो गए।** एक बार संबंध तोड़ दो तुम, कट ओफ कर दो; समाप्त।

एक बार हिस्सेदारी छूट गई फिर तुम्हारी दुकान पर वह आए तो! **आओ! आओ! पधारो!** एक चाय का कप पिला दो!! परंतु प्रथम हिस्सेदारी तोड़नी पड़ती है। एकत्वबुद्धि तोड़नी पड़ती है। ऐसे ही इस राग के साथ देह के साथ हिस्सेदारी करता है..यह मेरा..यह मेरा..यह पर मेरा..यह पर मेरा..! अब उसके बदले मेरा ज्ञान..मेरा ज्ञान..मेरा ज्ञान.."जाननहार जानने में आ रहा है पर जानने में नहीं आ रहा", वहाँ तो तुम्हें ज्ञेय से विमुख होकर आत्मा का अनुभव हो गया।

४४३

ऐसा कहते हैं कि, अनुभव होने के बाद प्रमाण ज्ञान हुआ। अब पर जानने में आता है तब ज्ञान जानने में आता है और स्व जानने में आता है तब भी ज्ञान जानने में आता है। ज्ञान ही प्रगट होता है फिर अज्ञान प्रगट नहीं होता। अज्ञान तो गया फिर ज्ञान ही रहता है। अज्ञान तो आता नहीं।

४४४

परंतु जब अज्ञान है तब भेदज्ञान करके पुरुषार्थ करना पड़ेगा। ज्ञान प्रगट करने के लिए पुरुषार्थ अनंत चाहिए। एक बार ज्ञान प्रगट हो गया, आत्मा का भान हो गया: "मैं तो जाननहार हूँ करनेवाला नहीं, जाननहार जानने में आता है"। फिर ट्रेन में बैठे हों या मोटर में बैठे हों, आहाहा! वृक्ष दिखते हों, परंतु वृक्ष नहीं दिखते मेरा ज्ञान दिखता है। ज्ञेय भिन्न और ज्ञान भिन्न कर दिया। एक ही बार का काम है, फिर अल्पकाल में मुक्ति होगी।

४४५

एक बार आत्मा को जान लो! एक पैसे का खर्च नहीं है। चौबीसों घंटे चाहे जब जान लो। यह मंत्र है, मंत्र। एकताबुद्धि टूटेगी, मोह गलेगा, मोह गलेगा तो राग कम होगा, कषाय घटने लगेगी, क्योंकि तुम आत्मा को याद करने लगे। आत्मा प्रसन्न हो गया। अरे!! आजतक तूने मुझे याद नहीं किया था परंतु आज याद किया न! जा, तुझे सब कुछ दे दूंगा।

तुम्हारी आत्मा अंदर प्रसन्न होगी। मुझे याद तो किया!? आज तक तो तुम

एकदम भूल गए थे। आहाहा! मैं जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं, "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। महामंत्र है बस।

४४६

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा जिसे आता है वह या तो समकिती ज्ञानी है और या तो सम्यक् सन्मुख है।

४४७

जाननहार जानने में आता है उसमें भव का पार नहीं है। परंतु "मैं जाननहार हूँ" उसमें भव का अंत आता है।

४४८

जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता, उसमें कोई पदार्थ कर्ता का कर्म नहीं होता और ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं बनता।

४४९

द्रव्य जानने में आता है तब ही पर्याय द्रव्य से अभेद होती है। पर जानने में आता है तो पर्याय द्रव्य से अभेद हो? यह नेपकिन जानने में आता है, इसका मुझे ज्ञान होता है तो ज्ञान नेपकिन हो गया। "जो जिसका होता है वह वह ही होता है"। तो ज्ञान कहाँ रहा? समाप्त हो गया।

ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है तब ज्ञान और ज्ञायक का भेद विलय को प्राप्त होकर अभेद की अनुभूति होती है, तब आनंद आता है। जाननहार तो है, परंतु 'जानने में आता है' तब अनुभव होता है। जानने में आता है उसका स्वीकार करना चाहिए ना!!

"जाननहार जानने में आ रहा है" यह उसे अंदर से आना चाहिए ना! अंदर में से कब आए? कि: पर को जानने का निषेध करे तब ना? यह मैन (main) वस्तु है।

४५०

जिज्ञासा : तुम कहते हो जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता, ऐसा किसलिए कहते हो?

समाधान : अरे! पर जानने में आता है वह तेरा शल्य है। यह...निकालने के लिए कहते हैं। इसलिए तेरा निश्चय ज्ञान प्रगट नहीं होता। वह अंदर में पर को जानता हूँ यह शल्य है इसलिए...!

इसलिए व्यवहार का निषेध निश्चय की प्राप्ति का उपाय है, ले! क्योंकि उसे शल्य है कि "मैं पर को जानता हूँ"। अरे! उसे कैसा शल्य घुस गया है कि वह निकलना भी मुश्किल है।

४५१

एक बार जीतूभाई आए, २ दिन रुके, यह मंत्र दिया। फिर बेंगलुरु गये। बहुत दिनों के बाद समाचार आया कि यह मंत्र तो बहुत अच्छा है। मुझे तो शांति दिखती है। शांति अनुभवाती है। आकुलता घट जाती है। प्रतिकूल संयोगों में आकुलता घटे ऐसा यह मंत्र है। मैं क्या करूँ? मैं तो ज्ञायक हूँ ना! मैं कोई करनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! होने योग्य हुआ करता है "मैं तो जाननहार हूँ", "जाननहार जानने में आता है" पर जानने में नहीं आता। एकदम सादी बात। संस्कृत नहीं, मागधी नहीं, कुछ यह...याद नहीं करना। चाहे जब, चाहे जहाँ चलते फिरते, उठते बैठते, लेटरिन में भी बोला जा सकता है। उसमें स्नान करने की जरूरत नहीं है। ऐसा यह भेदज्ञान का मंत्र है। यह भेदज्ञान है "जाननहार हूँ करनेवाला नहीं हूँ"। भेदज्ञान है कि कर्ता नहीं अकर्ता हूँ।

४५२

"जाननहार हूँ और जाननहार ही जानने में आता है" और देव-गुरु-शास्त्र जानने में आते ही नहीं, यह विवेक है।

४५३

उपयोग में उपयोग है बस, उपयोग में रागादि नहीं है। राग हो तो जानने में आए ना उपयोग में? उपयोग में तो आत्मा है, तो राग जानने में नहीं आता। एक बार राग को जानना बंद करके आत्मा को जानो। फिर राग जानने में आएगा तब भी राग नहीं जनायेगा, ज्ञान जानने में आएगा।

पहले राग जानने में आता है और राग का जानना बंद करके ज्ञान को जानो; फिर राग जानने में नहीं आएगा परंतु ज्ञान ही जानने में आया करेगा। पहले राग ज्ञात होता था; फिर अनुभव से ज्ञान ज्ञात हुआ करेगा। सभी ज्ञानी ऐसा कहते हैं "मैं तो ज्ञाता हूँ, कर्ता नहीं"। मुफ्त में तू, "मैं कर्ता हूँ" ऐसा मान बैठा है और दुःखी हो रहा है। दुःखी ही होएगा ना? कर्ताबुद्धि में दुःखी होता है। कर्ताबुद्धि में सुख नहीं है।

ऐसा करूँ...ऐसा करूँ...ऐसा करूँ...ऐसा करूँ ऐसी प्रवृत्तिमय पूरा दिन। इसके बाद यह करूँ....इसके बाद यह करूँ, इसके बाद यह करूँ...; करूँ...करूँ...करूँ आया!! जानना...जानना...जानना ...जानना नहीं आता! अब जानना जानना आने लगेगा। जानना... जानना (उसमें) पूरा पलटा हो जाएगा। हाँ! एक महीने में चमत्कार हो जाएगा। अधिक नहीं। १ महीने में तो चमत्कार हो जाएगा। तुम्हारा आत्मा पुकार करेगा। "जाननहार जानने में आ रहा है, पर जानने में नहीं आता"। यह मंत्र अच्छा है।

४५४

"जाननहार जानने में आ रहा है" उसमें श्रद्धा का गुण प्रगट होता है और चारित्र

का गुण भी प्रगट होता है। दोनों एकसाथ प्रगट होते हैं। जाननहार ही है हों! आहा! यह वस्तु का सहज स्वरूप है।

४५५

अपरिणामी को जानने पर परिणामी हो जाता है। अपरिणामी का ज्ञान होने के साथ ही परिणामी का ज्ञान हुआ। अपरिणामी को जानने पर अक्रम अनंत गुण जानने में आ गए और परिणामी को जानते ही अनंत पर्याय जना गई। क्योंकि परिणामी ज्ञेय हुआ है। अब जानना कुछ भी बाकी रहता नहीं। "जाननहार हूँ," बस एक!

"प्रभु! मैं ज्ञायकरूप केवल जाननहारा रे!" सार में सार बात तो मैं जाननहार हूँ। सबका सार इतना ही है। इस स्टीकर में पहली लाइन क्या है? "मैं जाननहार हूँ"। सिद्धशिला में क्या होता है? मैं जाननहार हूँ इसलिए जो जाननहार है वही जानने में आता है। सभी ज्ञानियों का एक मत है। फिर वे मुनिराज हों या पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक हों या चतुर्थ गुणस्थानवाला हो! "जाननहार जानने में आता है" तो करनेवाला गया। करने का पूरा बंद हो गया। और जाननहार जानने में आता है अर्थात् ज्ञायक जहाँ जानने में आया तो ध्येय पूर्वक ज्ञेय हो गया। ध्येय पूर्वक ज्ञेय की बात अपूर्व है। सहज स्थिति है। ध्येय के जोर से ज्ञेय हो जाता है। ज्ञेय बनाने का पुरुषार्थ नहीं है। ध्येय में ही पुरुषार्थ है।

४५६

"मैं जाननहार हूँ"और जाननहार ज्ञात हो रहा है" उसमें ही छह द्रव्यों की सिद्धि हो गई।

४५७

"जाननहार जानने में आ रहा है" इस मंत्र का जाप चालू रखना। अवश्य भेद छूट जाएगा। किसी दिन इस विचार में भी कोई ऐसी अपूर्वता भासित हो गई तो जाननहार अंतर्मुहूर्त में प्रत्यक्ष हो जाएगा।

४५८

मैं पर को जानता ही नहीं, पर मुझे ज्ञात ही नहीं होता; मैं जाननहार को ही जानता हूँ, मुझे जाननहार ही जानने में आता है यह गुण ही गुण है।

४५९

छद्मस्थ का उपयोग एकसाथ दो को नहीं जानता। पर को जानना बंद होता है तब स्व को जानता है। राग को जानता है और आत्मा को भी जानता है, ऐसा नहीं होता। फिर राग संबंधी ज्ञान को जानता है, और राग को जानता है वह उपचार है। वास्तव में तो "ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक को जानता है"। ज्ञान को जानता है वह भी भेद है।

"जाननहार जानने में आता है" यह बात टंकोत्कीर्ण है। "जाननहार जानने में आ

रहा है" हर समय। साधक सविकल्पदशा में वह तो स्व को जानते हुए पर को जानता है।

४६०

एक बार परपदार्थों को जानना बंद कर दे! "जाननहार जानने में आता है, दूसरा कुछ जानने में नहीं आता"। आहाहा! तो अतीन्द्रियज्ञान कर्ता का कर्म हो जाएगा। "जाननहार जानने में आ रहा है" उसमें आत्मज्ञान प्रगट होता है।

४६१

पर को, राग को जानने पर ज्ञान भी नहीं है और सुख भी नहीं है। तो ज्ञाताबुद्धि छूटे, और उसी समय उपयोग अंदर में गया।। क्योंकि पर को जानने पर, शास्त्र को जानने पर, ज्ञान भी नहीं है और सुख भी नहीं है ऐसा जाने तो उपयोग अभिमुख होता है। जाननहार को जानने पर ज्ञान और सुख है। क्योंकि जाननहार को जानने पर ज्ञान और सुख होता है। उसमें अपवाद नहीं है।

४६२

जाननहार कर्ता और जानने में आया वह कर्म ऐसा है, परंतु ऐसा नहीं है; उसमें अनुभव होता है।

४६३

श्रद्धा को सम्यक् करने के लिए ज्ञान में अस्ति-नास्ति अनेकांत ले। सौ टका जाननहार जानने में आता है, और सौ टका पर जानने में नहीं आता। ज्ञान पोषक ज्ञान अज्ञान हो जाता है और श्रद्धा पोषक ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान हो जाता है।

४६४

प्रवचनसार गाथा ११४ में, अनुभव में कहाँ अटकता है। अटक निकलकर अनुभव होवे इसके लिए यह गाथा हम विचारते हैं।

अब पूज्य गुरुदेव के उदय के बाद गुरुभक्त ऐसा तो नहीं कहते कि देह मेरा और राग मेरा। अंदर अभिप्राय में वह शल्य हो वह बात अलग है। परंतु भाषा तो बदल, कि मैं जाननहार हूँ; मैं ज्ञायक हूँ; मैं चैतन्य हूँ; मैं चेतनेवाला हूँ; मैं देखनेवाला जाननेवाला चैतन्य आत्मा हूँ।

परपदार्थ मुझे ज्ञात ही नहीं होते। मुझे जाननहार जानने में आता है। ऐसे परोक्ष ज्ञान में भी अभी तक जीव आया नहीं तो प्रत्यक्ष कहाँ से होगा? क्या कहा? फिर से!!

यह आत्मा का अनुभव करने की कला संत जाहिर करते हैं। यह...परद्रव्य है उसको मैं जानता हूँ उसका अभिप्राय मिथ्या है। उसका उपयोग तो परसन्मुख ही रह गया। अब तू इतना कर कि: परपदार्थ का जिस प्रकार से मैं कर्ता नहीं अकर्ता हूँ वैसे ही परपदार्थ का मैं ज्ञाता भी नहीं हूँ। भले ही प्रथम शुरुआत में कर्ताबुद्धि छोड़ने के लिए मैं

ज्ञाता हूँ ऐसा लिया, परंतु अब मैं पर का ज्ञाता हूँ, वह बात छोड़ दे। यह पाठ नं. २ की बात है। पर का जाननहार हूँ यह... छोड़ दे।

तब करना क्या? शिष्य गुरु से पूछता है... अब तू इतना कर कि "मुझे जाननहार जानने में आता है, जाननहार जानने में आता है; इतना ले! "जाननहार जानने में आता है" ऐसा तू ले तो तेरे ज्ञान में परोक्षरूप से ज्ञायक आ जाएगा। परोक्ष अनुभूति हो जाएगी। मुझे दूसरा कुछ जानने में नहीं आता; आहाहा! प्रतिमा के सामने खड़ा हूँ परंतु प्रतिमाजी मुझे जानने में आती नहीं। चैतन्य प्रतिमा ही जानने में आ रही है। यह... अरिहंत भगवान का विवेक है। अरिहंत भगवान ने कहा है कि तू मेरा लक्ष छोड़ और तू तेरा लक्ष कर।

४६५

"जाननहार हूँ और जाननहार ही जानने में आता है" तो मन में आत्मा आ गया। फिर ज्ञान में प्रत्यक्ष आत्मा हो जाता है। लौकिक में पहले सगाई होती है, फिर लग्न होता है। वैसे ही प्रथम अनुमान में आता है, फिर अनुभव में आता है।

४६६

घट का जाननेवाला कहने पर भी, जाननहार जाननहार को ही जानता है घट को नहीं जानता।

४६७

भेदज्ञान के मंत्र से धर्म होता है। पंच परमेष्ठी की भक्ति से कर्म होता है। मैं तो ज्ञाता हूँ; तो ज्ञान अंदर में जाननेवाले को जानने चला गया। कहते हैं... जाननहार जानने में आता है तो धर्म है। और परज्ञेय जानने में आते हैं तो कर्म है। चैतन्य प्रतिमा को देखे जाने तो धर्म हो गया। और ज्ञेय को देखे तो कर्म हो गया। धर्मी के आश्रय से धर्म होता है वह नियम और पर के आश्रय से कर्म होता है, बस दो ही बात हैं।

४६८

जाननहार जानने में आ रहा है ---> समकित।

जाननहार जनाया ही करता है ---> श्रेणी।

४६९

श्री समयसारजी गाथा-१३ "भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है"। अंतर्दृष्टि से देखें तो कोई नवतत्त्व दिखाई नहीं देते। अभेद में भेद नहीं दिखता, भेद नहीं है इसलिए भेद दिखाई नहीं देता। इसलिए नवतत्त्व अविद्यमान हैं। नवतत्त्व हैं ही नहीं ना!! आहा! जितना अस्तिरूप है उतना ही दिखता है। जितना दिखाई नहीं देता उसकी अस्ति नहीं है। भूतार्थनय से जितना दिखाई देता है उतनी ही अस्ति है। भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है। एक वाक्य में तो....!!

ज्ञायक ही जानने में आता है जाननहार ही जानने में आता है दूसरा कुछ जानने में नहीं आता। ज्ञान मुझे ही जानता है? कहते हैं, 'हाँ'। ज्ञान दूसरे को जानता है? कहते हैं, 'ना'। उस ज्ञान का नाम भूतार्थनय है। जो मुझे प्रसिद्ध करे वही शुद्धनय है। जो मुझे प्रसिद्ध ना करे वह शुद्धनय नहीं है।

४७०

विशेष को देखनेवाली आँख बिल्कुल बंद कर दे। खुली हुई द्रव्यार्थिक आँख के द्वारा देख! ऐसा कहते हैं भाई! गजब बात है। बहुत गहराई इसमें रही हुई है। बहुत गहरी बात है। उसको धीरज से, शांति से सुन! **पर को जानता हूँ, ऐसा जो पक्ष उसे छोड़कर तू "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसे पक्ष में तो आजा! पक्षातिक्रांत तो बाद में।**

४७१

"जाननहार जानने में आ रहा है" उसमें एक ही समय में शुद्धनय और अभेदनय दोनों आ जाते हैं।

४७२

जैनदर्शन में समय-समय का हिसाब है। सविकल्प व्यवहार को निश्चय का कारण कहा है ना? सविकल्प व्यवहार पूर्व में था ना? "ज्ञान से आत्मा जानने में आता है" ऐसा व्यवहार आया|!! "जाननहार जानने में आता है" ऐसा व्यवहार आया!! भेद आया ना? फिर अंदर चला गया तो उस व्यवहार से ऐसा हुआ ऐसा कहा जाता है।

परंतु व्यवहार से नहीं होता। वह तो भेद था। संसार खड़ा हो गया। **"जाननहार ही जानने में आता है" उसमें जाननहार जानने में नहीं आयेगा। जाननहार जानने में आता है यह भेद छूट जाए तब अनुभव होता है। "जाननहार जानने में आता है" उस परोक्ष ज्ञान को भूत नैगमनय में डाल दिया। वह परोक्ष ज्ञानरूप व्यवहार था उसे भूतनैगम में डाल दिया।** परोक्ष के बाद प्रत्यक्ष हुआ, उसमें अनुभव होगा। परोक्ष का व्यय होता है फिर प्रत्यक्ष का उत्पाद होता है। यह उत्पाद हुआ वह व्यय से नहीं है। उत्पाद उत्पाद से है। उपादान को निमित्त की अपेक्षा नहीं होती। उत्तर पर्याय उपादान, पूर्व पर्याय उपादान, उपादान अर्थात् सत्।

४७३

जाननहार जानने में आ रहा है वह तो भेद है, वह निकाल दे। "जाननहार वह ही मैं हूँ"। व्यवहार को उलंघे बिना निश्चय हाथ में नहीं आयेगा।

४७४

मुझे ज्ञेय जानने में नहीं आता, ज्ञेय सापेक्ष ज्ञान भी जानने में नहीं आता; अकेला "जाननहार जानने में आता है"। चाँदी की थाली में रोटी ज्ञात होती है? 'ना'। रोटी संबंधी

ज्ञान जानने में आता है? 'ना'। ज्ञायक संबंधी ज्ञान जानने में आता है? ' ना'। अकेला ज्ञायक-जाननहार जानने में आता है।

४७५

ज्ञातः जानने में आया, ज्ञात वह तो वह ही है। जो जानने में आया वह ही जानने में आता है। विषय पलटता नहीं है। निर्विकल्पध्यान में ज्ञायक जानने में आता है, और सविकल्प ज्ञान में प्रतिमा ज्ञात होती है ऐसा नहीं है। प्रतिमा ज्ञात होती है तब "जाननहार जानने में आता है"। इसलिए तो निर्जरा चालू है। यदि प्रतिमा जानने में आए तो ज्ञान का अज्ञान हो तो निर्जरा चालू न रहे।

४७६

समयसार शास्त्र की छट्ठी गाथा जानने में आती है? 'ना'। तो शब्दश्रुत जानने में आता है? 'ना'। शब्दश्रुत से सम्बन्धित ज्ञान जानने में आता है? 'ना'। तो आत्मा से संबंधित ज्ञान जानने में आता है? 'ना'।

शुद्धात्मा – ज्ञायक, **"जाननहार जानने में आता है" वह भी अभेद होकर जानने में आता है। पर्याय से आत्मा जानने में नहीं आता। श्रुतज्ञान से आत्मा जानने में नहीं आता। आत्मा आत्मा से जानने में आता है। भेद हो....परंतु भेद से आत्मा जानने में नहीं आता।**

४७७

"जाननहार हूँ" और "जाननहार जानने में आता है", तो ज्ञान ज्ञान में मिल गया। ज्ञायक ने पर्याय को अंदर खींच लिया, फिर ज्ञानपर्याय ज्ञायक समुद्र में मिल गई। इसप्रकार अनुभव में अटक थी वह निकल गई। क्या अटक थी? मैं पर को जानता हूँ वह अटक थी। आत्मा पर को प्रसिद्ध नहीं करता। इस गाथा में ज्ञानपर्याय के व्यवहार का निषेध कराया है।

४७८

साधक अवस्था में, ज्ञेयाकार अवस्था में हमें तो ज्ञायक जानने में आता है। परंतु हमें यह घड़ी स्पष्ट दिखाई देती है ना? वह....स्पष्ट नहीं है तेरा ज्ञान मैला है। घड़ी जानने में आती है वह तो अज्ञान है ही, परंतु.....घड़ी संबंधी ज्ञान जानने में आता है वह अज्ञान है। "जाननहार जानने में आता है"। दूसरा जानने में आता है ऐसा कहना व्यवहार है। व्यवहार अभूतार्थ है।

४७९

"जाननहार जानने में आता है और जाननहार को जानता हूँ" ऐसा भी अनुभव में रहता नहीं है। "मैं तो जाननहार हूँ"।

४८०

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक जानने में आता है, स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में ज्ञायक जानने में आता है। छट्ठा गुणस्थान हो या सातवाँ गुणस्थान हो, परंतु निरंतर "जाननहार जानने में आता है"। **लड़ाई में शांतिनाथ भगवान को चक्र जानने में आता है ना? वह तेरा चक्कर फिर गया है। उसे इन्द्रियज्ञान जानता है और जाननहार आत्मा तो जाननहार को जानता हुआ परिणमता है।**

४८१

"जाननहार जानने में आता है" उसमें अनुभव होता है। यह गुरुमंत्र है। "ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास!"

४८२

"जाननहार जानने में आता है पर जानने में नहीं आता" ऐसे सम्यक् एकांतपूर्वक अनेकांत होता है अर्थात् नय पूर्वक प्रमाण।

४८३

आत्मा पर को जानता है ऐसा कहा जाता है। परंतु आत्मा पर को नहीं जानता। अग्नि ने आज तक किसी लकड़ी को जलाया ही नहीं। आज तक पर को जानता ही नहीं था। परंतु वह तो "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा भूल जाता है, वह भ्रान्ति है। समझ में नहीं आता, इसलिए उछलता है। वीरजीभाई वकील कहते थे... लालूभाई! "जाननहार जानने में आ रहा है" हों! 'हाँ' "जाननहार जानने में आ रहा है", तुम सच्चे हो।

४८४

जिस समय "जाननहारा जानने में आता है" उसी समय ज्ञान भूल करता है कि जाननहार जानने में नहीं आता और एकांत पर जानने में आता है ऐसा मानता है।

४८५

आत्मा करनेवाला नहीं है इसलिए कर्तारूप से जानने में नहीं आता। आत्मा जाननहार है। 'ज्ञातः' इसमें लिखा है। आत्मा जाननहाररूप है, इसलिए जाननहाररूप से जानने में आता है। करनेवाला नहीं है इसलिए कर्तापने जानने में नहीं आता।

४८६

ज्ञातः, मैं ज्ञायकपने ज्ञात हुआ। "जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है"। ऐसा जानने में आये तो सर्व अवस्थाओं में "जाननहार ही जानने में आता है"। वह तो वही है। निर्विकल्प अवस्था में "जाननहार जानने में आता है", सविकल्पदशा में भी वही

जानने में आता है। पंच महाव्रत ज्ञात होते ही नहीं।

४८७

"मैं जाननहार हूँ" तो जाननहार जाने या कर्म को बांधे? जानता है, परंतु बांधना, छोड़ना करता नहीं। परिणाम चिंता करने के काबिल नहीं है। तो फिर फैक्ट्री अपनेआप चलती है? वे....जाते हैं तब चलती है ना? अरे! अपनेआप चलती है। आत्मा, फैक्ट्री को जानता नहीं तो फिर चलावे कहाँ से? वह तो "जाननहार जानने में आ रहा है" उसको जानता है। आबाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा ज्ञात हो रहा है।

४८८

प्रत्येक जीव को, प्रत्येक समय अभेदरूप से "जाननहार जानने में आता है"। ज्ञायक जानने में आता है"। बगैर पुरुषार्थ के जानने में आता है हों!! क्योंकि स्वभाव है। स्वभाव में पुरुषार्थ की जरूरत नहीं है, मात्र स्वीकार की जरूरत है।

४८९

अग्नि लकड़ी-उपले को जलाती है ऐसा कहा जाता है परंतु जलाती नहीं है। व्यवहारनय के जितने कथन होते हैं उन्हें असत्यार्थ जानकर उनका श्रद्धान छोड़ दे। एक द्रव्य दूसरे को नहीं करता, तो वह निश्चय या व्यवहार? "निश्चय"। निश्चय में करना नहीं है परंतु जानना है। "जाननहार जानने में आ रहा है" वह निश्चय है।

४९०

"मात्र ज्ञायक हूँ स्वीकार कर ले!! मैं तो ज्ञायक जाननहार हूँ"। यह कोई वस्तु मेरी नहीं है, परंतु उनका जाननेवाला भी नहीं हूँ। "जाननहार जानने में आता है" वह ले ले ना! अंतर्मुख हो जा न? अब तो आ ही जाए ऐसा है। पूज्य गुरुदेव के प्रताप से काम हो जाए ऐसी बात है।

४९१

सतत विचार करना "जाननहार जानने में आ रहा है" और पर जानने में नहीं आ रहा।

४९२

"जागता जीव" अर्थात् जानता हुआ जीव! वह तो मैं ही हूँ। इसलिए तो "जाननहार जानने में आता है"।

४९३

यह पदार्थ है उसे ज्ञेय कहा जाता है। ज्ञेय सापेक्ष ज्ञान को ज्ञेयाकार अवस्था कहा जाता है। ज्ञायक सापेक्ष ज्ञान को ज्ञेयाकार अवस्था कहते हैं। जगत के जीव किस प्रकार प्राप्त कर लें ऐसी करुणा से यह शास्त्र लिखे गए हैं। ऐसी ज्ञान की पर्याय को

ज्ञेयाकार कहने में आता है।

यह लकड़ी ज्ञेय है। उसका ज्ञान में प्रतिभास हुआ। ज्ञान स्वच्छ है ना? उसमें (पदार्थ में) प्रमेयत्व नाम का गुण है। यह प्रमाता है। ज्ञेय की अपेक्षा से ज्ञेयाकार ज्ञान। यह ज्ञान जब जानने में आता है तब "जाननहार जानने में आता है"। ज्ञेय जानने में नहीं आता, ज्ञेय सापेक्ष ज्ञान जानने में नहीं आता, ज्ञायक सापेक्ष ज्ञान जानने में नहीं आता। अकेला ज्ञायक जानने में आता है। अंदर में छूटने की विधि बताते हैं।

४९४

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा थोड़ी देर लेने पर उपयोग सूक्ष्म होते होते, सूक्ष्म त्रिकाली द्रव्य को पकड़ लेता है।

४९५

जिज्ञासा : "देखनहार जाननहार चैतन्य आत्मा हूँ", तो अभी तक क्यों प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हुआ!?

समाधान : परपदार्थ मुझे जानने में ही नहीं आते, मुझे "जाननहार जानने में आता है", ऐसे परोक्ष ज्ञान में भी अभी जीव आया नहीं। तो प्रत्यक्ष तो कहाँ से होवे!

क्या कहा? फिर से! यह आत्मा का अनुभव करने की कला संत जाहिर करते हैं। इन परद्रव्यों को मैं जानता हूँ ऐसा तेरा अभिप्राय मिथ्या है। उपयोग तो परसन्मुख ही रहा। जैसे परपदार्थ का कर्ता नहीं है, वैसे ज्ञाता भी नहीं है। अब ऐसा ले कि: "मुझे जाननहार जानने में आ रहा है" इतना ले तो बस काम हो जाएगा।

४९६

"जाननहार जानने में आता है" जिसे इस बात की कीमत लगेगी, उसे सम्यग्ज्ञान से लेकर केवलज्ञान की प्राप्ति होगी।

४९७

"जाननहार जानने में आता है" वह विकल्प नहीं है, स्वभाव है।

४९८

पहला पाठ सुबह को अकर्ता का था। अब दूसरे पाठ में आत्मा ज्ञाता है। परंतु स्व का ज्ञाता है और पर का ज्ञाता नहीं। अब शास्त्रों में स्वपरप्रकाशक की बात खूब ही आती है। स्वपरप्रकाशक का जन्म कैसे हुआ? और उसमें से रास्ता कैसे निकालना?! वह अब हमें सीखना है। स्वपरप्रकाशक तो आगम का वचन है। उसकी "ना" नहीं है। शिरोधार्य कर लेना, परंतु स्वपरप्रकाशक उत्पन्न कैसे हुआ? आत्मा आत्मा को जानता है वह निश्चय है। आत्मा पर को जानता है वह व्यवहार है।

यह व्यवहार क्यों खड़ा हुआ? उसके स्वभाव में है? यदि स्वभाव में हो तो छूटे

नहीं। तुम चाहे जितना पर को जानने का निषेध करो परंतु यदि स्वभाव हो तो छूटे नहीं। तब कहते हैं उसे कौन जानता है? साधक दशा में? साधक स्वयं शास्त्र लिखता पढ़ता है तब क्या होता है? कि: इन्द्रियज्ञान उसे जानता है। मैं उसे जानता ही नहीं। मेरा ज्ञान तो मुझे जानना छोड़ता ही नहीं।

यह... जब "जाननहार जानने में आता है" उसका जोर जब आएगा, तब "पर जानने में नहीं आता" ऐसा कामचलाऊ विधि-निषेध करना पड़ेगा। फिर लंबे समय तक विधि-निषेध में नहीं रुकना पड़ेगा। "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। परंतु पर का प्रतिभास देखकर ऐसा उपचार किया कि साधक का ज्ञान राग को जानता है। वह उपचार का कथन है।

४९९

जैनदर्शन में कर्ता की बात तो है ही नहीं। परंतु भेदज्ञान की ही बात है। भेदज्ञान में भी "जाननहार जानने में आता है" वह ही बात है।

५००

मैं निश्चय-व्यवहार कुछ लगाता ही नहीं। मैं तो स्वभाव से ही बात करता हूँ। यदि निश्चयनय से ज्ञान आत्मा को जाने तो व्यवहारनय से पर को जानता है ऐसा व्यवहार खड़ा हो जाएगा। निश्चयनय लगाए तो व्यवहार खड़ा होगा। "हाँ"। सामान्य मनुष्य को समझाने के लिए नय-निक्षेप-प्रमाण प्राथमिक साधन हैं। परंतु तुम स्वभाव की हद पर चले जाओ तो उसका विकल्प ही उत्पन्न नहीं होगा। **"हाँ"..! इतना विकल्प उत्पन्न होगा कि.. "जाननहार जानने में आता है" परंतु वह विकल्प तुरंत ही टूट जाएगा।**

परंतु निश्चय से ज्ञान आत्मा को जानता है तो प्रतिपक्ष व्यवहार खड़ा होता है या नहीं होता? होता ही है। क्योंकि निश्चयनय एकांत करे तो तो वह मिथ्यानय है। सापेक्षनय सम्यक् है। निश्चय हो वहाँ व्यवहार होता ही है। परंतु उससे आगे जाना है। नय से आत्मा का अनुभव नहीं होता। ज्ञान से आत्मा का अनुभव होता है।

५०१

सेटिका की गाथा में बहुत अच्छी बात आई है। ऊँचे में ऊँची बात, अंतिम में अंतिम बात। और पहले में पहली बात। कि: भाषा तो पलट। उसमें खड़िया की गाथा है। उसमें निश्चय-व्यवहार दोनों लिए हैं। फिर अंत में व्यवहार लिया है। उसमें भावार्थकर्ता ने भावार्थ किया.. कि आत्मा पर को जानता है वह लोकभाषा है। लोग जो कहते हैं, अर्थात् अज्ञानी की भाषा है। लोकोत्तर भाषा तो ज्ञान जानने में आता है, "जाननहार जानने में आता है"। तुझे व्यवहार लेना है ना? उस असद्भूत व्यवहार के सामने यह सद्भूत

व्यवहार रखा। भाषा पलटाये बिना भाव नहीं पलटेगा।

५०२

"पर जानने में नहीं आता, जाननहार जानने में आता है" इतने शब्द में तो आओ तुम। पक्ष में तो आओ। शब्द में तो आओ : अनुभव से निषेध बाद में आएगा। शब्द पलट तो भाव पलटेगा ही... पूज्य गुरुदेवश्री ने दो बातें की हैं ना..! "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता"। ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास होता है। अखंड जानने में आता है ऐसा नहीं लिखा। तीर्थंकर की वाणी और इनमें कोई अंतर नहीं है। रहस्य इतना गहरा है कि निकालनेवाला निकाल सकता है, सब नहीं निकाल सकते।

५०३

व्यवहार से पर को जानता है, यह... शब्द मार डालता है। निषेध नहीं आयेगा। "है" आया ना? दोनों में "है", "है" आया ना? निश्चय से स्व को जानता है और व्यवहार से पर को जानता है, परंतु "है" (आया), "नहीं" नहीं आया ना? सच्चा अनेकांत यह है- "जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता" ऐसा है। "है" और "नहीं" (अस्ति-नास्ति अनेकांत) में मर्म है।

५०४

"जाननहार जानने में आता है" यह उपयोग का सद्उपयोग हुआ। और यह पर जानने में आता है तो इन्द्रियज्ञान खड़ा हुआ, संसार हुआ।

५०५

"जाननहार जानने में आता है" यह बात नींव की है क्योंकि भेदज्ञान की शुरुआत यहाँ से होती है।

५०६

राग होता है तो कर्म के परिणाम में। परंतु एकत्व करके 'मेरे में आया' तो ज्ञान का अज्ञान कर दिया। उसे भी है तो ज्ञान और राग भिन्न, परंतु उसे ऐसा प्रतिभास हुआ कि राग मेरे में होता है। वह प्रतिभास अज्ञान है।

अब उस प्रतिभास का दुरुपयोग किया। अब वही जीव प्रतिभास का सदुपयोग करता है। अरे! राग मेरे में कहाँ है? मैं तो ज्ञानमयी ज्ञायक हूँ। मुझे तो "जाननहार जानने में आता है"। वहाँ "जाननहार जानने में आता है" यह... प्रतिभास का सदुपयोग हुआ।

५०७

मेरी कही हुई बात मुझसे मत करना। पहले के प्रवचनों में मैं भले ही कह गया परंतु **अब हमें भेद प्रभेद की उपेक्षा वर्तती है। मुझसे मेरी कही हुई बात भी मत करना। क्योंकि भेद वह परद्रव्य है ना ?! भेद को जानो या परद्रव्य को जानो एक**

ही है। गुणस्थान को जानो तो परद्रव्य को जानने गया। स्वद्रव्य रह गया। "जाननहार जानने में आता है" वह भाषा भी चली गई।

५०८

उसे कहा कि "शब्द तो पलट"। गुरुकृपा से तुम्हारे में 'मैं पर को करता हूँ' वह तो नहीं आयेगा। वह अभिप्राय तो नहीं रहा। परंतु "मैं पर को जानता हूँ" उस शब्द को तिलांजलि दे दो। शब्द को हों! और "जाननहार जानने में आ रहा है" यह ले लो ना! और फिर मैंने कहा कि ये... शास्त्र के आधार से है।

आबाल-गोपाल सभी को अनुभूतिस्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप आत्मा अनुभव में आता है। अर्थात् कि "जाननहार जानने में आता है"। यह....शब्द तो आगम का है। समयसार का है ना? मैंने क्या कहा? कि: "जाननहार जानने में आता है" यह मेरा वचन है या आगम का वचन है?

सत्य वाणी तो बोला कर। असत्य वाणी क्यों बोलता है! "मैं पर को जानता हूँ" वह... दुर्जन है। और जिसके मुख में से निकलता है कि: "मुझे जाननहार जानने में आ रहा है" उस अपेक्षा से सज्जन हो गया। फिर निरपेक्ष से सज्जन होगा। भाषा सीधी होगी तो भाव पलटेगा ही। "जाननहार जानने में आता है" इस पक्ष में आया तो अनुभव में आ गया।

५०९

"मैं पर को करता हूँ" और "मैं पर को जानता हूँ" ये दो दोष हैं। एक दोष तो निकल गया। दूसरा दोष भी बताया कि आत्मा ज्ञाता और छह द्रव्य ज्ञेय यह... तेरी भ्रान्ति है। पर को तू नहीं जानता, यह अपने गुरु ने कहा है ना? किसी दूसरे ने नहीं कहा। पर को नहीं जानता, वह श्रीगुरु ने कहा है: और वही मैं कहता हूँ ना? मेरे घर की बात है क्या?

पर को नहीं जानता, तेरे स्वभाव में पर को जानना नहीं है। भाई! स्वभाव याद कर कि "जाननहार जानने में आता है"। तेरे भाव में यह पड़ा है कि: "मैं पर को जानता हूँ" इसलिए यह...शब्द आता है। भाव में से पर को जानना निकल जाएगा तो शब्द नहीं आयेंगे। अभी से, आज से भाषा पलटने लगेगी।

५१०

पर को जानना वह तो ज्ञान का स्वभाव नहीं है। परंतु स्व-पर को जानना वह भी ज्ञान का स्वभाव नहीं है। "जाननहार को ही जानना और जानते रहना" ऐसा तो ज्ञान का स्वभाव है।

५११

पर की तरफ मुड़ी हुई ज्ञान की पर्याय में भी "जाननहार जानने में आता है"। उसकी महिमा और महानता भासित होनी चाहिए। तू 'ना'-'ना' करता है, परंतु तेरी 'ना' की तेरे (सामान्य) अनुभव के सामने कोई वैल्यू नहीं है।

५१२

आहा! अनुभव करके बाहर छठ्ठे में आते हैं तब...! वरना सातवें में तो कलम बंद हो जाती है। **आहा...! प्रत्यक्ष देखते-देखते लिखते हैं। आज आत्मा का स्वरूप ऐसा देखा! आज ऐसा देखा! गुणभेद को परद्रव्य कहा है, (आत्मा में) गुणभेद नहीं है। अरे! भाषा तो बदलो कि "जाननहार जानने में आता है"।**

५१३

"जाननहार जानने में आता है," उसमें ज्ञान की पर्याय का निश्चय मथा जाता है। मथा जाये तो निश्चय प्रगट होए ना?!

५१४

हम तो "जाननहार को जानते हैं" और जाननहार रहते हैं।

५१५

बाल-गोपाल सभी को सदाकाल ज्ञानस्वरूप आत्मा ही अनुभव में आता है, अर्थात् कि जानने में आता है। परंतु उसकी तरफ उसका लक्ष नहीं है। वह हमने कल पूज्य गुरुदेवश्री के आत्मधर्म "ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास" उसमें पढ़ा था। उसमें पूज्य गुरुदेव ने कहा था कि "जाननहार जानने में आता है" उसे लक्ष में नहीं लेता।

५१६

वे शुभभाव आत्मा के किए बिना होते हैं। अब यह बात किससे करें!? शुभ-अशुभभाव आत्मा के किए बिना होते हैं। अपनेआप होते हैं। आत्मा उनका कर्ता नहीं है। कर्ता नहीं है इसलिए उनके फल का भोक्ता भी नहीं है। कर्ता होवे तो फल भोगे ना? आहाहा! "होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है"।

"परिणाम होने योग्य होते हैं और जाननहार जानने में आता है" इसमें कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि दोनों जाती हैं।

५१७

अब बहुत से जीव यह बात समझने लगे हैं कि: "मुझे जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता।" यह तो धीमे-धीमे जैसे जैसे ख्याल में आता है वैसे आधार मिल जाता है। अपनी बात है। आत्मा का अनुभव करने की बात है। दूसरा तो कुछ है नहीं! साध्य की सिद्धि इसमें होती है। स्वपरप्रकाशक में नहीं।

५१८

तेरे ज्ञान में अभी आत्मा जानने में आ रहा है ऐसा हम जानते हैं। ऐसा जानकर ही लिखा है ना? भव्य अभव्य सभी को कहा। छोटे बड़े सभी को "जाननहार जानने में आ रहा है"।

'मैं कौन हूँ' उसका उन्हें (श्रीगुरु को) ज्ञान हुआ, और हमारे से कहा। तुझे तेरा आत्मा जानने में आता है!! पर जानने में आता है- यह बुद्धि क्यों बिगड़ गई। व्यवहार का पक्ष अनादि का है वह मार डालेगा।

५१९

समझपूर्वक बोलता है "जाननहार जानने में आता है"। वह विधि-निषेध करता है... इसलिए निषेध का एक भी कण नहीं आएगा। फिर मैं व्यवहार से पर को जानता हूँ वह भाषा नहीं आयेगी। मैं पर को जानता हूँ यह मिथ्यात्व की कणिका है। तुझे मार डालेगा। व्यवहार से मैं पर को जानता हूँ यह....मारेगा तुझे। "व्यवहार से जानता हूँ" ऐसा आया ना?

५२०

पहले भाषा सीधी आती है कि: "मैं ज्ञाता हूँ"। जैसे चक्षु (पदार्थ को) जानती है वैसे "मैं जाननहार हूँ", फिर वह ही जानने में आता है।

मैं पर को जानता हूँ इस भाषा से लगता है कि (वह) दुर्जन है। दुर्जन शब्द हल्का है परंतु दूर भवि है। वह... बोला नहीं जाता कहीं! परंतु निकट भवि नहीं है। निकट भवि की भाषा भी बदलती है और भाव भी बदलता है। प्रथम जीव पक्ष में आता है फिर पक्षातिक्रांत होता है।

५२१

जानने की बात सबसे पहले आये तब तुम्हारे ख्याल में यह रखना कि "जानता ही नहीं" फिर प्रश्न क्या रहा!

जिज्ञासा : तब क्या?

समाधान : "जाननहार जानने में आ रहा है" ले लो! पर को जानने का विकल्प उठे तब पर्याय में जाननहार जानने में आ रहा है - यह मंत्र है। उसे पर को जानने की बहुत जिज्ञासा है। इसलिए ज्ञाताबुद्धि में गर्भित कर्ताबुद्धि आ जाती है। पर को जानने की इच्छा ज्ञेयलुब्ध है।

५२२

"अकेला जाननहार ही जानने में आता है" दूसरा कुछ जानने में नहीं आता; हे भव्यो! इस बात का परम श्रद्धान करो।

५२३

जिज्ञासा : आत्मा का अनुभव कैसे हो? स्थिति क्या है?

समाधान : स्वपरप्रकाशक में भेदज्ञान की शक्ति संकुचित हो जाती है। स्व को जानता हूँ, पर को जानता हूँ, दोनों में "है", "है" आता है ना!? उसमें अनुभव नहीं होता। "जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता" उसमें अनुभव होता है। दो के प्रतिभास में भेदज्ञान का मार्ग खुला है। प्रतिभास दो का लक्ष एक का। स्व जानने में आता है पर जानने में नहीं आता। पर का प्रतिभास रह गया और पर का जानना छूट गया।

५२४

मुझे घड़ा जानने में आता है और दीपक जानने में नहीं आता। कितना मूर्ख है। ऐसे ही मुझे पर जानने में आता है और "जाननहार जानने में नहीं आता" वह मूर्खों का सरदार है। या तो ध्येय की भूल, या तो ज्ञेय की भूल। ज्ञेय में वह भूलता है कि जानने में आता है स्व और मानता है पर जानने में आता है। प्रतिसमय स्व जानने में आता है। पर का प्रतिभास होता है, ऐसा ज्ञान जानने में आता है। ऐसा ज्ञान आत्मा से अभेद है इसलिए ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक ही जानने में आता है। ज्ञायक तो जानने में आता है सभी को परंतु मानता नहीं वह ज्ञेय की भूल है। करनेवाला माने तो ध्येय की भूल।

५२५

जिस उपयोग में "जाननहार जानने में आता है" उसी उपयोग में तीन काल तीन लोक जानने में आते हैं, अर्थात् प्रतिभासित होते हैं।

५२६

ववानिया गया था; बाद में मोरबी इंदुभाई के यहाँ कहा! यह जो स्वपरप्रकाशक है ना वह व्यवहार है। अब कोई सम्यग्दृष्टि भी इस स्व-पर प्रकाशक व्यवहार को "गुरुवाणी" है ऐसा समझकर सत्य माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। स्वपरप्रकाशक प्रमाण का वाक्य है। उसमें से भेदज्ञान करना है कि: "जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता"। ऐसी घटनायें हो गई हैं।

५२७

आत्मधर्म अंक ३९२। "ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास"। इसमें पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि: "जाननहार जानने में आता है" परंतु वह... स्वीकार नहीं करता। ले लो बोर्ड! गुरुवाणी है ना!!

'ज्ञान की वर्तमान पर्याय का सामर्थ्य स्व को जानना है।' देखो! स्व को जानना लिखा है, स्व-पर दोनों को नहीं। एक-एक शब्द देखो। **'आबाल-गोपाल सभी**

को सदाकाल अखंड प्रतिभासमयी त्रिकाली स्व जानने में आता है...' जानने में आएगा ऐसा नहीं, जानने में आता है।

'...परंतु उसकी दृष्टि पर में पड़ी होने से वहाँ एकत्व करता हुआ, "जाननहार ही जानने में आता है..." देखो जाननहार 'ही' जानने में आता है। यह शब्द आया ना!? अभी शब्द में भी आता नहीं है। **'...ऐसा नहीं मानकर, रागादि पर जानने में आते हैं, इसप्रकार अज्ञानी पर के साथ एकत्वपूर्वक जानता-मानता होने से उसे वर्तमान अवस्था में अखंड का प्रतिभास नहीं होता।'** यह बात टंकोत्कीर्ण है। यह बोर्ड मैंने कब बनाया होगा!!

'और ज्ञानी तो "यह जाननहार जानने में आता है वह ही मैं हूँ"...' आया ना? "जाननहार जानने में आता है" मैंने तुम्हें कहा था कि यह गुरुदेव कहते हैं और स्वयं तो यह "जाननहार जानने में आता है वह ही मैं हूँ" वह अपना अनुभव लिखा। **'...इसप्रकार जाननहार ज्ञायक को एकत्वपूर्वक जानता मानता होने से उसकी वर्तमान अवस्था में (-ज्ञानकला में) अखण्ड का सम्यक् प्रतिभास होता है।'** अब यहाँ सम्यक् शब्द जोड़ा। सम्यक् प्रतिभास होता है। ऊपर की लाइन में सादा सिर्फ प्रतिभास था।

उसे ज्ञान में आ गया कि: "जाननहार जानने में आ रहा है" और उसका अनुभव हुआ इसलिए सम्यक् शब्द का प्रयोग किया। पहली लाइन में मात्र प्रतिभास था; तब वहाँ अनुभव नहीं था। पहली लाइन में वस्तु की स्थिति बतायी। मतिश्रुत में आत्मा जानने में आता है; इसप्रकार प्रतिभास सभी को, परंतु अनुभव किसी को ही होता है। इसलिए सम्यक् प्रतिभास लिखा। यह तो समुद्र है। स्वीकार किया "जाननहार जानने आता है" वह अनुभव से सिद्ध किया।

५२८

एक बात की वह मैं फिर से कहता हूँ कि: "मैं पर को नहीं जानता जाननहार जानने में आता है" यह... शब्द में तो लाओ। मैं पर को जानता हूँ यह शब्द निकाल दो अब, गुरु मिलने के बाद। गुरु नहीं मिले थे तब तक तो हम भी नहीं जानते थे। गुरु कहते हैं इस बात को स्वीकार करो।

कि: शब्द में तो आओ...! उसके ऊपर वजन दिया। भाव तो बाद में! कि: पर को नहीं जानता, शब्द द्वारा तो निषेध करो। भाव द्वारा तो निषेध कर, जब अनुभव होगा तब होगा। सज्जन की भाषा तो बोलो!! बाद में कहा; "पर को नहीं जानता परंतु जाननहार जानने में आता है" ऐसी अस्ति की भाषा में तो आओ।

निषेध किया कि: पर को नहीं जानता तो फिर विधि में आओ कि "जाननहार

जानने में आता है" इस शब्द में तो आओ। शब्द पलटेगा तो भाव पलटेगा। भाव पलटने का अवकाश है। (तेरा) शब्द नहीं पलटता कि: "मैं पर को जानता हूँ.. मैं पर को जानता हूँ यह भाषा दुर्जन की है। यह भाषा मिथ्या है।

व्यवहारनय से अर्थात् छल कपट करके कहता है। '(पर को) जानता है' उसमें फँस गए हैं सभी। व्यवहार वह मिथ्यात्व नहीं है परंतु व्यवहार का पक्ष वह मिथ्यात्व है।

५२९

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा अविपरीत ज्ञान जब होता है, तब शुद्धोपयोग होता है।

५३०

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा प्रतिभास होने पर, जाननहार उपयोगात्मक हुआ।

५३१

"मैं जाननहार हूँ जाननहार जानने में आता है", अपना सर्वस्व अपने में प्राप्त किया।

५३२

"जाननहार ही जानने में आता है" और वह ही जानने लायक है। इस प्रकार आत्मार्थी जाननहार की भावना भाता है।

५३३

पर को जानना सर्वथा बंद कर दे। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले! तुझे कल नहीं आज ही, अभी ही; सम्यग्दर्शन प्रगट होगा।

५३४

निर्णय होने के बाद एकाग्रता बढ़ती जाती है। एकाग्रता बढ़ती है उसका कारण बारंबार अभ्यास। साधक को त्रिकाली द्रव्य का अवलंबन निरंतर बढ़ता है तो शुद्धि की वृद्धि होती है। शुद्धि की वृद्धि होने का कारण! अवलंबन निरंतर रहता है, ऐसे निर्णयवाले की दृढ़ता एकदम बढ़ती जाती है। दृढ़तर, दृढ़तम एकदम। बारंबार विचारना चाहिए कि "जाननहार जानने में आता है, जाननहार हूँ"। अब जिसका निर्णय हुआ उसका प्रयोग करना कि "जाननहार जानने में आता है"। "जाननहार हूँ" उसमें क्या हुआ? कर्ताबुद्धि छूट गई।

कर्ताबुद्धि छूटी, मिथ्यात्व की मृत्यु पास आने लगी। सम्यग्दर्शन आया; यह प्रोसेस है। दूसरा "जाननहार जानने में आता है" वह सम्यग्ज्ञान में आया। श्रद्धा का दोष टल रहा है। "मुझे जाननहार जानने में आ रहा है, पर जानने में नहीं आता" उसमें

इन्द्रियज्ञान शिथिल होने लगा है। इन्द्रियज्ञान व्यय होकर अतीन्द्रियज्ञान होता है। **आखिर में "जाननहार जानने में आता है" उसमें संपूर्ण ज्ञेय पलट जाता है।**

५३५

"जाननहार जानने में आता है" उसके ताप में विकल्प जल जाएँगे। "जाननहार जानने में आता है" उसमें राग की उत्पत्ति नहीं होती, इन्द्रियज्ञान उत्पन्न नहीं होता, परंतु इन्द्रियज्ञान शिथिल होता है।

५३६

"जाननहार जानने में आता है" यह बात पहले प्रकार की और ऊँचे प्रकार की है।

५३७

भाषा तो पलट! उसके ऊपर आज अधिक वजन दिया। भाषा पलटेगी तो फिर भाव धीमे-धीमे पलटेंगे। "मुझे जाननहार जानने में आता है" यह संत कह गए हैं। "अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आ रहा है; अर्थात् कि जानने में आ रहा है"। भाषा पलटती नहीं है तो भाव पलटने का अवकाश है नहीं। तो फिर "जाननहार जानने में आता है" ऐसे पक्ष में कहाँ से आएगा! मैं पर को जानता हूँ- यह व्यवहार का पक्ष नहीं है परंतु अज्ञान का पक्ष है।

ज्ञानी को तो निषेध वर्तता है इसलिए व्यवहार है। अज्ञानी को तो "मैं पर को जानता हूँ" ऐसे आड़े रास्ते पर है। यह... सत्य लगता है, आदर वर्तता है इसलिए अज्ञान। क्या तुम इस पंखे को नहीं जानते?! राग को राग जानता हूँ! वीतराग को वीतराग जानता हूँ! गुरुदेव को गुरुदेव जानता हूँ! महावीर भगवान की प्रतिमा को महावीर भगवान जानता हूँ!! जैसा है वैसा जानता हूँ... यह दुर्जन की भाषा है। जिसकी भाषा दुर्जन की हो वहाँ से खिसक जाना। उससे दूर रहना, तू झूठा है यह कहने की जरूरत नहीं है।

५३८

"जाननहार जानने में आता है", ज्ञान जानने में आता है; यह रहस्य समझेगा उसका मोक्ष है। इसको नहीं समझेगा वह तो जड़बुद्धि आत्मा है।

५३९

सभी को "जाननहार जानने में आता है", फिर भी वह जाननहार जानने में क्यों नहीं आता? उसका गहन अनुसंधान करना चाहिए।

५४०

ज्ञान की पर्याय के भेद को मैं नहीं जानता। "यह मैं जाननहार हूँ" ऐसा जानने में आता है।

५४१

जिज्ञासा : निर्णय के काल में ध्येय का और ज्ञेय का इन दोनों का पक्ष आता है?

समाधान : हाँ। दोनों का पक्ष आता है। "मैं कर्ता नहीं, अकर्ता हूँ"। वह ध्येय का पक्ष है। वही जानने में आता है; दूसरा जानने में नहीं आता। जैसा निर्विकल्पध्यान में होनेवाला है वैसा सविकल्प में ज्ञेय आ जाता है। ज्ञान में पर ज्ञात ही नहीं होता। "जाननहार जानने में आता है"। अब इस....पर्याय का भेद छूटकर संपूर्ण अभेद ज्ञेय होता है और **किसी को ध्येय का पक्ष आये और ज्ञान में रखे कि मैं पर को जानता हूँ तो वह....झूठा है।**

मानसिक ज्ञान में ध्येय भी पलटता है और ज्ञेय भी पलटता है। जो अनुभव में आनेवाला है वह परोक्ष में आ जाता है परंतु वह वचनातीत है।

५४२

निर्विकल्पदशा में "जाननहार जानने में आता है" फिर सविकल्पदशा में आता है; तब पूछा जाये कि...पर्याय जानने में आती है या नहीं? "ना"। तो तू झूठा है। अनुभव हुआ तो आनंद आया? तो कहता है-"ना"। तो भी तू झूठा है।

५४३

"केवल जाननहार ही जानने में आता है" इसका बलवान पक्ष आना चाहिए। कितने ही प्रमाण में अटकते हैं तो कितने ही सामान्य निषेध में अटकते हैं। अपूर्व पक्ष आता नहीं है।

५४४

"जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा विश्वास अंतर से जब आएगा तब वह भगवान प्रत्यक्षरूप से जानने में आएगा, आएगा और आएगा ही।

५४५

प्रतिभास का ख्याल आने पर "जाननहार जानने में आता है" उसका ख्याल आने लगा। अर्थात् कि प्रतिभास का ख्याल आने लगा। अर्थात् "जाननहार जानने में आ रहा है" वह भाषा आ जाती है। प्रतिभास का स्वीकार किया ना?!

पहले तो ऐसे होता था कि: "आबाल-गोपाल सभी को जाननहार जानने में आता है" उसका वाच्य क्या? यह....लिखा है क्यों? कि: उसका प्रतिभास हो रहा है। अर्थात् कि: "अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आ रहा है।" अर्थात् ज्ञायक के प्रतिभास को उसने पकड़ लिया। पर के प्रतिभास को उसने छोड़ दिया। इसलिए विश्वास आया कि "जाननहार जानने में आता है"। उसके प्रतिभास का स्वीकार हुआ ना? **और यह.....प्रतिभास का स्वीकार है, यह अभेदरूप से है। उस प्रतिभास का प्रथम**

स्वीकार भेदरूप से है। विश्वास आया आज। इस....बात का...स्वीकार किया इसलिये "जाननहार जानने में आता है" ऐसा आ गया। भाषा समझ कर आती है।

५४६

पर के प्रतिभास का स्वीकार किया उसमें भी मुझे मेरे ज्ञान में एक का ही अभिन्न का प्रतिभास होता है। दूसरे का प्रतिभास होता है परंतु उसकी मुझे उपेक्षा है। "मुझे तो जाननहार जानने में आता है बस"। दूसरा प्रतिभास हो तो हो! मुझे कुछ उसके साथ संबंध नहीं है। कितनी उपेक्षा!! पर के प्रतिभास की भी उपेक्षा! तो ही "जाननहार जानने में आता है"।

५४७

शुद्धनय का उपदेश भी विरल है, कि: आत्मा पुण्य-पाप से रहित है। कर्ता नहीं है। अकर्ता है। सभी जीवों को भगवान आत्मा का ही ज्ञान प्रगट होता है। वह पर को जानता ही नहीं। "जाननहार को ही जानता है" यह उपदेश भी विरल है। आत्मा के ज्ञान ने भूतकाल में पर को जाना नहीं है यह प्रतिक्रमण है। वर्तमान में जानता नहीं है उसका नाम आलोचना है। भविष्य में किसी काल में भी आत्मा का ज्ञान पर को कभी नहीं जानेगा वह प्रत्याख्यान है।

५४८

जिज्ञासा : ज्ञान प्रगट करने का सीधा साधा उपाय क्या?

समाधान : "जाननहार जानने में आ रहा है"।

५४९

"जाननहार जानने में आता है" यह विचार भी अपूर्व है। यह विचार भी मुक्ति का कारण है।

५५०

प्रमाणज्ञान निश्चयनय के विषय को ग्रहण करता है। आत्मज्ञान स्वाश्रित होने से आत्मा को जानता है परंतु वह व्यवहारनय के विषय का व्यवच्छेदक नहीं है। जो **अनादिकाल से इन्द्रियज्ञान पर को जानता है, उसका निषेध करने की ताकत प्रमाणज्ञान में नहीं है। "जाननहार ही जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता" यह बात प्रमाणज्ञान में नहीं आएगी। वह व्यवहार का निषेधक नहीं है। निश्चयनय तो व्यवहार का निषेधक है। प्रमाणज्ञान में दोनों सत्यार्थ लगते हैं वह उभयाभासी है।**

५५१

और जो "ज्ञायकपने ज्ञात हुआ", "जाननहारपने ज्ञात हुआ", कर्तापने ज्ञात नहीं

हुआ, परंतु ज्ञायकपने ज्ञात हुआ वह तो वह ही है। दूसरा कोई नहीं है। इसमें बहुत कहना चाहते हैं। टीका में इसका विस्तार भी करेंगे।

५५२

अभी तक "जाननहार जानने में आता है" उसका विश्वास नहीं आता था। परंतु प्रतिभास से विश्वास आया। विश्वास का कारण तो कहो?! यह ज्ञायक का प्रतिभास मेरे में हो रहा है, इसलिए "जाननहार मुझे जानने में आ रहा है" ऐसा विश्वास आ गया है। प्रयोग बाकी है। विश्वास आये तो प्रयोग होवे ना?!

५५३

भाई! यदि वास्तव में प्रतिभास में आ गया तो "जाननहार जानने में आ रहा है" उसमें आ गया ना! "वास्तव में जाननहार जानने में आता है", वह उसका मूल बेज़ (base) है, नीव है। अब जाननहार जानने में आ ही जानेवाला है। ज्ञायक का प्रतिभास होता है तो ज्ञायक मुझे जानने में आता है, तो जानने में आएगा, आएगा ही।

५५४

जिज्ञासा : शुद्धोपयोग कैसे प्रगट हो?

समाधान : मैं पर को जानता हूँ वह शल्य छोड़कर, "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा ले तो वह उपयोग अंतर्मुख होते ही शुद्धोपयोग प्रगट होगा।

५५५

मैं पर का कर्ता भी नहीं और पर का ज्ञाता भी नहीं, "जाननहार ही जानने में आता है" ऐसा बारंबार विचार में लेना वह व्यवहार पात्रता है।

५५६

श्रीसमयसार की दस गाथायें ३७३ से ३८२ अद्‌भुत हैं। ज्ञानी का स्वपरप्रकाशक सम्यक् है। परंतु अज्ञानी का स्वपरप्रकाशक अज्ञान है। उसके पास स्वपरप्रकाशक है नहीं। प्रमाण में से, आहा! ज्ञान पर को जानता ही नहीं; जाननहार को जानता है यह विधि-निषेध अंतर से आता है। "पर लक्ष अभावात्"।(परम अध्यात्म तरंगिणी श्लोक नं. ४२)

पंचास्तिकाय में है (गाथा १२१)- प्रमाणरूप स्वपरप्रकाशक। उसमें से स्वप्रकाशक निकालना चाहिए। परपदार्थ है वह इन्द्रिय का विषय है। ज्ञान का विषय नहीं है। आँख के द्वारा पर को जानता ही नहीं था, कान के द्वारा सुनता ही नहीं था, पर को नहीं जानता उसमें "जाननहार जानने में आ जाता है"। पर को लक्ष करके जानना वह तो इन्द्रियज्ञान का धर्म है। मैं तो अतीन्द्रियज्ञानमयी महा पदार्थ हूँ।

५५७

"जाननहार जानने में आता है" उसमें जाननहार कर्म नहीं बनता परंतु विकल्प कर्म बनता है। जाननहार जानने में आता है उस भेद का निषेध कर..."मैं जाननहार हूँ"।

५५८

जिज्ञासा : मैं पर को नहीं जानता उसमें ज्ञान का निषेध होता है? या इन्द्रियज्ञान का निषेध होता है?

समाधान : बाहर की वस्तु को मैं नहीं जानता उसमें इन्द्रियज्ञान का निषेध होता है। ज्ञान तो प्रगट होता है। तो यह परपदार्थ है उसे कौन जानता है? वह... उसे दूसरा जानता है। दूसरा दूसरे को जानता है। आँख का उघाड़ उसे जानता है। यह पुत्र मेरा नहीं.. परंतु मैं उसे जानता हूँ तो वह बड़ी भूल होती है। तब तक ज्ञान में अपना आत्मा ज्ञेय नहीं होता।

जब अपना आत्मा ज्ञान के द्वारा ज्ञेय बनता है अर्थात् कि जाननहार को जानता है; "जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आ रहा है" यह लंदन के पत्र में लिखा है। "जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता"।

५५९

मैं शुद्ध हूँ, जाननहार हूँ; और जाननहार ही जानने में आता है। दो चीज हैं। (१) द्रव्य (२) पर्याय। तीसरी चीज नहीं है।

५६०

"जाननहार जानने में आता है" इससे उत्कृष्ट महामंत्र तीन लोक में दूसरा कोई नहीं है।

५६१

मैं देह का नहीं हूँ इसलिए देह का जाननेवाला नहीं हूँ। "मैं जाननहार हूँ" इसलिए "मैं जाननहार को ही जानता हूँ"।

५६२

ज्ञेयाकार ज्ञान में ज्ञेय की सापेक्षता है। ज्ञेय से निरपेक्ष ज्ञान "जाननहार जानने में आता है" वह तो ज्ञानाकार ज्ञान है।

५६३

मैं जाननहार को जानने की इच्छा करता था, मुझे तो इस बात की खबर ही नहीं थी कि "मुझे जाननहार जानने में आ रहा है" यह सुप्रीम कोर्ट का फैसला है। जाननहार को ही जानता हूँ पर को जानता ही नहीं।

५६४

ज्ञायक है, उसे जाननेवाला कोई है या नहीं? ऐसा आत्मा अपने ज्ञान में ज्ञात हो रहा है तो जब ज्ञान उसे जानता है तब अंतर्मुख होता है या नहीं? तो पर का जानना बंद हो गया। जहाँ ज्ञेय को स्थापित किया वहाँ ज्ञान मुड़ता है। जैसे ही यहाँ स्थापित किया तो वहाँ से उत्थापन हो गया। जैसे ही यहाँ ज्ञेय स्थापित किया, तो ज्ञान अंदर में झुक जाता है। तब वह ज्ञान ज्ञायक से अभेद होकर परिणम जाता है वह (ज्ञान का) ज्ञेय है।

अपरिणामी ध्येय है। अकेले ध्येय में मोह गलता है किन्तु टलता नहीं है। परंतु जब ऐसा लगे कि "मुझे जाननहार ही जानने में आता है" यह अन्य कुछ जानने में नहीं आता। तो पहले निषेध का विकल्प आता है फिर निषेध का विकल्प छूट जाता है, फिर विधि का विकल्प आता है, कि: "जाननहार ही जानने में आ रहा है।" ऐसे अस्ति में आया तो यहाँ ज्ञेय स्थापित किया है, तो ज्ञान अंदर में मुड़ जाएगा। ज्ञान अंदर में आया और अनुभव हुआ उसका नाम अनुभूति है।

५६५

पूरे दिन रखड़ता है बाजार में, फिर बाजार में थकान लगती है तो घर में आया, तो शांति मिली। इसप्रकार थकान उतारनी हो तो आत्मा को जान। मुझे तो "जाननहार जानने में आता है", जो जानता है उसे नहीं जानता परंतु मैं तो अभेद को जानता हूँ।

५६६

"पर जानने में नहीं आता, जाननहारा जानने में आता है" इसमें अनुभव होता है। ६ महीने प्रयोग तो कर।

५६७

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा समझाने के लिए कहना पड़ता है, वरना तो मैं "जाननहार हूँ"।

५६८

यह भिन्न है वह कब पता चलता है? अभिन्नता समझ में आए तब ना? क्योंकि भिन्नता का ज्ञान अभिन्नता से सापेक्ष है। भिन्नता का अर्थ क्या है? उसे जानता ही नहीं। अभिन्नता का अर्थ क्या है? "जाननहार ही अनादि से अभिन्नपने जानने में आ रहा है"। (कलशटीका श्लोक नं. ३७)

५६९

जितनी मात्रा में "जाननहार जानने में आता है" ऐसा स्मरण में आता है, उतनी मात्रा में विभाव का विस्मरण होता है।

५७०

"जाननहार जानने में आता है" उसमें आजा ना! शरीर का प्रतिभास है, परंतु लक्ष पलट गया। प्रतिभास रह गया और लक्ष पलट गया।

५७१

"ज्ञायकपने ज्ञात हुआ" अर्थात् अनुभव में आया वही अब जानने में आता है; अनुभव में आता है। "वह तो वह ही है; दूसरा कोई नहीं है।"

ज्ञायकपने ज्ञात हुआ! पर्याय के कर्तापने ज्ञात नहीं हुआ; क्योंकि अकर्ता है। परिणाम से रहित है इसलिए कर्ता नहीं है। कर्ता नहीं है इसलिए अकर्ता है। और अकर्ता है इसलिए शुद्ध है।

निर्विकल्पध्यान में जानने में आया उससे अलग रीति से देशनालब्धि सुनने के समय जानने में आता है ऐसा नहीं है। ज्ञेय चाहे जितने भले ही पलटें परंतु "जाननहार जानने में आता है....! जाननहार जानने में आता है...! जाननहार जानने में आता है, जाननहार जानने में आता है" वह अविच्छिन्न धाराप्रवाही है। उसमें भेद मत करना! निर्विकल्पध्यान में "जाननहार जानने में आता है" और सविकल्प ध्यान में दूसरा जानने में आता है? रहने दे अब!!

"ज्ञातः" ज्ञायकपने ज्ञात हुआ वह तो वैसा का वैसा ही जानने में आता है। पाँच महाव्रत के प्रतिभास के समय भी जो जानने में आया वैसा का वैसा, वैसा का वैसा ज्ञात हुआ करता है।

५७२

वर्तमान में "जाननहार जानने में आ रहा है" तो मुक्ति का सैंपल मिलेगा।

५७३

आठों ही पर्यायों में लोकालोक का प्रतिभास है ही। भूत, भविष्य, तीन काल की पर्यायों का प्रतिभास तो है ही। मान लो एक पर्याय प्रगट होती है, देव-शास्त्र-गुरु को जानने की। प्रतिमा है और यहाँ उसका प्रतिभास होता है। परंतु प्रतिमा के प्रतिभास के समय "जाननहार जानने में आता है"। प्रतिभास के समय प्रतिमा जानने में नहीं आती। तो भी वह भूल करता है कि प्रतिमा के दर्शन किए। शुभभाव के साथ अज्ञान है मिथ्यात्व है।

५७४

४५ वर्ष गुरुदेव को सुना, फिर भी अनुभव क्यों नहीं होता। जगत का ध्यान इस बात पर नहीं खिचता। गुरुदेव के जाने के बाद एक ही बात! द्रव्य दृष्टि में क्यों नहीं आता? भगवान आत्मा क्यों नहीं ज्ञात होता? भगवान तो है सभी के पास परंतु "मैं पर को जानता हूँ" यह बड़ी भूल थी। यह भूल किस तरह से टूटे उसके लिए यह सूत्र दिया।

"जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता"। यह ज्ञान की पर्याय का निश्चय है।

५७५

ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास। उसमें **"जाननहार ही जानने में आता है" इस वाक्य को इनवर्टेड कोमा में बाँधा है। यदि कोमा में नहीं बाँधा होता तो (व्यवहार का पक्षपाती) स्वपरप्रकाशक में या कथंचित्(स्याद्वाद) में ले जाता।**

५७६

वह तो कर्ता नहीं है उसका निषेध करने के लिए 'करनेवाला नहीं है जाननेवाला है' ऐसा कहना पड़ता है। उसका जाननेवाला भी कहाँ है? वह तो "जाननहार जनाया करता है" वह वस्तु का स्वभाव है। अब वापिस मुड़ कि: मैं करनेवाला नहीं हूँ; जाननेवाला हूँ। हठ छोड़ दे अब। अभी तक जो हुआ वह तेरे कर्ता बिना ही हुआ है।

५७७

दूध है न दूध, दूध तो ले लिया, उसे उबाला; फिर वह जावन के बिना ऐसे ही जमता नहीं है। उसमें जावन डालना पड़ता है। फिर माखन निकलता है। दूध में जावन नहीं डालें तो फट जाता है। दूध का स्वाद नहीं रहता। जल्दी जावन डालो कि: "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता"।

५७८

प्रत्येक जीव का ज्ञान प्रत्येक समय अपने आत्मा को जानता है और पंच परमेष्ठी को नहीं जानता। पंच परमेष्ठी मेरे ज्ञान के ज्ञेय नहीं होते। मुझे समयसार की छट्ठी गाथा जानने में नहीं आती। मुझे तो "जाननहार जानने में आता है", यह ज्ञान की पर्याय का निश्चय हाथ में आये तब ही अनुभव होता है। पर का जानना वह असद्भूत व्यवहार। स्वपर को जाने वह प्रमाण का व्यवहार। पर को न जाने अकेले स्व आत्मा को जाने- "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता", उसमें आत्मा का अनुभव होता है।

५७९

ज्ञान उपयोग स्वपरप्रकाशक है। उसमें स्व; "मैं ज्ञायक हूँ" वह निरंतर ज्ञात हो ही रहा है। तथा पर्याय एवं पर का प्रतिभास हो रहा है। पर के प्रतिभास के समय, रागादि के प्रतिभास के समय "जाननहार जानने में आता है।" स्वप्रकाशक में आए तो ज्ञान उपयोग का ज्ञानत्व होता है; वह शुद्धोपयोग है।

५८०

जाननहार ही जानने में आता है ऐसा वज्र अभिप्राय बंध जाता है।

५८१

निरंतर जाननहार जानने में आने पर भी; पर का प्रतिभास रागादि, देहादि प्रतिभासित होने पर; मुझे रागादि, देहादि जानने में आते हैं तो उपयोग अशुद्ध हो जाता है।

५८२

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है", वह भेदपने जानने में आता है या अभेदपने जानने में आता है?

समाधान : "जाननहार जानने में आता है" वह अभेदपने जानने में आता है।

५८३

भगवान सर्वज्ञ कहते हैं तेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है। तेरे ज्ञान में तेरा आत्मा बाल-गोपाल सभी को जानने में आता है, ऐसा हम जानते हैं। तू कहता है - घड़ी ज्ञात हो रही है! सोफा सेट ज्ञात हो रहा है! तेरी भूल होती है। जाननहार प्रत्येक जीव को ज्ञात हो रहा है। यदि ज्ञात ना होता हो तो क्षयोपशम ज्ञान का ही अभाव हो जाता। उसका अस्तित्व ना रहता।

विशेष में सामान्य जानने में आता है तब विशेष का अस्तित्व टिकता है। विशेष में उसका सामान्य जानने में आता है। जिसका विशेष है! जो सामान्य का विशेष है उस विशेष में सामान्य ज्ञात हुआ करता है। इसलिए विशेष टिका रहता है। उत्पाद-व्यय में ध्रुव जानने में आता है। यदि ध्रुव ज्ञात ना होता हो तो उत्पाद-व्यय ही नहीं होता। परोक्षरूप से श्रद्धा में ले कि: मुझे परोक्ष अनुभूति हो रही है तो फिर प्रत्यक्ष होता है।

परंतु परोक्ष अनुमान में से गया, और मुझे यह जानने में आता है...! यह जानने में आता है....! तो अज्ञान में आया। वह परसत्तावलंबी खंडज्ञान में आया।

५८४

"मुझे जाननहार जानने में आता है पर जानने में नहीं आता" वह मीठी घूँट है। कड़वी घूँट नहीं है। यह साधक कहते हैं। गुरुदेव कहते हैं।

५८५

जाननहार ही जानने में आता है और वही मैं हूँ, फिर स्व-पर का प्रतिभास कहाँ गया? वह उसके घर में रहा!!

परंतु जो ज्ञान जिसका है उसे न जाने और उसे जानना छोड़ दे तो ज्ञान नहीं रहता अपितु ज्ञेय हो जाता है। तो ज्ञान कैसा है? उसमें ज्ञायक जानने में आता है, उसका लक्ष ज्ञायक के ऊपर है। पर के ऊपर है तो वह ज्ञान मिटकर इन्द्रियज्ञान हो जाता है। ज्ञान तो प्रगट होता है, वह ज्ञान तो ज्ञायक का ही है। फिर भी उसमें यह "जाननहार

जानने में आ रहा है" ऐसा न लेकर "पर ज्ञात हो रहा है" ऐसा माना तो ज्ञान नहीं रहा, तो इन्द्रियज्ञान हुआ। इन्द्रियज्ञान अज्ञानपने रहा है।

५८६

राग भी चैत्य है, ज्ञायक भी चैत्य-चेतक है। राग पर चैत्य है। ज्ञायक स्वयं ही जाननहार, स्वयं ही जानने में आए, ऐसा चैत्य-चेतक है।

५८७

इस बात में ध्यान रख कि: मुझे जाननहार ही जानने में आता है। उसमें ही सावधान रह। - और दूसरी सभी बातों में बेखबर रह।

५८८

लोकालोक को बिंब कहा जाता है, केवलज्ञान की पर्याय में जैसा लोकालोक का स्वरूप है वैसा जानने में आता है, उस ज्ञान की पर्याय का नाम प्रतिबिंब है। अकेला पर जानने में नहीं आता परंतु स्वपर जानने में आता है, और वह भूल है। या तो वह बिंब को पकड़ता है, या तो वह प्रतिबिंब को जानता है। अब पर्याय को भी जानना बंद कर दे। "जाननहार जानने में आता है"। निमित्त जानने में आता है ऐसा नहीं, नैमित्तिक जानने में आता है ऐसा भी नहीं। निमित्त का लक्ष छोड़ दे, नैमित्तिक का लक्ष छोड़ दे।

५८९

स्व-पर दो जानने में आते हैं तो व्यवहार हो गया। स्व एक जानने में आता है तो निश्चय हो गया। "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता" उसमें व्यवहार का निषेध हो गया। साधक को दो ज्ञात नहीं होते, एक ज्ञान ही जानने में आता है। परंतु वह ज्ञान कैसा है? राग जानने में नहीं आता वैसा ज्ञान जानने में आता है।

५९०

परोक्ष अनुभूति होती है उसका निषेध करता है तो प्रत्यक्ष कहाँ से होगी? आबाल-गोपाल सभी को अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आ रहा है, आएगा, ऐसा नहीं लिखा।

परोक्ष अनुभूति का विश्वास आये तो प्रत्यक्ष अनुभूति हो। व्यवहार श्रद्धा में से गया और निश्चय श्रद्धा में से गया। निश्चय श्रद्धा नहीं है, **व्यवहार श्रद्धा नहीं है, इसलिए अजैन है। व्यवहार श्रद्धावाला तो नाम निक्षेप से जैन है।**

मुझे तो मेरे ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है", सविकल्प में; अनुभव से पहले। प्रत्येक समय "जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है।" जानेगी ऐसा नहीं लिखा।

५९१

अनादि से पर के प्रतिभास को आगे करता है कि रागादि और देहादि जानने में आते हैं। तो वही उपयोग अज्ञानरूप परिणम जाता है। अब अनादि से निरंतर जाननहार जानने में आ रहा है, प्रतिभासित हो रहा है। उसका लक्ष करे तो शुद्धोपयोग हो जाता है।

५९२

उपयोग एक ही है। उपयोग स्व-पर के प्रतिभासरूप है। यह एक ही उपयोग विषय के भेद से या सम्यग्ज्ञान या मिथ्याज्ञान-अज्ञानरूप हो जाता है। जाननहार जानने में तो आ रहा है और (अंदर से) आये कि: "जाननहार ही जानने में आ रहा है" तो वह उपयोग शुद्धोपयोगरूप हो जाता है।

५९३

ये नोकर्म, कर्म जानने में आते हैं, एक समय की ज्ञान की पर्याय जानने में आती है, परंतु "ज्ञायक जानने में आता है" ऐसा ले ना!! अंदर में घुस जा न! कि: "जाननहार जानने में आता है"।

५९४

आत्मा परोक्षपने जानने में आता है उसका दो घड़ी विचार करे तो कि: मुझे जाननहार जानने में आता है, ज्ञायक जानने में आता है वहाँ तो अंदर में परोक्ष अनुभूति हो जाती है। परोक्ष अनुभूति का ठिकाना नहीं है तो प्रत्यक्ष कहाँ से होवे?

५९५

परोक्षपने जानने में आता है, परोक्ष में आये तो प्रत्यक्ष होता है। परंतु अभी परोक्ष में भी नहीं आता। अब... यह (पर) जानने में नहीं आता... ज्ञायक जानने में आता है तो "जाननहार जानने में आ जाएगा"। यह जानने में आता है, यह जानने में आता है तो कुछ नहीं जनायेगा।

५९६

"जाननहार जानने में आता है" इस निश्चयनय में आए तो आत्मा के समीप आ गया है। पर को जानता है उसमें आत्मा से दूर है, और स्व-पर को जानता है उसमें अधिक दूर है।

५९७

"जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता", स्वप्रकाशक ज्ञान से ही आत्मा जानने में आता है। फिर उसकी सामर्थ्य वह स्वपरप्रकाशक। उसके दो प्रकार हैं। पहले दो प्रकारों के ऊपर जाएगा तो अंदर नहीं जाया जाएगा। दो प्रकारों को गौण करके "उपयोग में उपयोग है"। स्वपरप्रकाशक है? "ना" मुझे खबर नहीं है।

"जाननहार जानने में आता है और पर नहीं जानने में आता।" **अस्ति-नास्ति अनेकांत अनादि से है। इसप्रकार प्रथम जिसे अनुभव करना हो वह "जाननहार जानने में आता है" और दूसरा जानने में नहीं आता। निषेधपूर्वक विधि में आता है।**

५९८

अस्ति-नास्ति का अनेकांत अनादि-अनंत है। "जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता है"। स्वपर जानने में आता है वह तो प्रमाण है। प्रमाण में व्यवहार का निषेध करने की ताकत नहीं है।

५९९

"जाननहार जानने में आता है" वह ही हमें ऊँची आवाज में कहना है।

६००

बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा वर्तमान ज्ञान में ज्ञात हो रहा है। यदि ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में ना आ रहा होता तो ज्ञान का अस्तित्व ही ना होता। जैसे प्रकाश में दीपक जानने में आता है, तो प्रकाश की पर्याय का अस्तित्व है। परंतु यदि प्रकाश की पर्याय में दीपक जानने में ना आता होता तो तो प्रकाश ही ना होता। वैसे ही प्रत्येक जीव को वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक भगवान आत्मा जना रहा है। ऐसा ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व है। उसमें "जाननहार जानने में आता है" इसलिए तो ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व है। "जाननहार जानने में आता है" इसलिए तो ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व रह गया है। अब तेरी भूल यह होती है कि तुझे जानने में आता है तो ज्ञान, मान रहा है (पर) ज्ञेय; यह ही तेरी भूल है।

६०१

सभी जीवों को स्वपर का प्रतिभास हो ही रहा है। यह स्वपर का प्रतिभास बंध मोक्ष का कारण नहीं है। निरंतर जाननहार जानने में आ रहा होने पर भी मुझे पर जानने में आता है तो उपयोग अशुद्धोपयोगरूप हो जाता है, जो संसार का कारण है। "निरंतर जाननहार जना रहा है" और पर का प्रतिभास भी हो रहा है। उस समय ऐसी प्रतीति आये कि: "जाननहार हूँ" और "जाननहार ही जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता", तो उपयोग शुद्धोपयोगरूप हो जाता है। जो मोक्ष का कारण है।

६०२

जब ज्ञान में यह अँगुली प्रतिभासित होती है तब उस व्यवहार का निषेध करना और "जाननहार जानने में आता है" ऐसा लेना। तो "जाननहार तो निरंतर जानने में आ ही रहा है" वह जानने में आ जाता है।

६०३

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले परंतु पर को नहीं जानता ऐसा निषेध ना आए तो जाननहार जानने में नहीं आएगा। प्रथम निषेध का विकल्प फिर विधि का विकल्प, फिर अनुभव।

६०४

चश्मे के प्रतिभास के समय यह चश्मा जानने में आता है या "जाननहार जानने में आता है" बस; इतना ही प्रयोग करो तुम, काम हो जाएगा। संक्षिप्त और सटीक है।

६०५

अंदर से एक श्रद्धा का बल उठे कि परिणाम मुझे जानने में ही नहीं आते "जाननहार ही जानने में आता है" तब वास्तविक जाननहार हो जाता है।

६०६

जो बलवान पर्याय निरपेक्ष पर्याय है वह ऐसा जानती है कि "जाननहार जानने में आता है"। जो पर्याय आत्मा को जानती है उस पर्याय में कितनी ताकत होगी। जो निरपेक्ष है वह शक्तिशाली है। उसमें आत्मा जानने में आता है।

६०७

तेरा ज्ञान जिस जाननहार में से आता है उस जाननहार को जान! यह जो "जाननहार है वह तो मैं ही हूँ।"

६०८

हे! आत्मन!! इस जगत में एक जाननहार ही जानने लायक है- ऐसा निशंक जान!

६०९

"जानने में आता है जाननहार" और लगता है पर जानने में आता है वह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है।

६१०

"जाननहार जानने में आता है" यह विचार सच्चा है। जबकि पर जानने में आता है-यह विचार भी सच्चा नहीं है।

६११

जिज्ञासा : पंचाध्यायी की ५५८ गाथा में कहा है कि: ज्ञान प्रगट होता है, परंतु विषय के भेद से भेद पड़ जाता है। वह किस प्रकार से?

समाधान : जो ज्ञान प्रगट हुआ; उसमें स्व-पर दोनों का प्रतिभास होता है। स्व अर्थात् आत्मा का प्रतिभास होता है। और पर का प्रतिभास भी होता है।

अब तुम्हारा ज्ञान ज्ञायक की तरफ मुड़ता है या पर की तरफ मुड़ जाता है; वह पुरुषार्थ करो तुम बस! वहाँ पुरुषार्थ है। तुझे जानने में क्या आता है? जाननहार जानने में आता है? या भेद जानने में आता है? या पर जानने में आता है? पुत्र-पुत्री जानने में आते हैं? क्या जानने में आता है? यह... तुम्हारा काम।

ज्ञायक ही जानने में आता है बस; यह रखना। पर जानने में नहीं आता उसका कारण सर्वथा भिन्न है। "ज्ञायक जानने में आता है" वह कथंचित् अभिन्न है इसलिए जानने में आता है।

६१२

"मैं जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है" यह बात कान पर आती है वह भाग्यशाली है।

६१३

इन्द्रियज्ञान को जीतने का मंत्र ---> भगवान तू पर को जानता ही नहीं। "जाननहारा ही जानने में आता है"। क्योंकि ज्ञान में जाननहार ही तन्मय है। पर तन्मय नहीं है।

६१४

आबाल-गोपाल सभी को "जाननहार जानने में आता है", ऐसा मैंने अनेक बार आपके पास से, गुरु के पास से सुना था कि प्रत्येक समय; प्रत्येक जीव को, "जाननहार ही जानने में आता है"। परंतु उसका मुझे विश्वास नहीं आता था।

६१५

ज्ञान-चक्र में "जाननहार जानने में आता है" इस प्रकार से (सब द्रव्य) अपने-अपने स्वभाव में परिणमते हैं। ज्ञान अपने स्वभाव को अभेदभाव से जाननेरूप परिणमता है।

६१६

हे! भगवान! आप सर्वज्ञ हो, ऐसा आपकी वाणी से निश्चित करते हैं। सभी जीवों को तीनों काल उनका अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा जानने में आता है। तीनों काल को जाननेवाले तो सर्वज्ञ ही होते हैं ना?! सभी जीवों का मूल स्वरूप जान लिया। इस सूत्र से निश्चित होता है कि आप सर्वज्ञ हो।

६१७

जिसे जानता है वह...जानने में आता है और जो जानने में आता है वह तो स्वयं ही है। इसलिए "जाननहार ही जानने में आता है"। जिसे जानता है वह ही जानने में आता है।

६१८

अनादि-अनंत "जाननहार ही जानने में आता है"। अकृत्रिम भगवान "जाननहार ही जानने में आता है"। ऐसे "जाननहार को जाना", तो समझ में आया कि: "निरावरण जाननहार ही जानने में आता था"।

६१९

ज्ञान में किसी काल ज्ञेय की अपेक्षा नहीं है, अपेक्षा से रहित ही ज्ञान निरंतर जानने में आता है, उसमें "जाननहार जानने में आता है।"

६२०

प्रतिभास होते हुए भी पदार्थ उसमें आते नहीं हैं। हीरे का प्रतिभास होता है, परंतु हीरा उसमें नहीं आता। उसी प्रकार राग का प्रतिभास होता है फिर भी आत्मा रागरूप नहीं परिणमता। राग का प्रतिभास होता है तथापि राग को जानता भी नहीं है। जिस ज्ञान की पर्याय में प्रतिभास हुआ वह पर्याय तो ज्ञायक की है। पर्याय तो ज्ञायक को जानती है। जिसका प्रतिभास होता है उसे कहाँ जानने जाती है? यह अंतर्मुख होने की विधि है। कहते हैं: "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। पर का प्रतिभास है, परंतु वास्तव में पर जानने में नहीं आता।

६२१

"मुझे जाननहार जानने में आता है" और मैं जाननहार को जानता हूँ, तो अंदर में से भंडार मिलेगा।

६२२

"जाननहार जानने में आता है" उस शब्द पर विश्वास है, देशनालब्धि पर विश्वास है परंतु अंदर में से विश्वास आना चाहिए ना? वह मुझे विश्वास नहीं आता था कि "मुझे जाननहार ज्ञात हो रहा है"। परंतु इस प्रतिभास शब्द से विश्वास आ गया।

प्रतिभास शब्द जैसे ही आया कि..ज्ञायक का प्रतिभास हो रहा है। विश्वास आ गया। विश्वास से जहाज तिर जाएगा। प्रथम अपनी भूल बताई कि: विश्वास नहीं आता था; बाद में विश्वास आया! तो उसका कारण बताया ज्ञायक का प्रतिभास। ज्ञायक का प्रतिभास ज्ञान में हो रहा है। इसलिए ज्ञान में ज्ञात हो रहा है, तो "जाननहार जानने में आता है" वह यथोचित है ऐसा आ गया।

६२३

(१) प्रमाद **मत** करना; (२) जल्दीबाजी भी **मत** करना; (३) और धीरज भी **मत** छोड़ना। धीरज छोड़ना नहीं और जल्दबाजी भी करनी नहीं। जल्दीबाजी करने से काम नहीं बनेगा, उसमें कर्ताबुद्धि का दोष लगेगा। कर्ताबुद्धि होगी तो कार्य नहीं होगा!

इसलिए कर्ताबुद्धि **मत** रखना!!

मैं तो जाननहार हूँ। क्या जानने में आता है? मुझे "जाननहार जानने में आता है"। अब "जाननहार जानने में आता है" ऐसा श्रद्धा पूर्वक प्रयत्न तो चलता है। परंतु कदाचित् टाइम लगे न तो उतावल मत करना। और मंत्र झूठा है ऐसा मानकर उसे छोड़ मत देना। मंत्र सच्चा है।

६२४

प्रगट होते हुए उपयोग में ऐसा आ जाता है कि..."जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। पहले बहिर्मुख उपयोग होता था इसलिए इन्द्रियज्ञान होता था, वह ज्ञान का दोष है। ज्ञान तो आत्मा का है और आत्मा की तरफ मुड़ जाये कि: मुझे तो मेरे ज्ञान में "आत्मा जानने में आ रहा है" ऐसा भेदज्ञान करे तो प्रत्यक्ष हो जाता है।

६२५

"जाननहार जानने में आता है" तो जाननहार को जानने पर आनंद आया तो समयसार और प्रवचनसार दोनों आ गए।

पूरा दरिया मंथन करके जाना तो किनारे पर है; उसी प्रकार सबकुछ जानकर पहुँचना तो "मैं जाननहार हूँ" वहाँ तक है। तो पहले से करे तो उसमें दिक्कत क्या है?

६२६

तुम्हारे ज्ञान में शरीर ज्ञात हो रहा है, दुःख ज्ञात हो रहा है ऐसा नहीं लेना। अभी "मेरे ज्ञान में ज्ञायक ज्ञात हो रहा है"। प्रकाश में घट-पट प्रसिद्ध नहीं होते। प्रकाश में प्रकाश जानने में आता है। मुझे दूसरा कुछ ज्ञात ही नहीं होता। दूसरा जानने में आए तो राग-द्वेष होवे ना? मुझे कुछ ज्ञात ही नहीं होता ना? यदि जानने जाओगे तो राग-द्वेष होगा। और यदि जाननहार को जानोगे तो अनुभव होगा। बिस्तर में होता है अनुभव।

६२७

ज्ञान कहता है "मैं रूपी पदार्थों के रूप को नहीं जानता"। "मुझे तो जाननहार जानने में आता है", वह ही मेरा ज्ञेय है।

६२८

ध्येय तो स्वप्रकाशक है; "जाननहार हूँ"; परंतु ज्ञेय भी स्वप्रकाशक ही है। अपने को जानने पर स्वयं ही जानने में आता है।

६२९

ज्ञान आत्मा का होने से (आत्मा) जाननहार ही जना रहा है, इसलिए पर जानने में नहीं आता। अज्ञानी प्रतिसमय ज्ञान की गर्दन मरोड़ता है।

६३०

जिज्ञासा : अब ऐसा मंत्र दो कि मैं उग्र पुरुषार्थ करूँ!

समाधान : तुम्हारे ज्ञान में तुम्हारा ज्ञायक ही ज्ञात हो रहा है। प्रकाश में प्रकाश्य जानने में आता है। प्रकाश में घट-पट ज्ञात नहीं होते। वैसे ही इस ज्ञान में ज्ञेय ज्ञात नहीं होते। यहाँ भी वैसा ही है। "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता" इस मंत्र की साधना करते करते देह छूटेगी बस। तो अल्पकाल में तुम्हें वहाँ ज्ञानी का योग होगा।

६३१

तुम्हारी स्थिति ऐसी है कि इस समय तुम्हें "जाननहार जानने में आता है"। तुम जाननहार को जानते हो। तुम शब्द को नहीं जानते।

६३२

मोक्षमार्ग प्रकाशक में विषय-कषाय की व्याख्या की है। विषय अर्थात् पर को जानने की इच्छा और कषाय अर्थात् पर को करने की इच्छा। आत्मा वास्तव में पर को नहीं जानता, उसमें विषयों को जीतने का बोध कराया। विषयों को जीतने की बात है। वास्तव में आत्मा अकर्ता है। कर्ता नहीं है। उसमें कषाय को जीतने का बोध है। उसमें कषाय जीती जाती हैं। जानने की इच्छा होती है वह कषाय का सेवन करता है। इसीलिए "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता", उसमें विषय को जीतने की बात है।

विषय और कषाय को जीते बिना सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। फिर अस्थिरता के विषय उस कर्ता के कर्म में नहीं जाते, परंतु ज्ञाता के ज्ञेय में जाते हैं। अब इच्छा की इच्छा नहीं है; एकत्व नहीं है इसलिए। इच्छा है वह भी अबुद्धिपूर्वक की है। इन्द्रियज्ञान को साधक ने जीत लिया है परंतु उसका स्वामीपना न होते हुए भी, जब तक केवलज्ञान नहीं होता, तब तक उसका स्वांग रहता है।

यह विषय-कषाय को जीतने का मंत्र है। यह मंत्र स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ है। मूल ये दो ही बातें हैं। अनादि से ये दो बातें हैं। शास्त्र का आधार मिला! विषय-कषाय को जीतो!! एक में जीव का वास्तविक स्वरूप लक्ष में आता है, और एक में जीव का वास्तविक स्वरूप अनुभव में आता है। इसमें ध्येय और ज्ञेय दोनों समा जाते हैं और दोनों को जीतने पर ध्येय पूर्वक ज्ञेय होता है।

६३३

"जानने में आता है जाननहार" और मानता है यह...कि: मैं राग को करता हूँ

और राग को जानता हूँ; "बात तो कुछ भी नहीं थी, बढ़ गई बात में बात"।

६३४

श्रोता-१ : यह बात तू लाया कहाँ से? यह बात तू लाया कहाँ से? मुझे यह....(पर) जानने में आता है?

श्रोता-२ : "मुझे पर जानने में आता है" यह बात तू लाया कहाँ से? ऐसा तो तेरा स्वरूप नहीं है।

श्रोता-३ : ऐसी बात आई कहाँ से? यह कहाँ से आई?

श्रोता-१ : अज्ञान के घर में से आई। आप कहते हो वैसा सभी मानें तो ज्ञानी हो जाएँ।

श्रोता-२ : आत्मा में तो ऐसा है नहीं। "मैं पर को जानता हूँ" लाया कहाँ से?

समाधान : मैं पर को जानता हूँ लाया कहाँ से? तुम्हें अधिक (ज्यादा) भव नहीं हैं, ऐसा मुझे लगता है। मैं पर को जानता हूँ- उसमें भव की उत्पत्ति होती है। वस्तु में तो नहीं है। करना तो कहाँ गया, परंतु पर को जानना भी नहीं है। स्वभाव में नहीं है पर को जानना, अपने को जानना छोड़े तो पर को जाने ना? अपने को जानना छोड़े तो आत्मा जड़ हो जाए। "जाननहार ही जानने में आता है" सभी को, बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा ही जानने में आता है। हाँ कर तो लत लगकर हालत हो जाएगी।

तू पर को जानता नहीं, और पर को जानता हूँ....पर को जानता हूँ...ऐसी झूठी बकवास करता है।

"उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार;
अंतर्मुख अवलोकतां विलय होते नहीं वार।"

६३५

"जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता"। ऐसे स्वप्रकाशक ज्ञान से ही आत्मा जानने में आता है। फिर उसकी सामर्थ्य स्वपरप्रकाशक - ऐसे दो प्रकार पर जाएगा न तो अंदर नहीं जाया जाएगा। दो प्रकारों को गौण करके "उपयोग में उपयोग है"।

जिज्ञासा : ज्ञान स्वपरप्रकाशक है?

समाधान : "ना" मुझे नहीं पता। **"जाननहार जानने में आता है, दूसरा जानने में नहीं आता" ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकांत अनादि से है। यह प्रथम जिसे अनुभव करना हो उसे "जाननहार जानने में आता है" और दूसरा जानने में नहीं आता। निषेधपूर्वक विधि में आता है।**

६३६

यह "मैं जाननहार हूँ" ऐसा अभेदपने जाना उसमें जाननहार हो गया।

६३७

हमारे यहाँ "जाननहार जानने में आता है" उसके ऊपर ही बहुत चर्चा चलती है। उसमें से नया-नया निकलता ही जाता है।

६३८

"ज्ञायकपने ज्ञात हुआ" अर्थात् अनुभव में आया, वही अब अनुभव में आता है। वह तो वही है; दूसरा कोई नहीं है।

"ज्ञायकपने ज्ञात हुआ", अर्थात् पर्याय के कर्तापने ज्ञात नहीं हुआ। क्योंकि अकर्ता है। हमारा निश्चयज्ञेय पलटता नहीं है। जिस ज्ञान में ज्ञेय पलटता है वह हमारा ज्ञान भी नहीं है, और ज्ञेय भी नहीं है।

(१) - जाननहार जानने में आता है,

(२) - जाननहार जानने में आता है...

(३) - जाननहार जानने में आता है...

(४) - जाननहार जानने में आता है। उसमें अब भेद मत करना।

६३९

"जाननहार जानने में आता है", वह जानने में आने के बाद भले ही क्रोध को जानो तो एकताबुद्धि नहीं होती क्योंकि वह ज्ञेय बन जाता है।

६४०

"जाननहार जानने में आता है" उसमें इन्द्रियज्ञान शिथिल हो जाता है, पर जानने में आता है उसमें इन्द्रियज्ञान बलवान हो जाता है।

६४१

चेतना लक्षण से भी पर्याय को जानता है ऐसा नहीं लिया, परंतु जीव को जानता है। **भले भेद पड़ता है, परंतु जानता है अभेद को, भेद भेद को नहीं देखता अभेद को देखता है। "मन के द्वारा जान लेता है"। सविकल्प स्व-संवेदन से जानता है, और प्रैक्टिस बढ़ जाये तो नींद में भी यही आता है कि "जाननहार जानने में आता है"।**

६४२

जाननहार है वह अपरिणामी, जानने में आया वह परिणामी। परिणामी अपरिणामी होकर अपरिणामी को जानता है।

६४३

मानसिक ज्ञान में, अनुमान ज्ञान में भी लेना पड़ेगा कि मुझे "जाननहार जानने में आ रहा है"।

६४४

स्पष्ट दर्शन ज्ञान ज्योति स्वरूप है। है...है... और है। क्योंकि चैतन्य का परिणमन दर्शन ज्ञानस्वरूप है। जानने और देखने की क्रिया प्रतिसमय होती है। उस क्रिया में देखनेवाला दिखता है। "जाननहार जानने में आ रहा है" उसमें भी उसे "जाननहार जानने में आता है" ऐसा न लेकर; मुझे पर जानने में आता है; दुकान जानने में आती है; मोटर जानने में आती है; पुत्र पुत्री जानने में आते हैं; पति जानने में आता है; पत्नी जानने में आती है; आहाहा..! वह पर को जानने रुका। और पर को अपना मानता है इसलिए अज्ञानी चार गति में भ्रमण करता है और दुखों को भोगता है। अब विषय को बदल दे न?

६४५

पर के साथ कर्ता-कर्म संबंध ना हो तो कोई बात नहीं! निमित्त-नैमितिक संबंध ना हो तो कोई बात नहीं!! परंतु ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध तो है या नहीं? मैं ज्ञाता और छह द्रव्य मेरे ज्ञेय! ऐसा नहीं है। भ्रान्ति है तुझे। तेरा ज्ञेय ज्ञान के बाहर नहीं होता। ज्ञान ही ज्ञेय है और ज्ञान ही ज्ञान है। ज्ञाता-ज्ञेय अंदर है, बाहर नहीं होते। **इसलिए ज्ञाता-ज्ञेय के व्यवहार का निषेध कर कि...."जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। तो वह व्यवहार का निषेध करके अंदर आता है। अंदर पहुँचने से पहले व्यवहार खड़ा होता है। वह इतना ही व्यवहार खड़ा होता है।**

६४६

"जाननहार जानने में आता है" इस मंत्र की साधना करने पर चैतन्यदेव हाजिर होते हैं।

६४७

रागादि और देहादि का लक्ष करता है तो सामान्य ज्ञान का तिरोभाव किया, अभाव नहीं हुआ। अब पर का प्रतिभास तो है परंतु उसके ऊपर का लक्ष छोड़कर...स्व के प्रतिभास पर लक्ष करे तो सामान्य का आविर्भाव होने पर सम्यग्ज्ञान होता है। पर का प्रतिभास रह जाता है और सामान्य का लक्ष हो जाता है। पर का प्रतिभास रह जाता है और पर का लक्ष छूट जाता है।

लोकालोक का प्रतिभास रह जाता है ज्ञान की स्वच्छता में, परंतु उसमें लक्ष कहाँ आया? लक्ष एक का प्रतिभास दो का। केवली को लक्ष आत्मा का प्रतिभास दो का। साधक को लक्ष एक का-स्व का, प्रतिभास दो का। अज्ञानी को लक्ष पर का एक का है

और प्रतिभास दो का है। इसलिए प्रतिभास दो के होते हुए भी उसका लक्ष कहाँ जाता है? ऐसा! उसका लक्ष पर के ऊपर जाता है? या "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता" - उस पर जाता है तो तो भेदज्ञान हो गया।

ज्ञान की पर्याय स्वपरप्रकाशक है। स्व-पर का प्रतिभास होता है, इसलिए भेदज्ञान हो सकता है। ज्ञान की पर्याय प्रमाणज्ञान का प्रमाण है। वह प्रमाणज्ञान की पर्याय है। दो का प्रतिभास है इसलिए उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं। इस...प्रमाणज्ञान में से "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। जानने में आता है परंतु मैं उसे नहीं जानता। जानने में आता है! परंतु जानता नहीं। जानने में आता है लोकालोक परंतु ज्ञानी का उसके ऊपर लक्ष नहीं है।

६४८

जैसे खुराक लेकर चम्मच छोड़ देता है, वैसे ज्ञेय जानने में आते हैं - वह चम्मच थी। "जाननहार जानने में आता है"- वह खुराक है।

६४९

ज्ञेय के जानने के काल में भी "जाननहार ही जानने में आता है"। ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकपने जानने में आता है। ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेय जानने में आते हैं ऐसा नहीं लिखा, तब भी ज्ञायक जानने में आता है ऐसा लिखा।

६५०

महासिद्धांत ---> पर जानने में आता है तब भी "जाननहार जानने में आता है"। स्व जानने में आता है तब भी "जाननहार जानने में आता है"। सर्व हालत में "जाननहार ही जानने में आता है।"

६५१

जाननहार है इसलिए स्वयं कर्ता, जानने में आया इसलिए स्वयं ही कर्म। आत्मा कर्ता और ज्ञानपर्याय कर्म, ऐसा भेद नहीं है। आत्मा को आत्मा में रहकर आत्मा में से जानता हूँ। फिर ना ही जाननहार को जानता, ना ही जाननहार है इसलिए जानता, ये कारक के भेद भी छूट जाते हैं।

६५३

"जाननहार जानने में आता है" वह रागादि भावकर्म के कर्तापने ज्ञात हुआ ऐसा नहीं, या रागादि भावकर्म के ज्ञातापने ज्ञात हुआ ऐसा नहीं, परंतु ज्ञायकपने ज्ञात हुआ।

६५४

अब तो निर्णय किया है कि जब तक यह देह है तब तक पूरी जिंदगी में ये दो बातें ही करनी हैं। तीसरी बात करनी ही नहीं है। "आत्मा जाननहार है, करनेवाला नहीं"।

अर्थात् परिणमनेवाला नहीं है। जाननहार है इसलिए "जाननहार ही जानने में आता है, दूसरा कुछ जानने में ही नहीं आता"। पर तो ज्ञात होता ही नहीं, उसकी तो क्या बात करें! परंतु प्रमत्त-अप्रमत्त भी ज्ञात नहीं होते। "जाननहार जानने में आता है"। ये दो बातें ऐसे ही रहनेवाली हैं। इसमें जरा भी हलचल होनेवाली नहीं है।

६५५

ज्ञायक के प्रतिभास को उपयोगात्मक करता है तो सम्यग्दर्शन होता है। राग के प्रतिभास को उपयोगात्मक करने पर "मैं रागी" तो मिथ्यादर्शन होता है। प्रतिभास मिथ्या या सम्यग्ज्ञान का कारण नहीं है। प्रतिभास बंध मोक्ष का कारण नहीं है। उसका लक्ष कहाँ जाता है? दो प्रतिभासित होते हैं उसमें से अहम् कहाँ करता है? ज्ञान की पर्याय में "जाननहारा वह जानने में आता है" और पर भी जानने में आता है। उसमें प्रतिभास दो के हैं परंतु लक्ष स्व के ऊपर नहीं आता। आहाहा! ऐसा है। है तो एकदम आसान! कला से है...तो एकदम आसान। अज्ञानी ने ऐसा उल्टा मारा है, और आहा!! व्यवहार का प्रतिपादन स्थान स्थान पर, हों! समयसार में है कि शुद्धनय का उपदेश विरल है।

६५६

हमारी परिणति अभी मलिन है। अभी कहेंगे हों!! जैसा है वैसा जानता है। पोपाबाई का राज नहीं है यह। एक-एक रत्ती का हिसाब है। साधक जानता है कि हमारी परिणति मैली है। अभी पूर्ण अरिहंत दशा हुई नहीं है। ध्येय को जाना, साध्य को भी जान लिया; परंतु साधक रह गया हूँ। क्या कहा?

ध्येय को जान लिया मैंने। द्रव्यदृष्टि से पूर्ण शुद्ध परमात्मा हूँ और साध्य को भी जाना- सिद्ध पर्याय साध्य है। साध्य अर्थात् ज्ञान में ज्ञेय आ गया है। परंतु अभी तक साधक की स्थिति...!! हमारी स्थिति पहुंची नहीं है। साधक अवस्था में हूँ; साध्य अवस्था होनेवाली है...परंतु उसे उतावल भी नहीं है और प्रमाद भी नहीं है। हम तो आत्मा के आश्रय में रहते हैं। "सब कुछ होने योग्य होगा और जाननहार जानने में आया करता है।" एक कलश में तीन बात हैं।(स.सार कलश ३)

६५७

जिस उपयोग में प्रतिमा जानने में आती है उस ही उपयोग में जाननहार जानने में आता है। विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान में जाननहार जानने में आते हुए भी मुझे जानने में नहीं आता, तब तिरोभाव हो जाता है।

६५८

ज्ञेय जानने में नहीं आता परंतु तुझे "जाननहार जानने में आता है"। ज्ञेय से व्यावृत्त हो जा तो तुझे ज्ञायक जानने में आएगा। ज्ञान नहीं बदलना है। विषय बदल दे।

६५९

जिस ज्ञान की पर्याय में "जाननहार जानने में आता है" उस ज्ञान की पर्याय का आत्मा कर्ता नहीं है इसलिए जो नया जाननहार हुआ वह भी ज्ञान की पर्याय का कर्ता नहीं है। कर्ता तो नहीं है परंतु वास्तव में जानता भी नहीं है। जानने की क्रिया का अहम् जिसमें हुआ है ऐसे जाननहार को जानता है।

६६०

दूसरा जानने में आता ही नहीं, जो जानने में आता है वह जाननहार ही है। वह अस्ति, नास्ति अनेकांत है।

६६१

इस इन्द्रियज्ञान से मोह की उत्पत्ति हुई है और इन्द्रियज्ञान पर को जानता है। तुम 'मना' करते हो, "मैं पर को नहीं जानता" तो बेचारा इन्द्रियज्ञान शिथिल होकर मर जाएगा, और आत्मज्ञान प्रगट होगा। यह अंदर जाने का उपाय है कि मैं पर को नहीं जानता, परंतु "जाननहार ही जानने में आता है" और यह महामंत्र है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि पर जानने में आता है वह तो भ्रान्ति हो गई है तुझे।

६६२

"जाननहार जानने में आता है" उसका विश्वास नहीं किया वह तो दुःख है। जाननहार का अनादर किया इसलिए आनंद नहीं आया। जानने में आता है वह तो मैं ही हूँ तो आनंद आया।

६६३

ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव करता है इसलिए प्रतिभास के ऊपर से लक्ष छूट जाता है। नैमित्तिक के ऊपर से लक्ष छूटता है और त्रिकाली स्वभाव के ऊपर दृष्टि जाते ही, तन्मय होकर ज्ञायक को जान लेता है अर्थात् आविर्भाव हो जाता है। सभी को ज्ञायक का प्रतिभास तो होता है। परंतु समय-समय उसका तिरोभाव करता है और पर के ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव करता है, उसका नाम अज्ञान। कोई जीव ऐसा जानता है कि: पर जानने में नहीं आता और "जाननहार जानने में आता है" तो ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव करता है और सामान्य ज्ञान का आविर्भाव करता है।

६६४

आहा! (१) **ज्ञायक** (२) **उपयोग** (३) **स्व-पर का प्रतिभास। चौथे पोइंट पर या तो ज्ञान का ज्ञानत्व या ज्ञान का अज्ञानत्व।** बात यहाँ पर आकर खड़ी रह जाती है। या राग, दुःख के परिणाम का कर्ता होता है, या ज्ञान का कर्ता होता है। ज्ञायक का प्रतिभास होता है वह ज्ञान तो ज्ञायक से अनन्य है। फिर भी उस ज्ञान में राग को मैं

जानता हूँ- तो जाने हुए का श्रद्धान हुए बिना नहीं रहता। अब उसे बंद करके "जाननहार जानने में आये", और फिर राग जानने में आये तो व्यवहार कहलाता है। फिर राग जानने में आये न वह व्यवहार में जाता है। फिर राग जानने में आये तो अध्यवसान नहीं होता। जब तक उसे राग जानने में आता है तब तक साधक को चारित्र का दोष है। फिर से उसे तिरोभाव करना पड़ेगा, तब अंदर जाया जाएगा।

६६५

एक बार जिसने जाननहार का आनंद प्राप्त किया है उसे तो वह का वही...वह का वही...."जाननहार ही जनाया करता है"। विषय पलटता नहीं है।

६६६

लिखने की क्रिया भिन्न है। विकल्प की क्रिया भिन्न है। व्याकरण में शब्द में दोष हो तो ग्रहण मत करना, अनुभव से ग्रहण करना। शब्द म्लेच्छ मत होना। मैं अपने निज वैभव से शास्त्र लिखता हूँ। अनुभव चालू है। "जाननहार जानने में आ रहा है"। एक बार अनुभव में आया ज्ञातः एक बार जानने में आया वह सर्व अवस्थाओं में जानने में आता है अतः आनंद चालू है।

६६७

"उपयोग में जाननहार जानने में आता है" इसलिए तो उपयोग का अस्तित्व है। उपयोग में निरंतर जाननहार का अभिषेक हो रहा है।

६६८

"जाननहार को जानूँ आठों याम इसके सिवाय दूसरा नहीं काम"।

६६९

राग ज्ञेय है; राग में ज्ञान नहीं है। पूज्य गुरुदेव ने हैदराबाद में बाबूभाई झवेरी को कहा; "जो ज्ञान राग को जानता है वह अज्ञान है।" आत्मा को जानता है तो तो सम्यग्ज्ञान कहलाता है। राग को जानता हूँ; दुःख को जानता हूँ; पर को जानता हूँ; वह अज्ञान कहलाता है। उसका आविर्भाव हो गया।

आविर्भाव कब होता है पता है? ज्ञायक के प्रतिभास का तिरोभाव होता है तब ही अज्ञान का आविर्भाव होता है। साधक होने के बाद के आविर्भाव की बात अलग है। ज्ञायक का आविर्भाव रहे तो रागादि का तिरोभाव होता है... फिर उसका (प्रतिभासरूप ज्ञेयाकर का) भी आविर्भाव होता है और यह...तो केवली में भी है। साधक में भी है, परंतु वह बात अलग है।

६७०

"जाननहार जानने में आता है वह ही मैं हूँ" इसप्रकार जाननहार के अस्तित्व को

ग्रहण कर।

६७१

"जाननहार जानने में आता है", वह जानता हुआ जानने में आता है। मैं जाननहार हूँ ऐसे अभेदरूप से जाननेरूप परिणमा है। वह ज्ञान ही पूरा परिणामी आत्मा है और वही ज्ञेय है।

६७२

परपदार्थ के लक्ष से ज्ञान नहीं होता। संतों के शब्द हैं। विषय और कषाय उसके ऊपर बहुत घोलन चला। "मैं जाननहार हूँ करनेवाला नहीं हूँ। जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता है।" उसमें यह... मंत्र में ही है। दो बात हैं। मैं पर को नहीं जानता उसमें विषय जीता जाता है। मैं कर्ता नहीं हूँ उसमें कषाय जीती जाती हैं। मंत्र में से ही निकलता है कि मोह कैसे जीता जाये। यह मोह के नाश का उपाय है।

६७३

आँख भले पर के सामने हो, आँख का उघाड़ वहाँ है, और ज्ञान का उघाड़ अंदर में है। मुझे तो "जाननहार जानने में आ रहा है" तो ज्ञान अंदर में मुड़ जाता है, और अनुभव हो जाता है।

६७४

सामान्य का आविर्भाव होता है तब अनुभव हुआ, फिर वह सविकल्पदशा में आता है, तब दोनों का आविर्भाव होता है। अर्थात् प्रमाण ज्ञान में दोनों का आविर्भाव होता है। सामान्य का तो आविर्भाव रहता है, और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव भी होता है। परंतु...ज्ञायक का तिरोभाव हो जाए तो शुद्धनय से आत्मा च्युत हो जाता है।

थोड़ी सूक्ष्म बात है, लेकिन हितरूप है। "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" संध्या बहन! यह टंकोत्कीर्ण बात है। श्रोता: सही है। कोई मानो या ना मानो!! अनुभव करना हो उसकी यह रीति है। स्वप्रकाशक के बिना स्वपरप्रकाशक का व्यवहार ही खड़ा नहीं होता।

६७५

जिज्ञासा : छह द्रव्यों को जानता है उसे अध्यवसान क्यों कहा?

समाधान : उसका ज्ञान जानता तो आत्मा को है, और उसका निषेध करता है कि मुझे आत्मा जानने में नहीं आ रहा, किन्तु मुझे छह द्रव्य जानने में आ रहे हैं। अर्थात् अपने को जानना छोड़कर...शुद्धनय से च्युत होता हुआ वह अज्ञानी बन जाता है। अकेले छह द्रव्यों को जानता है इसलिए अज्ञानी नहीं है। अपने को चूककर छह द्रव्यों को जानता है तो छह द्रव्य में आत्मबुद्धि हुए बिना रहती ही नहीं, यह नियम। यहाँ तो (आत्मा

में) आत्मबुद्धि हुई ही नहीं।

अब साधक को सविकल्प में छह द्रव्यों को जानता हूँ ऐसा विकल्प उठता है। फिर पुनः लेता है कि छह द्रव्यों को जानता ही नहीं। कि: "मुझे जाननहार जानने में आता है"। फिर से उपयोग अंदर में आया करता है। चारित्र के लिए भी निषेध करना पड़ता है।

६७६

विचक्षण जीव है वह ऐसा लेता है कि: "**जाननहार ही जानने में आता है"। वह अस्ति वाक्य है। "जाननहार जानने में आता है, और पर जानने में नहीं आता", यह अस्ति-नास्ति वाक्य है।**

६७७

"जाननहार जनाया करता है" इसलिए तो राग में आत्मबुद्धि नहीं होती।

६७८

जिज्ञासा : अनुभव होने पर क्या जानने में आया?

समाधान : "जाननहार जानने में आता है" ऐसा जानने में आया। परंतु पर जानने में आता है ऐसा जानने में नहीं आया।

६७९

आत्मा कहना? जाननहार कहना? और परको नहीं जानता और स्व को ही मात्र जानता है ऐसा कहना! यह अलौकिक बात है। कर्ताबुद्धि जाती है, फिर ज्ञाताबुद्धि भी जाती है। जाती है तो अनुभव के काल में एक समय में; परंतु अध्ययन में थोड़ा टाइम लगता है। अधिक से अधिक ६ महीने लगते हैं। जयपुर शिविरों में मैं जाता तब विद्यार्थियों को कहता...३ महीने का अकर्ता का अभ्यास करो। और फिर ३ महीने "मैं पर को जानता ही नहीं" वह अभ्यास करो। २ वाक्य हैं..."मैं जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं"। "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। यह...'वास्तव' शब्द बहुत ही मार्मिक इंपॉर्टेंट है।

६८०

अज्ञान अवस्था हो, बहिरात्मा हो, अंतरात्मा हो या परमात्मा हो, सभी को उनके प्रगट ज्ञान में "जाननहार ही जानने में आता है"।

६८१

छूटने का एक ही उपाय है, धर्म करना हो तो! "जाननहार जानने में आ रहा है" उसे जान। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

६८२

तीन अँगुलियों में, पहली अँगुली ज्ञायक, तीसरी लोकालोक और इन दोनों के

बीच में ज्ञान है। (प्रैक्टिकल समझाते हैं)। अब ज्ञान का मुख तीसरी की तरफ गया तो अज्ञान। ज्ञान का मुख इसकी तरफ आया अर्थात् पहली अँगुली की तरफ आया तो सम्यग्ज्ञान। भगवान हो गया। ज्ञान बीच में है। इधर ज्ञायक है, इधर परज्ञेय है। स्वज्ञेय परज्ञेय का प्रतिभास तो हुआ जरूर। मगर इस ज्ञान में ज्ञायक नहीं आता। जैसे ज्ञायक नहीं आता वैसे परज्ञेय भी नहीं आता। बिल्कुल नहीं आता है। दोनों का प्रतिभास आता है।

ज्ञायक ज्ञान में नहीं आता हों! तो तो ज्ञान के नाश से ज्ञायक का नाश हो जाए। दोनों का प्रतिभास होता है। दोनों के प्रतिभास में उसे ऐसी भ्रान्ति हो गई है कि मैं पर को जानता हूँ। वह अज्ञान हो गया।

इस लोकालोक को मैं देखता ही नहीं, "जाननहार जानने में आता है" तो लक्ष इसके-ज्ञायक के ऊपर आया। ज्ञायक के ऊपर आने पर निर्विकल्पध्यान हो गया।

६८३

अरे! तुझे "जाननहार ही जानने में आ रहा है"। तेरी देर से देर है। स्वरूप बहुत स्पष्ट बाहर आ गया है।

६८४

'जाननहार' "जाननहारपने ज्ञात होता हुआ जाननहार मुझे जानने में आ रहा है"।

६८५

उपयोग में उपयोग तो है। यह...शब्द है प्रतिभास का। पहला शब्द है **"उपयोग में उपयोग है"। यह...प्रतिभास का है। वहाँ अनुभव नहीं है;** वेदन नहीं है।

(श्रोता:- सही है।)

(श्रोता: १७, १८ गाथा में आबाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आ रहा है, उसका खुलासा हो गया!) खुलासा हो गया ना?! **नहीं तो सभी को अनुभव होता। सभी सम्यग्दृष्टि हो जाते। इस...वाक्य को यदि निश्चय में उतार लो तो हो गया! ज्ञायक का आविर्भाव करे तो सम्यग्दर्शन होता है।** आहा! इतनी देर है। आविर्भाव करो। श्रद्धा का बल आ जाए... "जाननहार जानने में आता है..." श्रद्धा का बल आ जाए तो उपयोग प्रत्यक्षरूप हो जाता है। परोक्ष तो है, परंतु प्रत्यक्षरूप हो जाता है।

६८६

आत्मा पर को नहीं जानता उसमें विषय जीता जाता है। विषय जीतने पर कषाय जीती जाती है। फिर राग को करने की बात कहाँ रही? जाने हुए का श्रद्धान होता है। "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" उसमें विषय जीता

जाता है। "जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं", इसमें जीव का असली स्वरूप लक्ष में आता है, वह अनुभव में आता है। इसलिए संवर होता है। "जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं" वह द्रव्य का निश्चय है। "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता" वह ज्ञान की पर्याय का निश्चय है। ये दो बातें आगम से प्रसिद्ध हैं।

६८७

रेगिस्तान में पानी नहीं है फिर भी हिरण को पानी भासित होता है वह भ्रान्ति है, वैसे ही रागादि का कर्ता नहीं है और कर्ता मानता है तो भ्रान्ति है। वैसे ही शुभाशुभभाव आते हैं उनका 'मैं जाननेवाला हूँ और वे जानने में आते हैं'- वह भ्रान्ति है। शुभाशुभभाव जानने में आते हैं या जाननहार जानने में आता है? आहा! २७१ कलश में राजमलजी ने छह द्रव्य को जानता है, वह भ्रान्ति कही है। अब छह द्रव्यों में पुद्गल को जानता है, वह भ्रान्ति; अर्थात् पुद्गल के परिणाम शुभाशुभभाव हैं उन्हें जानता है वह भी भ्रान्ति। इसलिए शुभाशुभभाव को जानना बंद कर दे। उन्हें जाना करेगा तो उसमें आत्मबुद्धि होगी। क्योंकि जाने हुए का श्रद्धा हो जाएगा।

जानने में शुभाशुभभाव आए तो उनमें अहंपना आए बिना रहेगा ही नहीं। वहाँ छह द्रव्यों को जानता हूँ वह भ्रान्ति। छह द्रव्य में पुद्गल। पुद्गल में तीन भेद, नोकर्म द्रव्यकर्म भावकर्म। यह आया है ना इसमें। भावकर्म कषाय है, उसके दर्शन करने हैं तुझे!? कषाय के दर्शन करने से धर्म नहीं होता।

६८८

तुझे पर का लक्ष छोड़ने की भी जरूरत नहीं है। परंतु मैं पर का लक्ष करता हूँ यह मान्यता छोड़ दे। "मैं जाननहार को जानता हूँ"।

६८९

पुद्गल शब्दरूप परिणमता है इसलिए राग-द्वेष-मोह होता है ऐसा नहीं है। ऐसे ही ज्ञान आत्मा को जाननेरूप परिणमता है इसलिए राग-द्वेष-मोह होता है वैसा नहीं है। परंतु "मुझे जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा भूलता है। और मैं पर को जानता हूँ, सुनता हूँ, उसमें राग-द्वेष-मोह की उत्पत्ति होती है।

६९०

लक्ष्य लक्षण का भेद नहीं पड़ता ऐसा "जाननहार जनाता है"।

६९१

सामान्य ज्ञान में आत्मा जानने में आता है, और विशेष शुद्धोपयोग हो जाता है। सामान्य ज्ञान में तो सभी को बाल-गोपाल सभी को जानने में आता है। जानने में आता है इसलिए सम्यग्दर्शन है ऐसा नहीं है। तो तो सब ही सम्यग्दृष्टि होने चाहिए। आहा! और

यदि जानता ही नहीं तो तो ज्ञान का अभाव होने से द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं रहता।

लक्षण के अभाव से लक्ष्य का अभाव हो जाता है। इसीलिए लक्षण प्रगट है। प्रगट लक्षण में आत्मा सभी को अनुभव में आता है। **अनुभव में आता है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है। जानने में आता है, परंतु उसे जानता नहीं।** जनाता तो है सभी को!! परंतु उसे जानता नहीं। जाननहार जानने में आता है, वह ही जानने में आता है, ऐसा घोलन अंदर में से आता है और जाननहार जानने में आता है उसमें ज्ञान नया प्रगट होता है। अनंतकाल से प्रगट नहीं हुआ था हों! यह मंत्र है हों! इस मंत्र में १२ अंग रहे हुए हैं।

६९२

यह वाक्य साधारण लगता है "जाननहार जानने में आ रहा है" जाननहार जानने में आएगा ऐसा नहीं। "जाननहार जानने में आता है" सभी को प्रत्येक समय "जाननहार जानने में आता है" और; राग जानने में नहीं आता। छः द्रव्य ज्ञात नहीं होते। आहा! छः द्रव्यों को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान अलग और जिस सामान्य उपयोग में आत्मा जानने में आता है वह अलग चीज है। **समय एक पर्याय एक, भाग दो हैं। आहाहा! अज्ञानी के भी दो भाग हैं। इसीलिए तो बाल-गोपाल सभी को अनुभव में आता है ऐसा कहा ना?**

इन्द्रियज्ञान तो सर्वथा भिन्न है। वहाँ कथंचित् भिन्न-अभिन्न का पाठ नहीं है। और लक्षण तो कथंचित् भिन्न-अभिन्न है। कथंचित् अभिन्न है ना इसीलिए जानने में आता है। सर्वथा भिन्न में जानने में नहीं आता।

राग तो सर्वथा भिन्न है इसलिए राग में जानने में नहीं आता। इन्द्रियज्ञान जो परावलंबी है वह भी सर्वथा भिन्न है। और जो ज्ञान है वह "उपयोग लक्षणम्" उस...उपयोग में बाल-गोपाल सभी को अनन्यरूप से "जाननहार जानने में आता है"। कथंचित् अभिन्न है। अभेद है इसलिए जानने में आता है।

६९३

ज्ञान में आत्मा है इसलिए ज्ञान में आत्मा जानने में आया करता है। इसे विश्वास नहीं आता कि: "जाननहार जानने में आता है"। अनादि से अज्ञान भाव से ऐसा विश्वास आता है कि "मैं पर को जानता हूँ"। आचार्य भगवान "मना" करते हैं। जब तक तेरे अभिप्राय में है कि "मैं पर को जानता हूँ" तब तक तू अज्ञानी रहेगा।

६९४

भगवान आत्मा ज्ञान में जानने में ना आता होता तो उपयोग ही ना रहता। ज्ञान की पर्याय में "जाननहार जानने में आता है" इसीलिए तो ज्ञान है। मिथ्यात्व की पर्याय में "जाननहार जानने में नहीं आता" इसलिए मिथ्यात्व अँधा है, जड़ है।

६९५

अनुमान में जो स्वीकार करेगा कि "जाननहार जानने में आता है" वह व्यवहार श्रद्धा है। वह परोक्ष है परंतु उसे जब प्रत्यक्षरूप से "जाननहार जानने में आएगा" वह ही निश्चय है।

६९६

(सम्यक्त्व सन्मुख जीव कहता है कि) पर जानने में आता है यह बात लाया कहाँ से? (स्वरूप में तो है ही नहीं।)

जाननहार के पक्ष में उसका विकल्प इतना लिपट गया था तब यह बात आई। थोड़े काल में पक्षातिक्रांत होकर अनुभव होगा, और मोक्ष में जाएगा।

"जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता"। आहा..! कुदरती वाणी अंदर से ही आती है। अनुभव की वाणी तो अनुभव में से ही आती है। कितनों को कोरी धारणा में से आती है। परंतु यह तो अनुभव ज्ञान और धारणा ज्ञान से अलग बीच की धारा की वाणी थी। पर को जानता है वह संतों ने व्यवहार कहा है। उसका उसे निषेध आया।

६९७

चेतना में चेतन जानने में आता है इसीलिए तो अनुमान ज्ञान में आ रहा है।

६९८

वास्तव में जाननहार जाननहार ही है, जाननहार को ही जाना करता है। और "जाननहार ही जनाया करता है"।

६९९

भगवान! तू पर को जानता ही नहीं। तो पर्याय का लक्ष छूटता है और "जाननहार जानने में आ जाता है"।

७००

"जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता", श्रद्धा का विषय आसान है। ज्ञान का विषय कठिन है।

७०१

जिसमें पाँच महाव्रत जानने में आते हैं उस ज्ञान में तो "जाननहार ही जनाता है"। इसलिए स्वपरप्रकाशक वह स्वप्रकाशक ही है।

७०२

प्रत्येक इच्छा स्वरूप को ही प्रसिद्ध करती है। ऐसी इच्छा होती है कि मुझे आत्मा का अनुभव होवे, तो वह इच्छा भी तेरी सफल होगी। क्योंकि "निरंतर जाननहार ही जानने में आता है" ऐसा अनुभव तो हो रहा है। स्वीकार कर ले!!

७०३

"जाननहार जानने में आता है" यह वाक्य सभी के लिए मंत्र है। दिन में १० बार विचार करना। अंग्रेजी में कहते हैं कि: किसी को क्रोध आया हो तो one two three ऐसे ten तक बोले तो गुस्सा ठंडा पड़ जाता है। ये बातें तो सुनी हैं।

वैसे ही किसी को कोप आ गया हो। सेठ का नौकर के ऊपर और सासु को बहू के ऊपर; पिता हो तो पुत्र पर, पुत्र हो तो पिता पर कोप होवे तब "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा दस बार बोलना। कोप ना हो तब भी दिन में दस बार तो अवश्य आत्मा को याद करना। यह क्या कहा? "जाननहार जानने में आता है" उसमें किसे याद किया!! आत्मा जाननेवाला है ना! आत्मा करनेवाला नहीं है। आहाहा! यह महामंत्र है। इस तत्त्व के विचार में शुभभाव तो होता है परंतु मिथ्यात्व गलने लगता है। दूसरी कर्ताबुद्धि हो और क्रिया में शुभभाव तो होते हैं, परंतु मिथ्यात्व दृढ़ होता है। आहाहा!

लोग शुभभाव को आगे करते हैं, तब मिथ्यात्व तीव्र होता है, वह उसे खबर नहीं पड़ती। शुभभाव से धर्म मानता है। यह क्रिया मैं करता हूँ। आहा! "जाननहार जानने में आता है" उसमें तो लक्ष आत्मा के ऊपर आया। दूसरा सब हो गया। आहा! पर के लक्ष से जो पाप के परिणाम होते थे, वे बंद हो गए। आहा! "जाननहार जानने में आता है दूसरा कुछ जानने में नहीं आता।"

७०४

आहा! यह महामंत्र है। ऐसे मंत्र से अनंतों आत्मायें सिद्धपद को प्राप्त हो गई हैं। ऐसे मंत्र से हों! यह मंत्र आजकल का नहीं है, अनादि का है। जैसे नमस्कार मंत्र अनादि का है ना? आहा! ऐसे ही यह मंत्र भी अनादि का है। "जाननहार जानने में आता है" यह समयसार में आया। बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आता है। "जाननहार जानने में आता है" यह कोई नई बात नहीं है, समयसार की बात है। अरे! जाननहार जानने में आता है तो मिथ्यात्व गलने लगता है, और तीव्र कषाय के परिणाम भी उत्पन्न नहीं होते: जीवों को कषाय की मंदता कैसे करनी वह भी पता नहीं है।

७०५

जिज्ञासा : ज्ञान और राग दोनों एकसाथ उत्पन्न भी होते हैं और ऐसा आभास भी होता है, उस समय ज्ञान राग का लक्ष किस प्रकार छोड़े!!

समाधान : छोड़े तो छूटे। ज्ञायक का लक्ष हो जाए तो राग का लक्ष छूट जाता है बस। छोड़ना नहीं है और किस प्रकार छूटे वह पकड़ के रखना है। या तो राग मेरे में होता है; वह ध्येय की भूल। या तो राग को मैं जानता हूँ वह ज्ञेय की भूल। अनुभव नहीं होगा। "जाननहार जानने में आता है राग जानने में ही नहीं आता ना मुझे"।

ऐ भाई! राग है और जानने में ना आए ! है? कहाँ है परंतु? यहाँ इस तरफ आत्मा में आकर देख ना! इस तरफ आकर देखता हूँ तो मेरे में राग नहीं है। राग हो तो हो! मैं तो शुद्धात्मा परमात्मा हूँ। निज परमात्मा में भक्ति का राग होता है या नहीं? जरा भी नहीं होता। साधक को अस्थिरता का राग होता है तो वह उसे अपना स्वरूप नहीं जानकर भिन्न जानता है।

७०६

आत्मा को याद कर तो कषाय की मंदता सहज ही होती है। कर्ताबुद्धि के बिना होती है। उसमें इस शुद्धनय का उदय होता है। जो ज्ञान शुद्ध के सन्मुख हुआ वह ज्ञान भी शुद्ध हो गया। 'शुद्धनय' शब्द है ना? अर्थात् शुद्धोपयोग आत्मा के शुद्ध स्वभाव को प्रगट करता हुआ उदय होता है। शुद्धनय वह विभाव को प्रगट नहीं करता। "अंतर्मुख हुआ ज्ञान अकेले सामान्य को अवलोकन करता हुआ और विशेष को अवलोकन नहीं करता हुआ"। विशेष अर्थात् पर्याय। पर्याय होने पर भी पर्याय के ऊपर से लक्ष छूट जाता है। द्रव्य सामान्य के ऊपर लक्ष आता है।

लड्डू का उदाहरण दिया था ना? लड्डू दिखता है और बर्तन भरा हुआ है परंतु दूसरा कुछ नहीं दिखता।

७०७

अनुभव का काल आता है ना तब "जाननहार जानने में आता है"। तब उपयोग आत्मसन्मुख होता है। उसे शुद्धनय कहने में आता है। आत्मा के स्वभाव का त्रिकाल स्वभाव जो पारिणामिक भाव है; नित्य निरावरण है, प्रत्यक्ष प्रतिभासमयी है; ऐसे आत्मा के स्वभाव को प्रगट करता हुआ उदय होता है। अकेले स्वप्रकाशक ज्ञान में भगवान आत्मा अनुभव में आता है। पर के लक्ष से अनुभव में नहीं आता।

७०८

आत्मा में राग नहीं है, आत्मा के ज्ञान में भी राग नहीं है। ऐसा ज्ञान प्रत्येक समय सभी को प्रगट होता है। जिसमें बाल-गोपाल सभी को आत्मा ज्ञात हो रहा है। आहाहा! यदि राग और ज्ञान की पर्याय का एकत्व हो गया होता तो ज्ञान की पर्याय स्वच्छ ना रहती। और यदि स्वच्छ न होती तो उसमें ज्ञायकभाव के दर्शन नहीं होते। दर्शन होते हैं वे ऐसा बताते हैं कि ज्ञान उपयोग और राग वे उस समय भिन्न-भिन्न रहे हुऐ हैं। जैसे राग में आत्मा नहीं जनाता वैसे राग और ज्ञान उपयोग एकमेक हो गए हों तो, तो तो उपयोग मलिन हो गया होता, उपयोग की स्वच्छता का अभाव हो गया होता, तो आत्मा जानने में ना आता। अनुभव में ना आता। स्वच्छता का सद्भाव है इसीलिए आत्मा जानने में आता है। "जाननहार जनाता है" तो शुद्धोपयोग हो जाता है। स्वच्छता प्लस शुद्धता प्रगट हो

जाती है। स्वच्छता अनादि से है। अनुभव होता है तब आनंद आता है।

७०९

योग्यता कब पकती है? जिसे स्वभाव का पक्ष है उसकी योग्यता पक गई है और व्यवहार के पक्षवाले की योग्यता पकी नहीं है, ऐसा ज्ञानी को ख्याल में आता है। ज्ञानी को ख्याल आता है कि यह तो स्वभाव के पक्ष में नहीं है। व्यवहार के पक्षवाला आत्मा से दूर है। व्यवहारनय दूरवर्ती है। दूरानुदूरवर्ती है। भगवान आत्मा "मैं तो शुद्ध हूँ; मैं तो अभेद हूँ; ज्ञायक हूँ; सामान्य हूँ" ऐसा जो निश्चयनय का विकल्प है, "है" विकल्प! परंतु... वह विकल्प निकटवर्ती है। निकटवर्ती होने से आत्मा का ताप जैसे लगता है (तो विकल्प शिथिल होता जाता है)। जैसे सर्दीयो में ठंड लगती हो और अग्नि के पास जाए तो ठंड उड़ जाती है। वैसे ज्ञायक का ताप ऐसा है कि, "मैं ज्ञायक हूँ"; "जाननहार जानने में आता है", "जाननहार जानने में आता है" ऐसे निश्चय के पक्ष में आया क्या और अनुभव हुआ क्या! शास्त्र में ये सभी बातें हैं हों! और ज्ञानियों के अनुभव में भी आती हैं।

७१०

यह ज्ञान की दिव्यता है कि ज्ञान में सभी को "जाननहार ही जानने में आता है"।

७११

"नहीं" शब्द है वह भेदजन्य विकल्प के नाश के लिए है। "जाननहार जानने में आता है" फिर "नहीं जानता जाननहार को वगैरह....!"

७१२

"जाननहार का जानकार होने से स्वयं जाननहार ही है"। स्वयं ही जनाता है। स्वयं ही जनाता है ऐसा स्वयं ही जाननहार है। इसप्रकार "जाननहार जानने में आता है" उसे जान! उसमें सब आ गया।

७१३

विशेष अज्ञानरूप ज्ञान परिणाम को करता है, अर्थात् अज्ञानरूप अज्ञान परिणाम को करता है। ज्ञान की गर्दन मरोड़ देता है। ज्ञान का अज्ञानत्व कर दिया। प्रगट तो ज्ञान ही होता था, उसमें प्रगटपने तन्मयपने अपना आत्मा ज्ञेय होता था परंतु जहाँ राग जानने में आता है, वहाँ ज्ञान का अज्ञान कर दिया। यह राग मेरा है, मैं राग को करता हूँ, राग मेरा, पूरा संसार खड़ा हुआ। राग ज्ञाता का ज्ञेय है ऐसा जानने के काल में भूलता है। परंतु यह "जाननहार जानने में आता है" उससे राग भिन्न जानने में आता है, उसका भेदज्ञान नहीं करता।

(१)राग ज्ञान में आता नहीं। (२) ज्ञान राग को जानता नहीं, (३) ज्ञान में राग जानने में भी नहीं आता क्योंकि भिन्न है। (४) ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है और ज्ञान

ज्ञायक को जानता भी है।

७१४

सब कुछ जानने में आता है वह ज्ञेयाकार (ज्ञान) है, ऐसा एक "जाननहार ही जानने में आता है" वह ज्ञानाकार (ज्ञान) है।

७१५

जाननहार को ही जान रहा है वह परमगुरु है।

७१६

भेदविज्ञान जिसका मूल है; "जाननहार जानने में आता है, और पर जानने में नहीं आता"। उसका नाम भेदविज्ञान है। अकर्ता हूँ और कर्ता नहीं, दो ही दोष हैं। ज्यादा तो कुछ नहीं है। ज्यादा हो तो याद ना रहे। ये तो दो ही बात हैं। पर का कर्ता नहीं और पर का ज्ञाता नहीं। ऐसे भेदज्ञान से आत्मा का अनुभव होता है।

७१७

अनादिकाल से लक्ष बाहर है और ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है" यह बात उसने किसी काल में सुनी नहीं है; और सुनी हो तो वह बात उसे बैठती नहीं है। एक तर्क आया! तर्क किया जा सकता है कि: वर्तमान वर्तते ज्ञान में, पर्याय में आत्मा जानने में आता हो तो उसे सम्यग्दर्शन हो जाना चाहिए अर्थात् आत्मा का अनुभव हो जाना चाहिए। तो सम्यग्दर्शन तो नहीं है। ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है। "यह ज्ञायक जानने में आता है वह मैं" ऐसी आत्मबुद्धि कहाँ करता है? और पर, देहादि जानने में आते हैं ऐसा ग्रहण करता है।

ज्ञान में स्व-पर दोनों जानने में आने पर भी वह स्व के प्रतिभास को उपयोगात्मक करके पकड़ता नहीं। पर का प्रतिभास होता है उसे उपयोगात्मक करके पकड़ता है। ये नवीनभाई हैं, ये फलाना भाई हैं.... इसप्रकार परज्ञेय को उपयोगात्मक करता है।

ऐसे ही ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है, समय-समय ज्ञायक जानने में आता है, उसका तिरोभाव करता है। और इसका ("पर" का) आविर्भाव करता है। (परंतु जब) यह जानने में नहीं आता मुझे मेरा "जाननहार आत्मा जानने में आता है"-इस बात को उपयोग पकड़ लेता है (तो ज्ञायक का आविर्भाव हो जाता है)। जानने में आता है इसलिए ज्ञात होना सरल है। जानने में न आता हो तो मुश्किल है। सभी को आत्मज्ञान हो जाए ऐसी सरल बात है।

७१८

दो तत्त्व एकदम भिन्न-भिन्न हैं। एक में दूसरे का अभाव है। जीव तत्त्व में रागादि

आस्रव का अभाव है। और सभी को जिस ज्ञान में आत्मा जानने में आता है ऐसे सामान्यज्ञान में भी आस्रव का अभाव है। रागादि उपयोग में नहीं आते। रागादि का प्रतिभास होता है उस समय भेदज्ञान करता है; "मुझे जाननहार जानने में आ रहा है", राग का प्रतिभास होते हुए भी राग का लक्ष छूट जाता है। राग का लक्ष छूटते ही ज्ञायक का लक्ष होता है उस समय निर्विकल्पध्यान में सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्रगट होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन होने के पश्चात चारित्र की बात आती है।

७१९

व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम का भेद व्यवहार नहीं है। निश्चय रत्नत्रय के परिणाम का भेद व्यवहार है। यह मिठास शक्कर की है। यह मिठास जो है ना वह शक्कर की है, इतना भेद व्याजबी है। परंतु यह शक्कर की कड़वाहट है यह तो है ही नहीं। शक्कर की मिठास है उसमें वह स्वाद नहीं आता। शक्कर मीठी है..शक्कर मीठी है..शक्कर मीठी है..शक्कर मीठी है, फिर मुँह में रखेगा। बोल अब शक्कर मीठी है? (मुँह बंद हो गया मौन।)

जैसे ही डली मुँह में रखी कैसी है शक्कर? जैसे ही स्वाद लेता है वहाँ विकल्प बंद हो जाता है। जबान बंद हो जाती है। मौन है। अकेला स्वाद लेता है।

इसीप्रकार मुझे जाननहार जानने में आता है - ऐसा मानसिक विचार भी छूट जाता है। और साक्षात् अनुभव होता है, उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहने में आता है।

७२०

आत्मा वास्तव में पर को जानता ही नहीं। "जाननहार ही जानने में आता है।" उसमें आत्मा का साक्षात् अनुभव होता है। प्रगट करने की अपेक्षा से प्रयोजन की सिद्धि होती है। **मिथ्यादर्शन होने पर भी उसके ज्ञान में से स्वपरप्रकाशक गया नहीं। उसके ज्ञान में भी अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा जना रहा है। स्वपरप्रकाशक गया नहीं।**

७२१

"मुझे एक जाननहार ही जानने में आता है" वह ही प्रैक्टिकल है।

७२२

एक को (पर को) जानता हूँ यह भ्रान्ति है। वैसे ही दो को (स्व-पर को) जानता हूँ यह...भी भ्रान्ति है।

जिज्ञासा : भ्रान्ति क्यों कहा?

समाधान : उसमें स्व-पर की एकता होती है। जुदाई नहीं है। "जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता" उसमें तो भेदज्ञान है। उसमें तो अंतर में चला

जाता है।

७२३

होने योग्य होता है उसे जानने के लिए रुके तो "जाननहार जानने में नहीं आता"। पर्याय जानने में आवे तो द्रव्य कहाँ से जानने में आये? पर्याय भी जाननहार द्रव्य होकर, अभेद होकर ज्ञात होती है।

७२४

स्वपरप्रकाशक वह मूल स्वभाव है। उसका व्यवच्छेद नहीं हो सकता। परंतु..उसमें से कोई विचक्षण जीव है वह ऐसा लेता है कि: "जाननहारा ही जानने में आता है", पर जानने में नहीं आता यह अस्ति-नास्ति अनेकांत है।

७२५

"जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है" फिर पर जानने में नहीं आता यह...याद नहीं करना, बाद में यह...विकल्प टूट जाता है।

७२६

"उपजे मोह विकल्प थी"; इन्द्रियज्ञान से मोह की उत्पत्ति तो हो गई। अब टले कैसे? कितना दान दे तब टले? कितने उपवास करें तब मोह टले? कितनी यात्रा करें तो मोह टले? कितने पदार्थों का त्याग करें तो मोह टले? तब श्रीमद् राजचंद्रजी ने कहा!! क्या कहा? "अंतर्मुख अवलोकतां विलय थता नहीं वार"। जो उपयोग बहिर्मुख गया है वह उपयोग अंदर में जाननहार को जानता है तब मोह की उत्पत्ति नहीं होती। तब उसने मोह का क्षय किया ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो क्षय भी नहीं करता परंतु आत्मा के अनुभव के काल में मोह की उत्पत्ति होती ही नहीं। "अंतर्मुख अवलोकतां विलय थता नहीं वार"।

७२७

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है" उसका कारण क्या है?

समाधान : ज्ञान और ज्ञायक तादात्म्य हैं इसलिए "जाननहार जानने में आया ही करता है"। और यह जानने में आता है वह तो "मैं ही हूँ"। ऐसा यदि ले तो अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है।

७२८

"जाननहार ही जानने में आता है" उसकी मुझे पूरी जानकारी है; क्योंकि वह अनादि से जानने में आ रहा है।

७२९

"जाननहारा जानने में आता है" ऐसे जाननहार को जानता है तब अनुभव होता

है। और जिस बात से अनुभव होता है वह ही आत्मा का त्रिकाल स्वभाव है।

७३०

जाननहार...जाननहार...जाननहार...है। उसमें करना कहीं नहीं आता। करना नहीं होता। जानना....., जानना, जानना ही आता है; परंतु करना..करना..करना..आता ही नहीं। करना यह...तो अज्ञान में से आता है। ज्ञान में से करने का भाव नहीं उठता। जो जाननहार जाननेरूप ज्ञात हुआ न, वह जाननेरूप परिणमता है। ऐसे साधक को "मैं इसे करता हूँ" ऐसा करने का भाव उत्पन्न नहीं होता।

बंध को करता नहीं, मोक्ष को करता नहीं। क्योंकि पर्याय उसके स्वकाल में "होने योग्य होती है।" यह कर्ताबुद्धि टालने का महामंत्र है। यह सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि में से आया हुआ महामंत्र है। "होने योग्य होता है और जाननहार जनाया करता है"। अपने परिणाम या पर के परिणाम "होने योग्य हुआ करते हैं, और जाननहार जनाता है"। एक बार जाननहार जानने में आता है फिर जाननहार जनाया ही करता है। एक बार जाननहार जानने में आए तो सम्यग्दर्शन। फिर जाननहार जानने में आया करे तो चारित्र है। दो बातें हैं।

७३१

जाननहार का जाननेवाला होने से ज्ञाता हूँ, यह मिथ्या एकांत नहीं है। यह तो स्वभाव है। और स्वभाव में (सम्यक) एकांत ही होता है।

७३२

"जाननहार ही जानने में आ रहा है" यह त्रिकाल स्वभाव बताया। और ऐसे स्वभाव का स्वीकार, उसमें अनुभव की विधि बताई।

७३३

परिणाम के पक्ष में विकल्प है। द्रव्य के पक्ष में भी विकल्प है। मध्यस्थ नहीं होता वह...! तो क्या करना अब? "ज्ञायकभाव मैं हूँ" इस प्रकार जहाँ उपयोग अंदर में जुड़ गया..वहाँ द्रव्य का जो पक्ष था एकांत का वह निकल गया, और परिणाम का पक्ष भी निकल जाता है; और परिणाम द्रव्यरूप हो जाता है। द्रव्यमय हो जाता है। अनन्य होता है। तब उसे इसप्रकार का विकल्प छूटकर, पक्षपात छूटकर और उस...परिणाम में अनुभव है। भेद से ऐसा कहते हैं कि परिणाम में अनुभव है। यह..अलग बात है। परिणाम का पक्ष था उसमें तो अनुभव नहीं होता, परंतु...अकेले द्रव्य के पक्ष में भी अनुभव नहीं होता। तो अब क्या करना? पक्षपात छोड़ दे और द्रव्य सामान्य के अंदर आजा।

मुझे तो ज्ञायक जानने में आता है। मुझे तो "जाननहार जानने में आता है"। तो वह परिणाम स्वयं परिणाम ना रहकर उस परिणाम का नाम परिणामी हो जाता है।

७३४

लक्षण प्रगट है। प्रगट लक्षण में सभी को आत्मा अनुभव में आता है। प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है। ज्ञात तो होता है परंतु उसे जानता नहीं है....! जानने में आता है...परंतु उसे जानता नहीं है। वह बाहर में इसको जानता है।

वह जब अंदर में काल आता है ना "जाननहार जानने में आता है...", "जाननहार जानने में आता है", "जाननहार जानने में आता है" ऐसा घोलन अंदर में से जब उठता है, उसमें ज्ञान नया प्रगट होता है। अनंतकाल से नहीं हुआ। इस मंत्र में ही हों!! इस मंत्र में बारह अंग का सार है। बाहर से साधारण लगता है। "जाननहार जानने में आता है। जाननहार जानने में आएगा ऐसा नहीं। जाननहार जानने में आता है सभी को!" प्रत्येक समय जाननहार जनाता है...और राग नहीं जनाता। छह द्रव्य भी नहीं जनाते। आहा! छह द्रव्यों को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान अलग है और सामान्य उपयोग में आत्मा जनाता है वह अलग चीज है। समय एक, पर्याय एक; भाग दो हैं। अज्ञानी को भी दो भाग हैं। बाल-गोपाल सभी को अनुभव में आता है; ऐसा कहा है ना!

७३५

"जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है" वहाँ अज्ञान कैसा?

७३६

आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानने का है। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा लोगे तो इन्द्रियज्ञान रुक जाएगा। ज्ञान ज्ञेयों से वापस मुड़ जाएगा। इसप्रकार पर का लक्ष छोड़कर ज्ञान को स्वभाव की तरफ मोड़कर..., जाननहार को जानने में रोकने से.., जाननहार को जानते रहने से....तुम्हारा काम हो जाएगा, तुम्हारा हित होगा।

जाननहार को जानने का पुरुषार्थ करने पर बहिर्मुखी ज्ञान रिबाउंड होकर अंतर्मुखी होगा। स्वभाव के सन्मुख होगा। यह भेदज्ञान की विधि है।

७३७

जैसे ही पर्याय की उपेक्षा हुई तो "जाननहारा जानने में आ गया"!

७३८

ज्ञान जानने में आता है ऐसा लेने पर "जाननहार जानने में आता है" ऐसा आ जाता है। क्योंकि वस्तु एक है।

७३९

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है" वह तो विकल्प है।

समाधान : विकल्प नहीं है वह तो मोक्ष है।

७४०

जानन क्रिया वह जाननहार की ही क्रिया होने से जाननहार को ही जानती है।

७४१

क्या जानने में आता है? क्या जानने में नहीं आता? वह बात मुनिराज घर बैठे करते हैं। तुम्हें जाननहार ही जानने में आता है। पर जानने में नहीं आता। इतना बोलकर मुनिराज मौन हो जाते हैं। कितनी दुर्लभ वाणी है!!

७४२

जीव पद में देह जानने में आती है? या जाननहार जानने में आता है?

७४३

राग जानने में नहीं आता; "जाननहार ही जानने में आता है।" यही भ्रान्ति टालने का उपाय है।

७४४

"परिणाम स्वयं होने योग्य होते हैं"। तो मैं कौन हूँ? उनका करनेवाला हूँ? "नहीं"। तो उनका जाननेवाला हूँ? "नहीं"। होने योग्य होता है। उसका लक्ष द्रव्य सामान्य पर आ जाता है, और "जाननहार जानने में आ जाता है"।

जाननहार नौ तत्त्वों को करता है...ऐसा नहीं है। जाननहार...नौ तत्त्वों के भेद को जानने रुके, वह जाननहार नहीं है। वह....नौ तत्त्वों को करता भी नहीं और उन्हें जानता भी नहीं। जाननहार को ही जानता है।

भूतार्थनय से नौ तत्त्वों को जानने पर सम्यग्दर्शन होता, होता और होता ही है। नवतत्त्व व्यवहारनय का विषय है। उस व्यवहारनय के विषय को भूतार्थनय से - परमार्थनय से जान! व्यवहारनय का विषय? उसे निश्चयनय से जानना? "हाँ"। व्यवहारनय के विषय को व्यवहारनय से जाने तो कर्ताबुद्धि रह जाएगी। "होने योग्य होता है" ऐसा ख्याल नहीं आयेगा। परंतु उसे भूतार्थनय से जान कि पर्याय सत्, अहेतुक, होने योग्य होती है, उसके स्वकाल में होती है... परिणाम का मैं कर्ता नहीं हूँ।

परिणाम का लक्ष आये तो कर्तापना और ज्ञातापना दिखता है ना! परिणाम का लक्ष रहे तो परिणाम की कर्ताबुद्धि होती है। परिणाम का लक्ष रहे तो परिणाम ज्ञेय होते हैं। परंतु परिणाम का लक्ष छूटा...कर्ताबुद्धि छूटी...ज्ञाताबुद्धि छूटने पर अभेद स्वभाव में आता है। अनुभव होता है। उसे नवतत्त्व को जानने पर सम्यग्दर्शन हुआ ऐसा कहने में आता है।

७४५

दूसरा कुछ जानने में नहीं आता ऐसा जब तक नहीं आएगा तब तक "जाननहार

जानने में आता है" ऐसा व्यवहार से विश्वास भी नहीं आयेगा।

७४६

परिणाम के दो प्रकार। एक कर्म के परिणाम और एक नोकर्म के परिणाम। वे ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं। **करता है पुद्गल और जानने में आते हैं ज्ञान में, तब उस ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है" उसे भूलकर इसे मैं करता हूँ ऐसी कर्ताबुद्धि करता है। यह बड़ा शल्य है। यह शल्य निकालने के लिए कर्ता-कर्म अधिकार लिखने में आया है।**

७४७

जिज्ञासा : कैसा आत्मा जानने में आता है?

समाधान : पर्याय को करे ऐसा आत्मा मुझे जानने में नहीं आता। वैसे ही पर्याय को जाने ऐसा आत्मा मुझे जानने में नहीं आता। **मुझे तो पर्याय को ना करे और ना जाने ऐसा "जाननहार जानने में आता है।"**

७४८

दुःख को भोगता है ऐसा दुःख होता है तुम्हें?

दुःख को आत्मा भोगता है यह बात करने के लिए तुम्हें मेरी तबियत की खबर निकालने के लिए नहीं आना। मुझे उसका स्मरण मत कराना..! आहाहा! मुझे ऐसा स्मरण कराओ कि भगवान आत्मा तो दुःख के काल में भी दुःख का भोक्ता नहीं है। और "जाननहार जानने में आता है"। दुःख का भोक्ता तो नहीं, परंतु दुःख का ज्ञाता भी नहीं है।

७४९

निश्चय के पक्ष में आकर कहता है कि मुझे "जाननहार जानने में आता है।" वास्तव में मुझे पर ज्ञात नहीं होता। भाव से हों! भाषा से नहीं। भाषा अलग और भाव अलग है। भाषा बोलता है उसे यह भाव है ऐसा नहीं समझ लेना। हाँ; नहीं तो धोखा खा जाओगे। परंतु उसमें अंदर में जो उसका वाच्य है, उसका भावभासन में परिणमन होना चाहिए। प्रथम भले ही मानसिक परिणमन वह पर से छूटता हुआ और स्व की तरफ मुड़ता हुआ ऐसा एक ज्ञान प्रगट होता है।

७५०

"जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है मुझे" वास्तव में परमार्थ से दूसरे को नमस्कार करने की मेरे में अयोग्यता पड़ी है। प्रकाश नाम की शक्ति है इसलिए वैद्य भी स्वयं और वेदक भी स्वयं ही है।

७५१

जाननहार कर्ता और जानने में आया सामान्य स्वभाव वह कर्म, ऐसा कर्ता-कर्म है; परंतु ऐसा नहीं है तब अनुभव होता है। ऐसा है तब तक अनुभव नहीं होता। परंतु राग का कर्ता वह बात तो यहाँ है ही नहीं। दिल्ली बहुत दूर है। उसकी तो यहाँ बात ही नहीं है। वह तो अज्ञान उत्पन्न किया है उसने।

७५२

जो ज्ञेय होता है वह कर्म हो जाता है। पर्याय है परंतु वह ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। इसलिए वह कर्ता का कर्म भी नहीं है। राग जानने में आये तो कर्ता का कर्म कहा जाये, परंतु राग जानने में नहीं आता। जब "जाननहार जानने में आता है" "तब उपशम सम्यग्दर्शन होता है"। प्रथम अनादि मिथ्यादृष्टि हो उसे उपशम होता है। सादि मिथ्यादृष्टि हो उसे इस काल में उपशम नहीं होता परंतु क्षयोपशम होता है। क्योंकि दूसरी बार उपशम होने के बीच के काल में बहुत लंबा अंतराल है।

७५३

अनुभव से पहले आत्मा अनुमान में आ जाता है। अकेला प्रतिभास नहीं है, परंतु.. प्रतिभास से कुछ विशेष भी है। उसे प्रथम परोक्ष अनुभूति होती है। उसे सविकल्प स्वसंवेदन कहा जाता है। "जाननहार जानने में आता है", "जाननहार जानने में आता है"; वह परोक्ष में आ जाता है।

७५४

इस उपयोग में आत्मा जानने में आ रहा है। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा थोड़ी देर...थोड़ी देर हों!! ज्यादा देर नहीं। थोड़ी देर होती है तो उपयोग सूक्ष्म होने लगता है...सूक्ष्म होते होते...सूक्ष्म होकर; सूक्ष्म को पकड़ लेता है। त्रिकाली द्रव्य को पकड़ लेता है उपयोग।

७५५

लक्ष पलटता है। पर्याय पर्याय में रह गई। पर्याय को टालना नहीं है। लक्ष को पलटना नहीं है। पलट जाता है ऐसा कहा। "जाननहार जानने में आता है" उसमें लक्ष पलट जाता है।

७५६

"होने योग्य होता है" मैं उसे जानता हूँ। उसे जानता है तब तक जाननहार जानने में नहीं आयेगा। उसे मैं करता हूँ, तब तक जाननहार जानने में नहीं आता। पर्याय के भेद को मैं जानता हूँ तब तक आत्मा के दर्शन नहीं होते। "होने योग्य होता है" उसमें कर्ताबुद्धि की निवृत्ति होती है। और अब अंतर से देखे तो सामान्य जानने में आता है तब नवतत्त्वों के भेद-विशेष ज्ञात नहीं होते तो उसमें ज्ञाताबुद्धि गई।

७५७

अरे! नियमसार में एक गाथा है उसमें आचार्य भगवंत कहते हैं कि: ये सात तत्त्व जो हैं वे परद्रव्य का समूह हैं। उनसे हमारी दृष्टि पराङ्मुख है। सविकल्पदशा में हम नवतत्त्वों के भेद को जानते नहीं हैं। "जाननहार जानने में आता है दूसरा कुछ जानने में नहीं आता"। साधक की कोई ऐसी अपूर्व दशा होती है अज्ञानी को ख्याल नहीं आता।

७५८

पर्याय को जानना बंद कब होता है? कि: जाननहार को जानता है तब। यह पर्याय है; उसे मुझे जानना नहीं है तो ऐसे जानना बंद नहीं होगा।

७५९

मुनिराज को उपदेश देने का प्रतिबंध नहीं है। कभी-कभार अमृत झरता है "तुझे जाननहार जानने में आता है, और पर जानने में नहीं आता" वह तुम्हें घर बैठे अनेक बार मिल रहा है।

७६०

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा आने पर "जाननहार जानने में आ जाता है"। पर जानने में आता है, स्वपर जानने में आता है; वह ज्ञान का द्रोह है। **अरे! ज्ञान सामान्य के पक्ष में रुके और परिणामी को जानने की मना करता है, वह भी ज्ञान का द्रोह है।**

७६१

तीर्थंकर परमात्मा की दिव्यध्वनि में से आई हुई बात है। "परिणाम होने योग्य होते हैं।" ऐसा जिसे बैठता है उसकी कर्ताबुद्धि छूट गई। "जाननहार जानने में आता है" उसे पर का जानना बंद हो जाता है। कर्ताबुद्धि छूटते ही जाननहार जानने में आ गया! जैसे ही करना और जानना गया, दृष्टि द्रव्य के ऊपर आ जाती है और अनुभव हो जाता है।

इस समय यह दिव्यध्वनि खिर रही है "होने योग्य होता है जाननहार जानने में आता है", उस दिव्यध्वनि के शब्द कानों पर आ रहे हैं। पर्याय को जानना वह दो नंबर का व्यापार है। द्रव्य को जानना वह एक नंबर का व्यापार है। पर्याय से अभेद ज्ञेय को जानना वह एक नंबर का व्यापार है। त्रिकाली अभेद को जाने वह निश्चय। क्षणिक अभेद को जाने वह अंदर का व्यवहार है।

७६२

जो जानने में आया वह जाननहार ही है। जिसमें ज्ञात हुआ है वह...भी जाननहार ही है। जिसमें ज्ञात हुआ वह....भी अभेद, और जो ज्ञात हुआ वह...भी अभेद।

७६३

इसकी महिमा का कोई पार नहीं है, ऐसी ये बातें हैं। "जाननहार जानने में आता है" वह तो वास्तव में जाननहार ही है। जाननहार जानने में आता है वह पर्याय वास्तव में जाननहार की ही है। इसलिए अभेद से वह जाननहार ही है।

७६४

संक्षिप्त सार ---> "जाननहार जानने में आ रहा है"; उसे जानना छोड़कर तू पर को जानने रुक गया। उसमें अटक गया।

७६५

हे! प्रभु! मैं तेरे से क्षमा माँगता हूँ। अनंतकाल से "जाननहार जानने में आता है", फिर भी मैंने नकार किया है। तू नहीं जानने में आता और यह पर जानने में आता है। आहाहा! अकर्ता को कर्ता माना और पर के ज्ञाता को, व्यवहार को ज्ञाता माना। निश्चय से वह मेरा अपराध हुआ। अकारक अवेदक ऐसा आत्मा "जाननहार मुझे जानने में आता है", ऐसी जहाँ अंतर्दृष्टि की, वहाँ अनुभव होता है। फिर वह पर्याय को करता है ऐसा कहना उपचार, और पर्याय को जानता है, ऐसा कहना वह भी उपचार है।

७६६

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेय को जानने के काल में भी ज्ञायक ही जानने में आता है। ज्ञायक जानने में आता है तब कहते हैं कि: ज्ञेय को जानने के काल में ज्ञायक ही जानने में आता है। पर जानने में नहीं आता परंतु ज्ञान जानने में आता है। पर जानने में आता है तब "जाननहार ही जानने में आता है"। भेद से ज्ञान जानने में आता है ऐसा कहा जाता है। और अभेद से कहें तो "ज्ञायक ही जानने में आता है।"

७६७

ज्ञेय के जानने के काल में "जाननहारा जानने में आता है"। नींद में भी "जाननहार जानने में आता है"। सापेक्ष ज्ञान को लो तो उसमें भी "जाननहार जानने में आता है"। और निरपेक्ष ज्ञान लो तो उसमें भी "जाननहार जानने में आता है।" जानता है तो ज्ञान ज्ञान को ही, परंतु उपचार से कहा जाता है कि पर जानने में आता है। ज्ञान की पर्याय को साधक जानता है वह अनुपचार है।

७६८

जिज्ञासा : हमें कहाँ से शुरुआत करनी?

समाधान : प्रथम आत्मा को जानना। उपयोग में "जाननहार जानने में आता है" उसे जानना। वहाँ से शुरुआत करनी।

७६९

आत्मा तो केवल ज्ञाता ही है। कर्ता नहीं है। आत्मा को जानते जानते (१२वीं गाथा) पर्याय को ज्ञेयपने जानता है ना!? द्रव्य से अलग परिणाम होते हैं। द्रव्य को परिणाम अड़ते नहीं हैं। अभेद को जानते-जानते भेद को जानता है। यह..जो भेद को जानता है वह सविकल्प है।

मुझे तो "जाननहार जानने में आता है"; मुझे तो "जाननहार जानने में आता है"। परिणाम परद्रव्य हैं इसलिए मुझे ज्ञात नहीं होते। हें? परिणाम परद्रव्य हैं? ज्ञात नहीं होते। फिर से अंदर में चला जाता है। ऐसी साधक की स्थिति का वर्णन साधक लिखते हैं। जो साधक होता है वह साधक को जानता है। जो साधक नहीं है वह साधक को नहीं जानता। जो ध्येय को नहीं जानता वह ज्ञेय को नहीं जानता। साध्य को भी नहीं जानता। साधक को जानने जाए तो साधक हो जाए।

७७०

होने योग्य हुआ करता है तो कर्ताबुद्धि गई, और "जाननहार जानने में आया करता है" अर्थात् पर्याय को जानना बंद किया तो ज्ञाताबुद्धि गई। दिव्यध्वनि में यह ही आ रहा है, ऐसा कानों में सुनाई दे रहा है।

७७१

"जाननहार जानने में आता है" यह फंक्शन अकृत्रिम है। उसे कोई बंद नहीं कर सकता। अज्ञान में ऐसी ताकत नहीं है कि उस फंक्शन को बिगाड़ सके।

७७२

"जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को ही जानती है"। जानने में आएगी ऐसा नहीं लिखा। तुझे "जाननहार ही जानने में आ रहा है," इसलिए पर की अनुभूति होना अशक्य है, और जाननहार की अनुभूति छूटना अशक्य है।

७७३

"जाननहार जानने में आ ही रहा है"। वह तो सदा उत्पाद में जानने में आता ही है। उसमें प्रयत्न नहीं है। एक विश्वास आना चाहिए कि "मैं जानने में आ ही रहा हूँ"। परज्ञेय को जानने में जो मेहनत-प्रयत्न करना पड़ता है उसमें तो थकान लगती है।

७७४

अभेद को अभेदरूप से अनुभव करता हूँ। "ज्ञायक ही हूँ"। उसमें ध्येय ज्ञेय दोनों आ गए। "चेतनेवाला वही मैं हूँ" उसमें भी ध्येय ज्ञेय दोनों आ गए। **"जाननहार जानने में आता है" उसमें अभी भेद है। "जाननहार ही मैं हूँ" उसमें अभेद हो गया।**

७७५

जो अपने से भिन्न है उसे जाने? और जो स्वयं स्वयं से कथंचित् अभिन्न है, उसे कैसे ना जाने? यह कैसा आश्चर्य?! श्रीमद्जी कहते हैं..."जानत घट-पट आदि तू, तातें ताको मान। ज्ञायक को मानत नहीं, यह कैसो तुझ ज्ञान?" (आत्मसिद्धि शास्त्र-गाथा ५५)

यह पर जानने में आता है या जाननहार जानने में आता है? बस पर से उपयोग समेटकर आत्मा में लगा। बस अपना उपयोग मुड़ जाता है। पर को जानने में तो उपयोग लगाना पड़ता है। यह तो अपना उपयोग अपने को सहज जान लेता है। जो हाथ को जानता है वह क्या अपने शरीर को नहीं जानता? वैसे ही ज्ञान पर को जानता है वह अपने को कैसे ना जाने?

७७६

पर को जानना सर्वथा बंद कर। और यह "जाननहार जानने में आ रहा है" उसे आनंदपूर्वक जान।

७७७

अनादि से कर्मकृत रागादि और देहादि भी प्रतिभासित होते हैं। रागादि कर्म के लक्ष से, कर्म के आश्रय से होते हैं; इसलिए कर्म के परिणाम हैं। राग पराश्रित है। उपयोग आत्माश्रित है। अब कर्म के परिणाम ज्ञान में प्रतिभासते हैं; तब "मैं जाननहार हूँ" जाननहार..., जाननहार.., जाननहार...इसे भूलता है। "मैं करनेवाला नहीं हूँ"। करता है दूसरा पुद्गल और मानता है कि मैं करता हूँ। हाथ हिलता है उसे किसने हिलाया? आत्मा ने हिलाया या पुद्गल ने?

जैसे यह हाथ हिलने की क्रिया पुद्गल की है वैसे सुख-दुःख कर्म के परिणाम हैं। करता है पुद्गल और जानने में आते हैं ज्ञान में। वह कर्म का कार्य जब ज्ञान में प्रतिभासित होता है उस समय "जाननहार जानने में आता है"।

७७८

एक बार अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ वह तो समय-समय उत्पाद ध्रुव को प्रसिद्ध करके प्रगट होता है। साथ ही ध्रुव को प्रसिद्ध करके ही व्यय होता है। अतीन्द्रिय ज्ञान की अवस्था प्रगट हो गई। सविकल्पदशा में परिणति है, बहिर्लक्षी दशा में इन्द्रियज्ञान भी प्रगट हुआ है। देव-गुरु-शास्त्र भी जानने में आते हैं, और उनके लक्षवाला राग भी होता है, ऐसा भी जानने में आता है। "है" होता है, वह भी जानने में आता है। करता है वह जानने में आता है ऐसा नहीं है। होता है वह जानने में आता है या जाननहार जानने में आता है? ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकपने जानने में आता है।

७७९

जाननहारपने जनाया, अनुभव के काल में जनाया। फिर चाँदी की थाली में (ज्ञानी) भोजन करता है, यह क्रिया मिथ्यादृष्टि को चर्म की आँखों से जानने में आये ऐसी नहीं है। भावइन्द्रिय चर्म का संबंध करके प्रगट होती है। इसलिए वह...चर्म ही है। वह इन्द्रियज्ञान जड़ और अचेतन है।

इसलिए जो ज्ञायकपने ज्ञात हुआ वह ज्ञात हुआ ही करता है। फिर जानने में आना छूट जाता है? या जानने में आया करता है? पहले समय में ज्ञात हुआ तब संवर प्रगट हो गया। फिर ज्ञात हुआ करता है, इसलिए निर्जरा है। क्या कहा? पहले समय में ज्ञात हुआ तब मैं तो जाननहार, जाननहार हूँ। मैं तो परमात्मा हूँ। फिर ज्ञान जाना ही करता है, इसलिए शुद्धि की वृद्धिरूप निर्जरा हुआ ही करती है।

फिर सविकल्पदशा हो या निर्विकल्पदशा हो! फिर "जाननहार जानने में आया ही करता है"। ज्ञान की पर्याय एक है परंतु उसके मुख दो हैं। साधक के दो मुख हैं। एक अंतर्मुख ज्ञान दूसरा बहिर्मुख ज्ञान है।

७८०

मूल नींव की बात; "जाननहार हूँ और वह ही जानने में आता है"; यह यदि ख्याल में आए तो सम्पूर्ण मार्ग मिल जाए ऐसा है।

७८१

"मेरे ज्ञान में जाननहार तन्मयरूप से निरंतर जानने में आ रहा है" इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है। आहाहा....! वहाँ तो साक्षात् ज्ञाता हो जाता है।

७८२

(१) परोक्ष अनुभूति ---> "जाननहार जानने में आता है"।

(२) प्रत्यक्ष अनुभूति ---> "जाननहार जानने में आता है"।

अरे! ज्ञान की पर्याय के स्वप्रकाशक के पक्ष में यदि आएगा ना, तो स्वप्रकाशक हो जाएगा।

७८३

पर को नहीं जानता उसमें जाननहार जानने में आ ही जाता है। जीव पर को जानने का निषेध नहीं करते, परंतु पर को जानने के निषेध में जाननहार का जानना ऑटोमेटिक आ जाता है। **निषेध है वह विधिरूप है। नास्ति है वह अस्तिरूप है।**

७८४

मैं पर को जानता हूँ ऐसी जो मान्यता है, वह विचार भी नहीं आने देती कि "जाननहार जानने में आ रहा है"। जानने में तो आता है, परंतु जानता नहीं है।

७८५

"जाननहार जानने में आता है" और जनाया उसमें परिणामी होता है। परंतु उस परिणमन में अकेला जाननहार ही जानने में आता है। परिणामी में परिणामी ज्ञात ही नहीं होता। परिणामी में अपरिणामी जानने में आता है।

७८६

ज्ञानी को निश्चयपूर्वक व्यवहार है। अज्ञानी को व्यवहार का पक्ष है। व्यवहार नहीं है। सविकल्प व्यवहार इन्द्रियज्ञान का विषय है। साधक का निश्चय अतीन्द्रिय ग्राह्य है। "जाननहार जानने में आता है" इस पक्ष के बिना, पर को नहीं जानता ऐसा निषेध करे तो निश्चयाभासी हो जाता है।

"जाननहार जानने में आता है" उसरूप से परिणमे नहीं और व्यवहार का निषेध करे, वह तो निश्चयाभासी है। **व्यवहार का निषेध किसलिए है? अंदर में जाने के लिए है।**

७८७

ज्ञेय ज्ञान को प्रसिद्ध करता है यह सत् की पराकाष्ठा है। चारों तरफ से समय-समय ज्ञान की प्रसिद्धि होती है। समयसारजी शास्त्र की छठवीं गाथा में कहा है कि ज्ञेयाकार अवस्था में- सविकल्प में "जाननहार जानने में आता है"। ज्ञेय जानने में आते हैं ऐसा नहीं लिया। ज्ञेय के जानने के काल में ज्ञायक ही जानने में आता है और स्व को जानते समय ज्ञायक ही जानने में आता है।

७८८

पर को मैं नहीं जानता, एक बार निषेध तो कर! और "जाननहार जानने में आता है" ऐसे सविकल्प पक्ष में तो आ! तो समकित हो गया ऐसा भावी नैगमनय से-द्रव्य निक्षेप से कह दिया। वास्तव में तो ज्ञानी को ही नय निक्षेप लागू पड़ते हैं। परंतु अप्रतिहत भाव से उठे हुए को नैगमनय से कह दिया।

सविकल्प के पक्ष में आने पर कैसी मजा आती है वह तो देखो! पक्षातिक्रांत में तो आनंद की क्या बात करनी।

७८९

नीचे रेती ऊपर सूरज इसलिए पानी जैसा लगता है। जैसे मृग को मृगजल की भ्रान्ति होती है वैसे ही इस तरफ चमकता हुआ सूरज ज्ञायक है वह चेतनार जाननहार है। और एक तरफ ज्ञेयों की रेती है। बीच में से भ्रम उत्पन्न करके मानता है कि "मुझे यह सब जानने में आता है" वह भ्रमणा है। कोरी भ्रमणा है। उसे तो "जाननहार जानने में आता है" वह वास्तविकता है।

७९०

परिणाम हुआ करते हैं और "जाननहार जनाया करता है" यहाँ तक पहुँचता नहीं है इसलिए अनुभव होता नहीं है।

७९१

जिज्ञासा : ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है, ऐसा लेने पर भी अनुभव क्यों नहीं होता?

समाधान : जाननेवाला और जाननहार अभेद भाव से है। भेदरूप नहीं है ऐसा ले ले!

७९२

जरा लक्ष में तो ले! जाननहार जानने में आता है इसलिए आत्मा का नाम जाननहार है।

७९३

"जाननहार तो जाननहार है"। इसप्रकार जाननहार को जाननेरूप परिणमना वह ज्ञान की पर्याय का निश्चय है।

७९४

बंध का कारण यह है कि मैं पर को जानता हूँ और जाननहार जानने में नहीं आता।

७९५

समय-समय जाननहार जना रहा है। समय-समय ज्ञायक भगवान आत्मा तैरता है। उसके ऊपर लक्ष रखकर हम तेरे से बात करते हैं कि आत्मा को दंड नहीं मिलता। परिणाम में दंड है उसका उपचार आत्मा में करके उसे श्रद्धा में ले लिया, वह भूल है।

७९६

राजमल्लजी साहब ने लिखा है कि मिथ्यात्व के परिणाम का विचार संज्ञी पंचेन्द्रीय जीव कोई ही करता है। मनुष्य अवतार मिला तो भी इस मिथ्यात्व का पाप क्या है? उसका गहराई से विचार करने का टाइम भी मिलता नहीं है। (अन्य बातों के लिए) टाइम मिलता है।

चारित्र का दोष जगत को प्रसिद्ध है। परंतु यह मिथ्यात्व का दोष वह घर का छुपा चोर है। इस मिथ्यात्व को स्वयं जानता नहीं है और दूसरे भी नहीं जानते। उसमें तो बाहर की मन, वचन की क्रिया से पता चलता है कि शुभयोग में है या अशुभयोग में है। दुकान पर बैठा हो तो वह पाप में है। भगवान की पूजा में बैठा हो तो पुण्य में है... यह... तो पता चल जाता है। परंतु भगवान की पूजा करते समय पुण्य का करनेवाला मैं हूँ और पुण्य से मुझे धर्म होता है ऐसा मिथ्यात्व का भाव, उसका विचार कोई ही करता है। तो

क्या हमें नहीं करना? करने ना करने का प्रश्न ही नहीं है। तत्त्व का स्वरूप क्या है वह समझाते हैं। करने- नहीं करने का यहाँ प्रश्न ही कहाँ है? उसके काल में सब हुआ करता है और "जाननहार जनाया करता है"।

७९७

"जाननहार जानने में आता है" यह विश्वास आना चाहिए। और विश्वास के साथ-साथ पर को नहीं जानता वह निषेध आना चाहिए। **मैं पर को जानता हूँ वह शल्य है। वह शल्य रखकर अस्ति से लेता है कि "जाननहार जानने में आता है" तो नहीं जनायेगा। निश्चय द्वारा व्यवहार का निषेध करना चाहिए।**

७९८

दीपक की अवस्था तो एक ही है। उसके दो भेद किए, घड़े को प्रकाशित करनेवाली अवस्था और दीपक को प्रकाशित करनेवाली अवस्था एक, उसके निमित्त दो हैं। दीपक की अवस्था एक ही है उसके दो भेद किए। घड़े को प्रसिद्ध करनेवाली अवस्था और दीपक को प्रसिद्ध करनेवाली अवस्था।

दीपक की शिखा को प्रकाश प्रसिद्ध करे तो भी दीपक है। घड़े को प्रसिद्ध करे तो भी दीपक है। उसमें कुछ अंतर नहीं पड़ता। वैसे इस आत्मा में परपदार्थ जनाय या आत्मा जनाय तब "जाननहार जानने में आता है"। जाननहार है इसलिए स्वयं कर्ता, स्वयं जानने में आया इसलिए स्वयं कर्म। निर्विकल्पध्यान में हो या सविकल्पदशा में हो..दोनों अवस्थायें लेनी।

सविकल्पदशा में भी ज्ञान का ज्ञान अपनी आत्मा को जानता हुआ ही प्रगट होता है। ज्ञान स्वाधीन है। परज्ञेय जानने में आये तो ज्ञान प्रगट होता है ऐसा नहीं है।

७९९

कर्ता आत्मा और कर्म आत्मा। जाननहार आत्मा और जानने में आये परपदार्थ ऐसा है नहीं। आहाहा! जाननहार को यहाँ रखना। जो (अभिन्न) जानने में आता है उसे यदि दूर रखा तो वह ज्ञान नहीं, अज्ञान हो गया। क्या कहा? जाननहार भले यहाँ रखा कि यह जाननहार मैं और जानने में आता है ज्ञान। इसप्रकार ज्ञान और ज्ञेय को अलग किया उसे अज्ञान कहा जाता है। जाननहार स्वयं और जानने में आये भी स्वयं उसका नाम आत्मा का अनुभव सम्यग्ज्ञान कहने में आता है।

८००

जैसे दीपक के दृष्टांत से घट-पट को प्रकाशित करे तो भी दीपक और दीपक की शिखा को प्रकाशित करे तो भी दीपक में कोई अंतर पड़ता नहीं है। वैसे ही आत्मा का ज्ञान प्रगट हो जाने के बाद ज्ञेय ज्ञात हों, उस समय "जाननहार जानने में आता है"।

और ज्ञेय जानने में नहीं आते तब भी ज्ञायक ही जानने में आता है। हर समय, खाते- पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, वह तो "जाननहार जानने में आता है," दूसरा कुछ जनाता नहीं है। ऐसी एक अंतर्मुखी ज्ञान की अवस्था प्रगट होती है। स्वयं जो ज्ञानी होता है तो पता चलता है। अथवा उत्कृष्ट मुमुक्षु को अनुमान से भी पता चलता है।

८०१

"मैं जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं"। यह एक मंत्र है। सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया हुआ है। ज्ञानियों को भी यह एक प्रकार से अनुभव हुआ है। "जाननहार हूँ करनेवाला नहीं।" फिर "जाननहार ही जानने में आता है पर नहीं"। ये मात्र २ मंत्र हैं। इनका कोर्स ६ महीने का है। तीन तीन महीने के दो भाग।

"जाननहार हूँ करनेवाला नहीं," ३ महीने का कोर्स पक्का हो जाए फिर "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता है"। आहाहा! अब यह जो ठीक और अठीक की कल्पना होती है; वह यदि ज्ञान, ज्ञान को जाने तो ठीक और अठीक की कल्पना नहीं होती। मोह, राग-द्वेष का अभाव होकर वीतराग दशा होकर अल्पकाल में पूर्ण पद की प्राप्ति होती है।

८०२

आहार करते हों तब, चाँदी की थाली में भोजन करते हों तब भी जाननहार जानने में आता है। निर्विकल्पध्यान में तो जाननहार जानने में आता है परंतु यात्रा पर निकले हों तब भी "जाननहार जानने में आता है"। भाई! दूसरों को ऐसा लगता है कि ये पर को जानता है, परंतु पर को जाननेवाला ज्ञान अलग है।

कल कहा था कि जैसे सर्प दो मुखवाला होता है; वैसे ही ज्ञान की पर्याय दो मुखवाली होती है। एक अंतर्मुखी ज्ञान; दूसरा बहिर्मुखी ज्ञान। बहिर्मुखी ज्ञान में पर जानने में आता है। अंतर्मुख ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही जानने में आता है। और वह ज्ञान बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान हो जाता है, और इन्द्रियज्ञान का क्षय हो जाता है।

८०३

एक बात की; अब दूसरी बात। ज्ञातः वह तो वही है। अर्थात् "जाननहार जनाया वह"। जब परपदार्थों का उसमें प्रतिभास होता है, तब भी "जाननहार जनाता है" ऐसा सिद्ध करना है। यह सिद्ध करने के लिए जगत के जीवों को ख्याल आए इसलिए दृष्टांत देते हैं।

८०४

"वैद्य" अर्थात् जानने में आने योग्य वह और वेदक अर्थात् जाननेवाला मैं, ऐसा भेद नहीं है तब अनुभव होता है। दृष्टिपूर्वक ज्ञान में पूरा आत्मा ज्ञेय होता है।

दृष्टिपूर्वक स्याद्वाद के साथ (ज्ञान) सुसंगत है। द्रव्य के ज्ञान के साथ पर्याय का ज्ञान यदि ना हुआ तो मिथ्या एकांत है और वह प्रथम से ही अनेकांत में रहा हो तो भी मिथ्या है।

८०५

भले ज्ञेय सापेक्षता से ज्ञेयाकार कहा तो भी साधक का ज्ञान ज्ञेय को जानता नहीं है। ज्ञेयाकार ज्ञान को भी जानता नहीं है। वह तो आत्मा को जानता है। यदि आत्मा का ज्ञान ना होता हो तो अज्ञान होता। ज्ञेयकृत अशुद्धता अर्थात् अज्ञान होता। परंतु अज्ञान क्यों नहीं होता? क्योंकि प्रतिमा के सामने देखता है तब जाननहार समय-समय जानने में आता है।

ज्ञेयाकार अवस्था में भी ! 'भी' क्यों कहा ? कि स्वरूप को देखने की दशा में तो जाननहार जानने में आता है परंतु सविकल्पदशा में परज्ञेय निमित्तपने हैं, तब निमित्त नहीं जानने में आता, नैमित्तक नहीं जानने में आता परंतु स्वभाव जानने में आता है।

८०६

प्रभु! एक बार तू ये परपदार्थ जनाते हैं और राग जानने में आता है वह छोड़ दे। "जाननहार जानने में आता है, पर नहीं जानने में आता", ऐसा ले ले!! तब निःशेषपने उपयोग अंतर में आता है। कुछ भी बाकी रखे बिना संपूर्ण उपयोग...वह उसकी तरफ और यह इसकी तरफ ऐसे उपयोग के दो भाग नहीं हैं। निःशेषपने...अर्थात् कुछ भी बाकी रखे बिना पूरा ही उपयोग परसन्मुख था वह पूरा ही उपयोग स्वसन्मुख आता है।

८०७

अब दूसरा पैराग्राफ। ज्ञातः वह तो वह ही है। और शुद्ध हुआ; दृष्टि में आत्मा आया तो ज्ञायकपने ज्ञात हुआ। "जाननहारपने जनाया"। मैं करनेवाला हूँ वह गया। ज्ञायकपने ऐसे शब्द हैं। संस्कृत में है "ज्ञातः" ज्ञायकपने ज्ञात हुआ, पर के काम करे ऐसा ज्ञात हुआ...पर के काम करे ऐसा आत्मा है नहीं; तो ऐसा जानने में आया कहाँ से? करनेवाला अलग और जाननेवाला अलग है।

८०८

"ज्ञातः" ज्ञायकपने आत्मा का स्वभाव जानना.. जानना.. है। जाननहार.. जाननहार.. जाननहार...। जाननहारपने आत्मा जानने में आता है। अंतर्दृष्टि द्वारा देखनेवाले को आत्मा राग का करनेवाला है, पर्याय का करनेवाला है- ऐसा जानने में नहीं आता। जाननहारपने जनाया; ज्ञायकपने अर्थात् जाननहारपने जनाया, जैसा था वैसा जानने में आ गया। था तो प्रथम से ही जाननहार परंतु मानता नहीं था।

८०९

तिर्यंच ने भी पूर्व में देशनालब्धि सुनी हो तो उसे भी निसर्गज सम्यग्दर्शन हो सकता है। ऐसा जो भगवान आत्मा जाननहारपने जनाया...! फिर निर्विकल्पध्यान में से बाहर आता है... तब उपकारी गुरु के ऊपर लक्ष जाता है। आहा! आपने मुझे आत्मा दिया। आपके प्रताप से बहुमानी हुआ। ज्ञायक का ज्ञान रखते हुए श्रीगुरु का भी ज्ञान हुआ तब भी "जाननहार जानने में आता है"। श्रीगुरु जानने में आते हैं तब भी जाननहार को जानना छोड़कर गुरु को नहीं जानता। समय-समय का हिसाब है।

८१०

कर्ता का कर्म तो गया परंतु ज्ञान का ज्ञेय रह गया अभी। तेरे ज्ञान में आत्मा तन्मय होकर जानने में आता है, वह तेरा ज्ञेय है। रागादि के साथ तेरा ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार है। उस व्यवहार को तू निश्चय मान बैठा है। अब उस ज्ञाता-ज्ञेय के व्यवहार को उखाड़ दे।

मैं ज्ञाता और साक्षात् तीर्थंकर मेरे ज्ञेय ऐसा नहीं है। तेरे ज्ञान से तेरा ज्ञेय बाहर नहीं होता। तेरे ज्ञान में तन्मय होकर ज्ञायक जानने में आता है, वह तेरा ज्ञेय है। उसका स्वीकार कर ले? यह (पर) तुझे जानने में नहीं आता है- जैसे ही दूसरा पाठ आया तो उसे ज्ञेय का लक्ष छूट गया। और ज्ञाता-ज्ञेय के व्यवहार का विध्वंस हो गया कि "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" उस भाव के पक्ष में आया; सत्य पक्ष में आकर पक्षातिक्रांत होता है। परंतु असत्य के पक्ष में पक्षातिक्रांत हुआ नहीं जाता।

८११

ज्ञेयाकार अवस्था में क्या जानने में आता है? ज्ञेय जब ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं तब....! जब ज्ञेय का निमित्तपना है तब ज्ञेयों का प्रतिभास स्वच्छता में हो रहा है तब; ज्ञेय जानने में आते हैं या जाननहार जानने में आता है? यदि ज्ञेय जानने में आते हैं तो ज्ञेयकृत अशुद्धता आ गई। और ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं तब "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता" तो ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है।

"जो कुछ झलकता ज्ञान में वह ज्ञेय नहीं बस ज्ञान है; नहीं ज्ञेयकृत किंचित् मलिनता सहज स्वच्छ स्वभाव है"। इसप्रकार ज्ञान ही जानने में आता है।

८१२

दो का प्रतिभास होता है परंतु दो को जानता नहीं है। प्रतिभास का निषेध नहीं है, परंतु उसे जानता नहीं है। "जाननहार ही जानने में आता है।" आहा! यदि यह...ज्ञेय जानने में आता हो तो ज्ञेयकृत अशुद्धता आ जाए, तो ज्ञायक का तिरोभाव हो जाए। सामान्य ज्ञान का तिरोभाव और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव होता है तो अज्ञान

होता है।

८१३

ज्ञेय सापेक्ष ज्ञान की पर्याय है तब उस ज्ञान में, ज्ञेयाकार अवस्था में; ज्ञेयाकार अवस्था आत्मा की है। ज्ञेय तो निमित्त है इसलिए ज्ञेयाकार अवस्था रखी। ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेय ज्ञात होता है या ज्ञायक ज्ञात होता है? बस इसमें संसार और मोक्ष है। यह ज्ञेय नेपकीन है, वह ज्ञान में जानने में आता है उस ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं होती ज्ञान में? क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में जाननहार जानने में आता है; ज्ञायक जानने में आता है। आहाहा!! ज्ञेय जनाता नहीं है, ज्ञेय का प्रतिभास है। परंतु वह....जानने में आता नहीं है। आहा! उसके ऊपर मेरा लक्ष नहीं है, लक्ष तो ज्ञायक के ऊपर है। जिसका लक्ष है वह जानने में आता है, जिसके ऊपर लक्ष नहीं है, वह जनाते हुए भी उसे ज्ञान नहीं जानता।

८१४

द्रव्यकर्म है, उसमें उसका रस अनुभाग है। क्रोध, मान, माया, लोभ वे चारों प्रकार और मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग वे खिरने के काल में उदय में आते हैं। उदय में आते हैं वे ज्ञान में जानने में आते हैं - प्रतिभासित होते हैं। जानने के काल में "मैं जाननहार हूँ", वह भूल गया। "जाननहार जानने में आता है" वह गया और यह कर्म जानने में आता है, राग जानने में आता है, ऐसे उनके ऊपर लक्ष चला गया। राग जानने में आता है और ज्ञान जानने में नहीं आता उसका नाम अज्ञान है। **इसप्रकार करणानुयोग से भी ऐसा सिद्ध हुआ कि "जाननहार जनाता है"।**

८१५

कर्म से उत्पन्न मिथ्यात्व आदि भावों के ज्ञान के समय...जानने के समय वह भूल जाता है। अब भेदज्ञान करता है कि यह उदय जानने में नहीं आता। "जाननहार जानने में आता है।" ये मिथ्यात्व के परिणाम तो कर्म के हैं, मेरे नहीं हैं। क्योंकि आत्मा में ज्ञान प्रगट होता है, आत्मा में मिथ्यात्व प्रगट नहीं होता। अब यदि ज्ञान का ज्ञानत्व हो तो मिथ्यात्व प्रगट न होवे।

ज्ञेय ज्ञान के भेदज्ञान से शून्य होने के कारण विशेष अपेक्षा से कर्ता होता है। विशेष अपेक्षा से कब कर्ता होता है? मिथ्यात्व ज्ञेय नहीं है। उसका... उसका ज्ञेय तो ज्ञायक ही है। परंतु वह...भूल गया कि "जाननहार जानने में आता है", यह भूल गया। **मिथ्यात्व को जानकर "मैं मिथ्यादृष्टि" ऐसा हो जाता है। इसलिए जानना बंद कराया है। यह पराकाष्ठा की बात है।**

८१६

ज्ञेयाकार अवस्था में अर्थात् ज्ञेयों को जानने की अवस्था का काल है इसलिए नेपकीन को जानने की अवस्था रखी। उस समय तुझे क्या जानने में आता है? यदि नेपकिन जानने में आता है तो ज्ञान का अज्ञान हो गया। और ज्ञेयाकार अवस्था में "जाननहार जानने में आता है" तो ज्ञान का ज्ञानत्व हो गया। वह मोक्षमार्ग में आ गया। उसे आनंद का अनुभव वर्तता है। उस समय ज्ञेयाकार अवस्था में "जाननहार जानने में आ रहा है।" हर हालत में समय-समय, नींद में हो या जाग्रत अवस्था में हो; सविकल्पदशा में हो या निर्विकल्पदशा हो...! ज्ञेयाकार अवस्था में "जाननहार जना ही रहा है"।

८१७

समस्त वस्तुओं के जिस प्रकार के आकार होते हैं वैसे ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं। पदार्थ का जिस प्रकार का आकार होता है वैसा ज्ञान में प्रतिभासित होता है। ज्ञेयों की आकृति का ज्ञान होता है। आकृति ज्ञान में नहीं आती। ज्ञान होता है इतना संबंध है; "पर को नहीं जानता" वह एक ही बात आती है। अरे! "जाननहार जानने में आता है, मुझे पर जानने में आता नहीं।" "जानने में आते हुए भी जानने में नहीं आता"। पर का आकार जानने में आता है परंतु वास्तव में उसे जाननेरूप ज्ञेय की आकृति के ऊपर नजर है तो अनुभव नहीं होता और ज्ञेय की आकृति जिस ज्ञान में ज्ञात होती है, उतनी ज्ञान की आकृति को जानने में रुकेगा तो भी अनुभव नहीं होता। परंतु नियत ऐसे ज्ञायक स्वभाव को जानने पर अनुभूति होती है। जिसका आकार नहीं है फिर भी नियत आकार है।

८१८

और जो ज्ञायकपने ज्ञात हुआ- इसमें १२ अंग का सार है। और जो ज्ञायकपने ज्ञात हुआ, ज्ञायकभाव जो ज्ञान गुण से भरा हुआ है; वह जाननेरूप परिणमता है, करनेरूप नहीं परिणमता। शुभभाव को करना वह अज्ञान है। और आते-जाते शुभभाव को जानना वह व्यवहार है। भेद को जाने वह व्यवहारनय है।

प्रमत्त-अप्रमत्त का जाननेवाला है, परंतु करनेवाला नहीं है। परज्ञेय को जानता है तब भी जाननहार ही जानने में आता है, उसे आत्मा का अनुभव कहा जाता है। ज्ञेय को जानने पर जाननहार ही जानने में आता है। इसप्रकार आत्मा जानने में आता है और वह किस प्रकार से जानने में आए? उस प्रश्न का उत्तर दिया।

८१९

देव-गुरु-शास्त्र जानने में आते हैं तब भी आत्मा ही जानने में आता है। अनुभव के बाद यह स्थिति होती है। परज्ञेय को जानने पर भी आत्मा जानने में आता है, ऐसी धुन लग जानी चाहिए, तो व्यवहार के पक्ष से थोड़ा ढीला पड़े तो निश्चय के पक्ष में आएगा।

शिष्य को कहते हैं कि शुद्धात्मा को जानकर धारणा में नहीं रखना है परंतु अनुभव करना है। जो शुद्धात्मा १४ गुणस्थान से भिन्न है वे १४ गुणस्थान भी पुद्गल के परिणाम हैं।

"जाननहार ही जानने में आता है" और ऊर्ध्वपने "जाननहार ही जानने में आता है"। यह है... यह (पर).. है.. ऐसा आता है, परंतु मैं हूँ.. ऐसा नहीं आता। परंतु मैं हूँ तो यह है, ऐसा पहले अपना अस्तित्व आ जाना चाहिए। ज्ञानी कहते हैं कि स्व-पर को जानते समय "जाननहार ही जानने में आता है।"

८२०

समयसार की १३वीं गाथा भूलना मत; नहीं तो पर्याय की कर्ता पर्याय होते हुए भी "मैं उसका कर्ता हूँ" ऐसी तुझे भ्रान्ति अनंतकाल की रह जाएगी। उसे तू भूतार्थनय से जान! पर्याय होने योग्य होती है और "जाननहार जनाया करता है"।

८२१

ज्ञान ज्ञायक को जानता है और ज्ञायक ज्ञान में जानने में आता है ऐसा भेदरूप व्यवहार भी है। और अभेदरूप निश्चय भी है। ज्ञायक ज्ञेय होकर ज्ञान में जानने में आये और ज्ञान ज्ञायक को जाने ऐसा भेदरूप व्यवहार अनादि का है। और अनुभव होता है तो वह भेद टलकर अभेदपने भी अनुभव उसी प्रकार से होता है।

सविकल्प में ऐसा जानना कि: "ज्ञान में जाननहार जानने में आता है"। वह विकल्प छूटने पर **"जाननहार" और "जानने में आता है" ऐसे दो भेद हैं ही नहीं। ऐसे दो भेद न होने पर भी रागी प्राणी को अभेद में भेद की कल्पना होती थी, इसलिए उसे विकल्प उत्पन्न होता था।**

८२२

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेय जब प्रतिभासित होते हैं ज्ञान में...यह छठवीं गाथा जब प्रतिभासित होती है ज्ञान में; तब यह छठवीं गाथा जानने में आती है? "ना"। यह शब्दश्रुत जानने में आता है? "ना"। यह शब्दश्रुत संबंधी इन्द्रियज्ञान जानने में आता है? "ना"। आत्मा जानने में आता है या "ज्ञेय जानने में आता है"? "जाननहार जानने में आता है"। जाननहार जाननहार को अभेद होकर जानता है।

८२३

"ज्ञेयाकार अवस्था में"- सविकल्पदशा में; साधक कहते हैं! हमें तो "जाननहार जानने में आता है, हमें दूसरा कुछ जानने में आता नहीं है।" (अज्ञानी तर्क करता है-) हमें यह स्पष्ट दिख रहा है ना? घड़ी में इतने बजे हैं दिख रहा है ना? ... तेरा ज्ञान स्पष्ट नहीं है, मैला है। घड़ी जानने में आती है, वह अज्ञान है। घड़ी से संबंधित ज्ञान जानने में आता है

वह अज्ञान है। आहाहा..! वह तो ज्ञायक "जाननहार जानने में आता है", दूसरा कुछ जानने में आता नहीं है। दूसरा जानने में आता है ऐसा कहना व्यवहार है। और व्यवहार अभूतार्थ है।

८२४

समयसार गाथा छह में "ज्ञायकपने जनाया" अर्थात् जाननहारपने जनाया, वह सविकल्प में "जाननहार जनाया"। निर्विकल्प में "जाननहार जनाया"। हर समय अनुभव के बाद....शुद्धात्मा का अनुभव होने के बाद छठा गुणस्थान हो या सातवाँ गुणस्थान हो!! वह तो निरंतर ज्ञायक जानने में आता है।

शांतिनाथ भगवान लड़ाई में हों, तब क्या जानने में आता है? ध्यान में हों तब आत्मा जानने में आता है और लड़ाई में चक्र जानने में आता है? ऐसा है नहीं। तेरा चक्र (चक्कर) घूम गया है। आहाहा...! तू इन्द्रियज्ञान की प्रसिद्धि से उसे जानता है। ऐसी तेरी मान्यता अनादिकाल की है। इन्द्रियज्ञान ज्ञान ही नहीं है। दूसरा दूसरे को जानता है। आत्मा आत्मा को जानता हुआ परिणम जाता है।

८२५

पहले परिणाम को जानकर उसमें एकत्व करता था। अब साधक होने के बाद सविकल्पदशा में आता है! अब शुद्धात्मा का उसे अनुभव हुआ वह परिणाम को भिन्न जानकर हुआ;

फिर सविकल्पदशा में परिणाम को जानता है ? अथवा मात्र परिणाम को जानता है या परिणाम के जानने के समय जाननहार को जानता है? परिणामी ज्ञेय--अपने में उत्पन्न होनेवाले जो शुभाशुभभाव अथवा अशुद्ध परिणाम वे सभी ज्ञेयों के भाव हैं। वे ज्ञेय ज्ञान में जानने में आते हैं तब मात्र परद्रव्यरूप ज्ञेय ज्ञात नहीं होते परंतु..."उस समय भी जाननहार जानने में आता है।"

८२६

ज्ञायक आत्मा अंतर्दृष्टि के द्वारा अनुभव में आया, उसकी लीनता नहीं रहती इसलिए बाहर आता है, सविकल्पदशा में। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को अनुभव होता है वह निर्विकल्पध्यान में होता है। विकल्प में जन्म नहीं होता। परंतु वह जो निर्विकल्प शुद्धोपयोग अधिक समय टिकता नहीं है और वह सविकल्पदशा में आता है तब परिणाम जनाते हैं। देव-गुरु-शास्त्र परपदार्थ इत्यादि ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं उस समय भी वह तो "जाननहार को जानता है", वह तो ज्ञायक को जानता है।

८२७

कर्ता-कर्म का अज्ञान कर्ता-कर्म के ज्ञान द्वारा जाता है; उसमें खूबी है। उसमें कितना भर दिया है।

पहले पैराग्राफ में अकर्ता कहा....! दूसरे पैराग्राफ में कर्ता-कर्म का अनन्यपना कहा....! पूरा यहाँ होता है, ध्येय पूर्वक ज्ञेय होता है। वह इस पाठ में होता है। वह पहला पैराग्राफ उसमें ध्येय का पाठ है।

जयसेनाचार्य भगवान ८० नंबर की (प्रवचनसार) गाथा में कहते हैं "मोह क्षपण होने में समर्थ हुआ", परंतु मोह क्षपण हुआ? मोह क्षपण हुऐ बिना काम नहीं आता। इसलिए इसमें, "अकर्ता + कर्ताकर्म का अनन्यपना = अनुभूति है।" ये शब्द बोले थे।

अकर्ता अर्थात् ध्येय में आ गया। अब जहाँ ध्येय का ध्यान हुआ तो प्लस हुआ या नहीं? यह...जनाया या नहीं? "जाननहारपने जनाया..." तो जाननहार को जाननेरूप परिणमा या नहीं? स्वयं अपने को जाननेरूप परिणमा तो पर का जानना बंद हो गया, तब अनुभव होता है।

८२८

वह स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में ज्ञायक ही है। दीपक की भांति कर्ता-कर्मपने का अनन्यपना होने से; ज्ञायक ही है। अब भावार्थकर्ता पंडितजी स्पष्टीकरण करते हैं... स्वयं जाननहार इसलिए कर्ता; स्वतंत्रपने करे वह कर्ता है; 'अपने को जाना', देखो! यहाँ ज्ञेय को जाना वह निकाल दिया। क्योंकि जानता ही नहीं ना!? ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं तब आत्मा को जानता है। अर्थात् उसे जानता है यह....बात है ही नहीं; वह तो कथनमात्र है। उसे जानता है ऐसा भाव नहीं है। उसे जानता है ऐसा आदि, मध्य, अंत में है नहीं। ज्ञेय को कभी भी जानता नहीं है। ज्ञेयाकार अवस्था में जानता नहीं तो स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में तो कहाँ से जाने? इसमें तो समुद्र भरा है। भावलिंगी संतों ने गहराई के जो भाव वचनातीत हैं उन्हें वचन में ला दिया है।

८२९

बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा अनुभव में आता है। ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेय ज्ञात नहीं होते परंतु "ज्ञायक जानने में आता है"। अब जिसे ज्ञायक जानने में आता है वह परोक्ष में आ गया है। उसमें अभी भी परोक्ष है। राग जानने में आये तो तो अज्ञान में गया। वह प्रत्यक्ष में से और परोक्ष में से भी गया। परंतु राग जानने में आता ही नहीं, मेरे ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले ना!!

८३०

अग्नि लकड़ी को जलाती है ऐसा कहा जाता है, परंतु लकड़ी को जलाती नहीं है। आत्मा पर को जानता है ऐसा कहा जाता है, परंतु आत्मा पर को जानता नहीं है। यदि

अग्नि लकड़ी को जलाए तो आत्मा पर को जाने। आज तक किसी अग्नि ने लकड़ी को जलाया ही नहीं है। आज तक किसी आत्मा ने पर को जाना ही नहीं है। उसे वास्तव में तो "जाननहार जानने में आता है", परंतु वह भूल जाता है।

८३१

प्रभु! तुम सुनो! जामनगर के वीरजीभाई कहते थे "खंभा नहीं जानने में आता"..."जाननहार जानने में आता है" लालूभाई! "जाननहार जानने में आता है"। वीरजीभाई सच्चे थे।

८३२

"मात्र ज्ञायक हूँ स्वीकार कर ले"! वह..स्वीकार कर ले ना!! कि: 'मैं तो ज्ञायक जाननहार हूँ' ये कोई मेरी चीज नहीं हैं। उनका मैं जाननेवाला भी नहीं हूँ। "जाननहार जानने में आता है" अंतर्मुहूर्त में आजा ना!! देर क्यों लगा रहा है। आहा!

८३३

यह ज्ञेय है....ज्ञान में प्रतिभास हुआ उसका; ज्ञान स्वच्छ है ना? (फीटा) लकड़ी में प्रमेयत्व नाम का धर्म है इसमें। यह (आत्मा) प्रमाता है। यह ज्ञान है और.... यह ज्ञेय है। तो यह जब जानने में आता है...तब ज्ञायकपने जो जनाया...! आहा! "मुझे तो जाननहार जानने में आता है"। ज्ञेय तो जानने में नहीं आता परंतु ज्ञेय सापेक्ष ज्ञान भी जानने में नहीं आता। और ज्ञायक सापेक्ष ज्ञेयाकार भी जानने में नहीं आता। अकेला "जाननहार जानने में आता है"।

८३४

'ज्ञेय को जानने से उसे ज्ञायक नाम दिया जाता है;' उसका स्पष्टीकारण- **'क्योंकि ज्ञेय का प्रतिबिंब...'** राग-द्वेष, कर्म, नोकर्म सभी ज्ञेय में डाल दिये। यहाँ ज्ञान। **'क्योंकि ज्ञेय का प्रतिबिंब जब झलकता है...'** अब बिंब झलकता है उसका नाम प्रतिबिंब है। बिम्ब तो ज्ञेय है। तो **'प्रतिबिंब जब झलकता है तब ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है।'**

अर्थात् जैसा ज्ञेय है वैसा ही यहाँ जानने में आता है। खट्टा पदार्थ ज्ञान में जनाये तो यह... खट्टा पदार्थ है ऐसा ज्ञान होता है। तीखा पदार्थ हो तो तीखेरूप ज्ञान होता है। ज्ञेय, क्रोधरूप हो तो यह...ज्ञान में क्रोधरूप जानने में आता है। मानरूप ज्ञेय, मायारूप ज्ञेय, दुःखरूप ज्ञेय, वैसा ही ज्ञान यहाँ होता है। फिर भी दोनों ज्ञान ज्ञेय स्वाधीन हैं।

ज्ञेय है इसलिए ज्ञान होता है ऐसा नहीं है। यहाँ ज्ञान का स्वकाल है, और वहाँ ज्ञेय का निमित्तपने स्वकाल है। अब लिखते हैं...**'यहाँ ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है'**, उससे अलग नहीं। **'तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है,...'** यहाँ खूबी यह है कि ज्ञेय

ज्ञात होते हैं तब यहाँ ज्ञान जानने में आता है। जिस समय मिथ्यात्व ज्ञेय है जानने में आता है, उस समय यहाँ ज्ञान जानने में आता है, तो अनुभव हो जाता है।

मुझे ज्ञेय जानने में आता है तो ज्ञान का अज्ञान हो जाता है। वह बहिमुर्खता हुई; भ्रान्ति हुई। ज्ञेय ज्ञायक की एकता हुई। जो जानने में आता है उसमें ही आत्मबुद्धि होती है। ज्ञान जानने में आता है तो ज्ञान में ही आत्मबुद्धि होती है, उस..ही समय विकल्प टूटकर निर्विकल्प होता है।

ज्ञेय को जानता हूँ ऐसा संकल्प चला जाता है। श्रद्धा में था कि: मैं पर को जानता हूँ; तो अब मैं जानता नहीं, ऐसे विकल्प के द्वारा अपेक्षा से संकल्प जाता है। अब ऐसा जो विकल्प उठता है कि: मुझे पर जानने में नहीं आता, ऐसा जो विकल्प उठता है.. फिर आता है "मुझे ज्ञान जानने में आता है"। जैसा स्वभाव है ऐसा विचार आया; अब वहाँ द्वेष घटने लगा...., इधर राग घटने लगा..."जाननहार जानने में आता है।" ज्ञायक जानने में आता है। यह जो अंतिम द्वेष का विकल्प है वह छूटकर निश्चयनय का विकल्प आ जाता है। फिर वह भी छूट जाता है। परंतु "जाननहार जानने में आता है" उस ही समय निर्विकल्प होता है। यह ही अनुभव की कला है। पहले निषेध का विकल्प छूटता है। फिर विधि का विकल्प आता है। अरे! "मुझे तो जाननहार जानने में आता है, पर जानने में आता ही नहीं है ना...!" फिर मुझे "जाननहार जानने में आता है" ऐसा भेद भी जानने में नहीं आता! फिर "मुझे जाननहार जानने में आता है"...उसमें एकाग्रता यदि हो जाए तो विकल्प छूटकर उसी समय निर्विकल्पध्यान होता है। इसलिए ज्ञेय ज्ञात होते हैं तो भी ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है। क्यों? यह रहस्य है। यह मूल पॉइंट है। ज्ञेय को जानने के काल में ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं है। कि: ज्ञेय का प्रतिभास होता है..तब "जाननहार जानने में आता है", फिर जाननहार में आ गया, फिर करणलब्धि के परिणाम छूटकर अनुभव होता है।

८३५

"ज्ञेयाकार अवस्था में" क्योंकि... ज्ञेय जनाते हैं ऐसी अवस्था के काल में यह रखा! उस..वक्त क्या (स्थिति) है? सविकल्पदशा है तब क्या जानने में आता है? उस...अवस्था में क्या जानने में आता है? "ज्ञातः" ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ.. 'ज्ञातः' शब्द है न उसका अर्थ किया। ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ उसका अर्थ किया। "ज्ञायकपने जो ज्ञात हुआ", "जाननहारपने जो ज्ञात हुआ"। मैं तो जाननहार हूँ ऐसा ज्ञात हुआ।

अब सविकल्पदशा में जाननहारपने ज्ञात हुआ वह स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायक ही है। हर हालत में "जाननहार जानने में आता है"। हर हालत में..हर समय..उसका अतीन्द्रियज्ञान जो प्रगट हो गया है..उसमें तो "जाननहार जानने में आता

है"। भले उसमें लोकालोक का प्रतिभास हो; हो तो हो..प्रतिभास का निषेध नहीं है वह तो उसकी स्वच्छता है।

८३६

दुःख दुःख में है, आनंदमूर्ति आनंदमूर्ति में है। दुःख में आनंदमूर्ति नहीं है और आनंदमूर्ति में दुःख नहीं है। दुःख का मात्र प्रतिभास होता है, वह ज्ञेयाकार अवस्था है। "ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकपने ज्ञात हुआ" वह मोस्ट इंपोर्टेंट बात है। स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में तो ज्ञायक है।

निर्विकल्पध्यान में तो ज्ञायक जानने में आता है, वह तो सभी कहते हैं। परंतु यह नेपकिन जानने में आता है, तब "जाननहार जानने में आता है"...उसमें वह..व्यावृत हो जाता है, अंदर में आ जाता है। निषेध आ गया ना? ज्ञायक जानने में आता है। तो उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं आई। क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में; आहा! वह जब ज्ञेयसापेक्ष है तब ज्ञान की पर्याय को ज्ञान ना कहकर ज्ञेयाकार कहा है। इस..ज्ञेयाकार अवस्था में "जाननहार जानने में आता है"। यह... सिद्ध करना है।

अविछिन्न धारा से "जाननहार जानने में आता है"। साधक को अविछिन्न धारावाहिक..! एक समय भी ऐसा नहीं होता कि "जाननहार जानने में न आए"। इस एक शब्द में "क्योंकि" वह कोहिनूर का हीरा है। 'क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में...', ज्ञान की अवस्था हुई उसमें 'ज्ञायकपने जो ज्ञात हुआ...' राग मुझे जानने में आता है ऐसा जानने में नहीं आया क्योंकि 'स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में ज्ञायक ही है'। "जाननहार हूँ ऐसा जानने में आता है"।

कर्ता-कर्म का अनन्यपना क्यों है? कर्ता-कर्म का अनन्यपना है इसीलिए ही "जाननहार जानने में आता है"। कर्ता अन्य और कर्म अन्य होता तो जाननहार जानने में ना आता।

८३७

"जाननहार जानने में आता है" इसमें अभी भी पर्याय कर्म बनती है। "मैं जाननहार हूँ" तो वह अभेद में आया।

८३८

'एक ज्ञायकभाव हूँ' वह दृष्टि का विषय है ना? फिर ज्ञायकभाव हूँ ऐसा जानने में आया वह ज्ञान का विषय हो जाता है। परंतु उस दृष्टि के विषय में "एक" विशेषण "एक ज्ञायकभाव हूँ।" प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं हूँ; निषेध किया। फिर जहाँ जाननहार जानने में आया वहाँ जाननहार वह मैं और जनाया वह मैं। ज्ञायक ही हूँ, ज्ञात वह तो वह ही है बस।

८३९

द्रव्य के निश्चयपूर्वक का व्यवहार और ज्ञान की पर्याय का निश्चयपूर्वक का व्यवहार प्रगट होता है। साधक को भी...जब तक मैं पर को जानता हूँ ऐसा पक्ष है वह अज्ञान है। "जाननहार जानने में आता है" वह अभेद होता है तब ज्ञान की पर्याय का निश्चय प्रगट होता है यह सेटिका में बात है।

८४०

जिस ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय किया है ऐसे आत्मा को जान। निर्णय हो गया है। अनुभव कैसे हो? और अनुभव में क्या विघ्न आता है? और उसे कैसे दूर करना, यह भी बताते हैं।

(स.सार गाथा-१४४) परपदार्थ की प्रसिद्धि की कारणभूत जो इन्द्रियों द्वारा और मन के द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियाँ उन सबको मर्यादा में लाकर.. कि: "मुझे पर जानने में नहीं आता, जाननहार जानने में आता है"। इस सूत्र की व्याख्या है। इसमें बारह अंग का सार है। दोनों बातें आ गई। "जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है"। वास्तव में पर को नहीं जानता इसलिए पर को जानना बंद कर दे!! ऐसा कहते हैं। पहले मैं पर को जानता हूँ वह अटक अनुभव में बाधक थी, उसे छुड़ाते हैं। आत्मा को जानेगा तो आत्मा का अनुभव होगा ऐसा नहीं लिया। क्योंकि उसे ऐसा श्रद्धान में है कि मैं पर को जानता हूँ - वह मिथ्याश्रद्धा छोड़ दे। पर जानने में नहीं आता। और पर को प्रसिद्ध करता है वह इन्द्रियज्ञान है। आत्मा पर को प्रसिद्ध नहीं करता।

८४१

यह आत्मा समय-समय ज्ञान से च्युत होता था। पर को मेरा मानकर च्युत हुआ था वह ज्ञान में ही आकर मिल जाता है। ज्ञान ज्ञान से च्युत हुआ था तो इन्द्रियज्ञान बाहर भटकता था वह फिर आकर मिल जाता है मूल स्थान में।

'करनेवाला हूँ' वह (कर्ता)बुद्धि छूट गई। "मैं तो जाननहार हूँ" और "जाननहार जानने में आता है" तो अंदर में आ गया। ज्ञान ज्ञान से मिल गया। ज्ञायक ने पर्याय को अंदर खींच लिया। पर्याय जैसे ही ज्ञायक के सन्मुख हुई तो ज्ञायक का ऐसा बल है कि वह उसे खींच लेता है, बस अंदर आ गई। नदी समुद्र में मिल गई। पानी पानी में मिल गया। (स.सार श्लोक-९४)

८४२

'यह आत्मा अपने विज्ञानघनस्वभाव से च्युत होकर...', उदासीन ज्ञाता-दृष्टा अवस्था उसे छोड़कर... **'च्युत होकर प्रचुर विकल्पजालों के गहन वन में दूर परिभ्रमण कर रहा था...'** यदि वह...दूर जाए तो भी कहाँ तक जाए? कि विकल्प तक

जाए। देह में या कर्म में तो जाता ही नहीं वह उसकी लिमिट है। विकल्प को इन्द्रजाल कहा न!!

विकल्पजाल के गहन वन में दूर भ्रमता था वह कहीं का कहीं निकल गया था अनंतकाल से; वह अब भेदज्ञानरूपी-विवेकरूपी मार्ग द्वारा 'मैं तो ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ'। मेरे ज्ञान में ज्ञान ही जानने में आता है, ज्ञायक ही जानने में आता है; अन्य कुछ जानने में नहीं आता वह ढालवाला मार्ग है। अंदर जाने में वह ढालवाले मार्ग पर आता है।

"मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ।" ज्ञाता ही हूँ और "जाननहार ही जानने में आता है मुझे पर जानने में नहीं आता"। वह ढालवाला मार्ग मिला तो ज्ञान अंदर आकर अनुभव करता है। "जाननहार जानने में आता है पर जानने में नहीं आता"। विकल्प ज्ञात नहीं होते फिर पर की बात तो कहाँ करनी!! (स.सार श्लोक-९४)

८४३

कब विकल्प का अभाव हो? स्वयं ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। यह पहले नक्की करना चाहिए। फिर ज्ञान में ज्ञायक ही जानने में आता है, विकल्प ज्ञात नहीं होते। फिर विकल्प का करनेवाला तो नहीं, परंतु विकल्प का ज्ञाता भी नहीं। मुझे विकल्प ज्ञात नहीं होते, मुझे तो "जाननहार जानने में आता है"। उससे भिन्न हूँ, तब विकल्प टूट जाते हैं। मैं तो ज्ञानमय हूँ न..!! और मुझे ज्ञानमय आत्मा जानने में आता है बस। फिर विकल्प कहाँ से उत्पन्न होवे? स्वाश्रय से विकल्प उत्पन्न होते हैं?!

८४४

परमार्थ प्रतिक्रमण में कर्ता का व्यवहार छुड़ाने के लिए अकर्ता का सहारा लिया है और उसका ज्ञाता नहीं हूँ, उसका निषेध करने के लिए ज्ञायक का ज्ञाता हूँ। "चैतन्य के विलास स्वरूप आत्मा को भाता हूँ"। दोनों बातें हैं। एक बात सूक्ष्म अव्यक्त है। ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार अव्यक्त है, उसमें आ जाता है। "चैतन्य के विलास स्वरूप आत्मा को भाता हूँ।" मुझे तो मेरा भगवान जानने में आता है। **"जाननहार जानने में आता है" वह आया ना? "जाननहार जानने में आता है" इसलिए उपचार से कर्ता नहीं है और "जाननहार जानने में आता है" इसलिए परिणाम का ज्ञाता नहीं है। अकर्ता में कर्ता का उपचार जाता है, और "जाननहार जानने में आता है" उसमें ज्ञाता का उपचार चला जाता है।**

८४५

कर्ता के उपचार में से अकर्ता में आया तो द्रव्य के निश्चय में आया। और चैतन्य के विलास स्वरूप आत्मा को जानता हूँ तो पर्याय के निश्चय में आ गया। उसे उपचार से नहीं जानता। मैं परिणाम को नहीं जानता। निश्चय मोक्षमार्ग के परिणाम का जाननेवाला

वह उपचार है, और करनेवाला वह भी उपचार है। उपचार दोष है परंतु गुण नहीं है।

८४६

जीव की योग्यता और गुरु का उपदेश मिलता है कि भाई! तेरा स्वभाव पर को जानने का नहीं है। पर को जानने से तुझे ज्ञान भी नहीं होता और सुख भी नहीं होता और ज्ञान तो तेरा है, आत्मा का है। तो तू अंदर जाकर आत्मा को जान ना! तो जो समय-समय इन्द्रियज्ञान उत्पन्न होता था वह; अब एक समय ऐसा आया कि उसने पर को जानने का निषेध कर दिया कि, मैं पर को जानता ही नहीं। इतने जोर पूर्वक निषेध किया कि उसी समय इन्द्रियज्ञान रुक गया। क्षय नहीं होता परंतु रुक जाता है। और "जाननहार जानने में आता है" तो पाँचवें समय में...चार समय तो चले गए.... फेल हो गए, पाँचवें समय में वह उपयोग अंदर में आ गया।

"जाननहार जानने में आता है" तो वह उपयोग जो सामान्य था वह कन्वर्ट हो गया। और अतीन्द्रियज्ञान नाम प्राप्त किया। अब उपयोग सम्पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञानमयी नहीं हुआ है; यदि पूरा का पूरा अतीन्द्रिय ज्ञानमयी हो जाए तो... तो केवलज्ञान हो जाए। ऐसा होता नहीं है। अभी तो मति-श्रुत है वह अंशतः अभिमुख हुआ है। अभी थोड़ा इन्द्रियज्ञान भी रह गया है। निर्विकल्पध्यान में लब्धरूप इन्द्रियज्ञान रहता है; क्षय नहीं होता।

८४७

पर को जानना बंद करो और स्व को देखो। जब तक अंदर में ऐसा पड़ा है कि आत्मा पर का जाननेवाला है, ऐसे असद्भूत व्यवहार का पक्ष है, और जब तक उसका निषेध नहीं आता तब तक उपयोग अभिमुख नहीं होता। जहाँ ज्ञेय स्थापित किया है वहाँ ही उपयोग जाएगा। उपयोग अर्थात् इन्द्रियज्ञान का उपयोग। आत्मा के उपयोग की बात नहीं है। आहा! व्यवहार के निषेध के बिना निश्चय का पक्ष नहीं आता, तो पक्षातिक्रांत कहाँ से हो! एकांत हो जाएगा तो? पर को नहीं जानता आत्मा और "जाननहार जानने में आता है" तो एकांत हो जाएगा। हमें इष्ट है। सम्यक् एकांत हो जाएगा।

८४८

मैं जाननहार हूँ; मैं करनेवाला नहीं हूँ। कौनसी क्रिया का करनेवाला नहीं हूँ? ऐसे क्रिया के कोई विभाजन ही नहीं किए। बंध का करनेवाला नहीं और मोक्ष का करनेवाला हूँ, ऐसा नहीं है। यह तो केवली का पेट है वास्तव में हों!! इसमें दोनों बात सम्पूर्ण समेट ली हैं।

जाननहार है और करनेवाला नहीं है, फिर "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। **कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि दोनों का नाश उसमें किया है। सूत्र में ये...दो वाक्य तो अपूर्व हैं, अमृत जैसे हैं। यह जैनदर्शन का मूल है,**

निचोड़ है। पंचमकाल के अंत तक यह तत्त्व टिकेगा। पहले पर को करता था और अब पर को करता नहीं हूँ ऐसा नहीं है।

८४९

अंदर था वह बाहर आया है। बहुत वर्षों से घोलन चलता था। ये दो बातें तो बहुत वर्षों से कहता हूँ। मुंबई जाता था तब ट्रेन के डिब्बे में प्रेमचंदजी से कहा कि : तुम्हें "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता"। मुंबई जाकर प्लेटफार्म पर कहा कि : पंकज! "जाननहार जानने में आता है"। (वाह! प्रभु! सच्ची बात है!)

परंतु जो यह विरोध हुआ ना वह बहुत अच्छा हुआ। विरोध उठा वह बहुत अच्छा हुआ। पूज्य गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद हमारा जो विरोध किया इस बात के ऊपर वह अच्छा हुआ। अधिक स्पष्ट हुआ। उसमें से यह सूत्र (स्टिकर) निकला है ना?

श्रोता:- (अधिक तो इस बात की पुष्टि आपकी लंदन में आयी) जयसेन आचार्य की गाथा... "दर्पण में आए हुए प्रतिबिंब के समान" और उसके बाद उस समय ११४ गाथा के प्रवचनों में गुरुदेव स्वर्ग में से आए। उसमें से एक शब्द निकला कि "अनुक्रम" अनादि से मैंने क्रम भंग किया है उसकी मैं माफी माँगता हूँ। हे भगवान! तुम्हारे मार्ग में क्रम भंग किया है। "जाननहार जानने में आता है ना! सामान्य को जानता है और विशेष को नहीं जानता" तब तो द्रव्यार्थिक आंख खुलती है। मुझे तो इस बात से चोट लगी।

उस वक्त तो धुन थी। पूरे दिन घर पर स्वाध्याय और चर्चा करते थे। ११४ गाथा के प्रवचन छपकर आने के बाद चर्चा करते थे। पूज्य गुरुदेव ने उसमें बहुत खुलासा किया है। पेट भरकर सब कुछ दे गए हैं बस।

"मैं करनेवाला नहीं जाननेवाला हूँ" और "जाननहार जानने में आ रहा है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। ये दोनों बातें भी उनकी ही हैं। यह निश्चय गुरु की है। शिष्य ऐसा कहता है : यह गुरु ने मुझे कहा वह मैं तुम्हें कहता हूँ। तुमने जो बात की न कि जीव इसमें भूल खाते हैं। क्या? कि: पहले पर का कर्ता था अब कर्ता नहीं है, वैसे ही पहले पर का ज्ञाता था अब ज्ञाता नहीं है, इस प्रकार।

यह मूल है, एक द्रव्य का निश्चय और दूसरा पर्याय का निश्चय। यह स्वभाव है, स्वभाव ख्याल में आए तो उसे पर्यायदृष्टि छूटकर ज्ञानी होता है बस इतना ही है।

ज्ञाता का अवलंबन लेने पर साक्षात् ज्ञाता होता है। (श्रोता:- बहुत अच्छा! नया ज्ञाता होता है ऐसा नहीं है।) ज्ञाता है, वह पुराना है और ज्ञाता का स्वीकार करे तो ज्ञाता होता है, और अज्ञान टल जाता है, और नया मोक्षमार्ग शुरू होता है। ज्ञाता होता है वह पहला नंबर नहीं है। "ज्ञाता है" वह पहला नंबर है। "जाननहार हूँ, ज्ञायक हूँ; ज्ञाता हूँ।" "जो चेदा सो अहम्"। जो चेतनेवाला है वह ही मैं हूँ। चेतनेवाले का स्वीकार करे तो ज्ञान

चेतना प्रगट होती है।

८५०

आत्मा को जानना सबसे आसान है। और पर को जानना बलात्कार है। इन्द्रियज्ञान खड़ा करे तो पर जानने में आता है। क्या कहा? तुम इन्द्रियज्ञान खड़ा करते हो तब पर जानने में आता है। आहा! "जाननहार निरंतर जानने में आता है"। उसके ऊपर इसे जाना चाहिए।

८५१

एक मुमुक्षु ने मुझे कहा : तुम निषेध से बात बहुत करते हो!? भाई! तेरी बात सच्ची है। "प्रमत्त-अप्रमत्त मेरे में नहीं है ऐसा ज्ञायक हूँ"। यह मुझे मेरे गुरु के गुरु ने कहा है। प्रमत्त-अप्रमत्त मेरे में नहीं है ऐसा ज्ञायक हूँ, तो कहता है कि अस्ति से बात करो ना? कि: "नहीं"। नास्ति के बिना अस्ति सिद्ध नहीं हो सकती - क्योंकि नास्ति में तेरी अहम् बुद्धि है।

जो तेरे में नहीं है उसे तू अपना मानकर बैठा है। इसलिए ज्ञानी निषेध कराते हैं। "नहीं अप्रमत्त या प्रमत्त"। 'नहीं' वहाँ से शुरुआत की है। इसलिए व्यवहार का निषेध वह वीर्यवान का काम है। **खूब ही वीर्यवान हो वह व्यवहार का निषेध कर सकता है।** फिर निश्चय से "जाननहार जानने में आता है" और व्यवहार से परिणाम जानने में आते हैं तो दोनों में "है" आया ना? दोनों में क्या आया? निश्चय से जाननहार जानने में आता है और व्यवहार से परिणाम जानने में नहीं आते। अब परिणाम जानने में नहीं आते तो देव-गुरु-शास्त्र की तो बात कहाँ करनी!

८५२

ज्ञान जब अभिन्न होकर ज्ञायक के दर्शन करता है तब उसे आनंद आता है। दुःख साध्य नहीं है परंतु आनंद साध्य है। साध्य अर्थात् प्राप्त करने योग्य। जिससे प्राप्त हो वह साधन। प्राप्त होने योग्य प्राप्त हो वह साध्य। जैसे कि रसोई बनानी हो तो कूकर वह उसका साधन है, परंतु... ऐसे भिन्न साधन साध्यरूप से कुछ सिद्धि नहीं होती; परंतु संसार की सिद्धि होती है। साधन साध्य एक जाति के होते हैं।

तो अब स्वपरप्रकाशक ज्ञान जिसका है उसे अभेदपने प्रसिद्ध करे तो उसे साधन कहा जाता है। और शुद्धात्मा के दर्शन हों उसे साध्य कहा जाता है। ऐसे साधन साध्य अभेद होने पर भी वह ज्ञान पर की प्रसिद्धि में रुका हुआ था; इसे (पर को) जानता हूँ...! इसे जानता हूँ...! तो आत्मा जानना रह गया। और इन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ तो उस साधन के द्वारा आत्मा की बिल्कुल प्राप्ति होती ही नहीं।

अब मेरे ज्ञान द्वारा मैं पर को जानता ही नहीं, और "जाननहार ही जानने में

आता है", इसप्रकार जैसे ही अंदर में जाता है तो साध्य और साधन एक जाति के हो गए। ज्ञान साधन और ज्ञायक साध्य- ऐसा करना चाहिए उसके बदले अनंतकाल से उल्टा किया है। यह बड़ी से बड़ी भूल है। स्वपरप्रकाशक में भी उसने परप्रकाशक को पकड़ा है, और स्वप्रकाशक को उड़ाया है।

८५३

जिज्ञासा : "मुझे जाननहार ही जानने में आ रहा है", ऐसे पक्ष में आया... फिर जाननहार की तरफ गया.... फिर पक्षातिक्रांत की क्या विधि है? ये विकल्प टूटने की क्या विधि है?

समाधान : जितना जोर "मैं जाननहार हूँ" उसका आना चाहिए इतना जोर अभी आता नहीं है। और दूसरा क्या है उसमें कि- "पर को मैं नहीं जानता" उसका जितना जोर से निषेध आना चाहिए, उतना नहीं आता। ठीक है, कथंचित् तो जानता है ना! ऐसा अंदर में व्यवहार का पक्ष थोड़ा रहता है, तो परिणति अंदर निश्चय की तरफ झुकती, ढलती नहीं है। निश्चय का जोर नहीं आता वह अपनी खामी है। सूत्र तो सही है। बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आता है।

जिज्ञासा : विकल्प में जोर पकड़ता है ये...!

समाधान : विकल्प ही नहीं आता है, आता है? और जब ज्ञायक का जोर आता है, विचार आता है... विकल्प नहीं है, वो विचार मानसिक पर्याय है। विकल्प नहीं लेना! विकल्प का क्या काम है? ज्ञान लो न। सभी को "जाननहार ही जानने में आता है", मेरे को भी। ये पक्ष भी नहीं है। जिसको पक्ष आता है, वो पक्ष को आगे नहीं करता है। पक्ष आता है जरूर। पक्ष आने के बाद अंतर्मुहूर्त में या तो थोड़े टाइम के बाद अवश्य अनुभव होता है। वो कोलकरार (गारंटी से) होता है। मगर पक्षवाला पक्ष को आगे करता नहीं है।

जैसे सम्यग्दृष्टि का उपयोग भले व्यापार आदि में हो, परंतु उसकी परिणति निरंतर रहती है। वैसे ही अनुभव से पहले एक अपूर्व पक्ष आता है उस पक्ष के बाद किसी को तीन चार घंटों में अनुभव होता है, किसी को थोड़ी देर भी लगती है। देर लगती है तब उसकी परिणति तो चालू रहती है। वह अतीन्द्रियज्ञान की परिणति नहीं है। वह परिणति अलग है, वचनातीत है, ऐसा लिखा है।

पंचाध्यायीकर्ता ने लिखा है, वह स्वयं जानता है परंतु कह नहीं सकता। वचन से अगोचर निर्विकल्पवत्, केवल स्वानुभव गम्य है। इस जीव को अल्पकाल में सम्यग्दर्शन होगा ऐसा केवली भगवान ने देख लिया। "चिरम्-अचिरम्"। नहीं तो वास्तव में तो नैगमनय आदि जो होते हैं, वे नय पूर्वक होते हैं। परंतु ये तो अप्रतिहत भाव से उठा है। वह अपूर्व चीज है। कोई वाणी से कही जा सके ऐसी चीज नहीं है।

८५४

जिज्ञासा : परिणाम परिणामी से होता है, ऐसा आपने कहा था; अब मैं एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। कि: अभी मैं सीमंधर भगवान के दर्शन करने जाता हूँ। ये परिणाम मुझे हुआ उस परिणाम का कर्ता कौन?

समाधान : उस परिणाम का कर्ता परिणाम है। तुम (आत्मा) उसके कर्ता नहीं हो।

जिज्ञासा : अर्थात् कौन सा परिणाम?

समाधान : वह तुम्हें जो विचार आया ना कि मैं सीमंधर भगवान के दर्शन करने जा रहा हूँ; वे परिणाम हुए या नहीं? वे परिणाम किसने किये?

जिज्ञासा : मेरा जो मन है उसने किये !

समाधान : यदि मन ने किये तो मन से तुम्हारा आत्मा भिन्न है।

जिज्ञासा : तो उससे कर्म बंध होता है न?

समाधान : मैं करता हूँ तो कर्म बंध होता है, और मैं उसे जानता हूँ तो भी कर्म बंध होता है।

परंतु मैं परिणाम को करता भी नहीं हूँ और परिणाम को जानता भी नहीं हूँ। जाननहार को जानता हूँ तो कर्म की निर्जरा होती है भाई! **परिणाम किये बिना हुआ करते हैं और मेरा आत्मा मुझे जनाया करता है। परिणाम मेरे किए बिना हुआ करते हैं तो कर्ताबुद्धि जाएगी, ज्ञाताबुद्धि जाएगी और साक्षात् अकर्ता हो जाएगा।**

८५५

सूर्य का दृष्टांत समझकर; स्वपर प्रकाशक में आ जाता है। और स्वपर प्रकाशक में पर की प्रसिद्धि रोक दो, और स्व की प्रसिद्धि करो। बस इतनी ही बात है। और कुछ नहीं है।

स्वपरप्रकाशक कब माना कहलाता है? तुम स्वप्रकाशक में जाओ तब स्वपरप्रकाशक माना कहलाता है। अकेला मैं पर को जानता हूँ वह मिथ्यात्व है। उसे स्वपरप्रकाशक का कहाँ पता है! सूर्य के प्रकाश के समय मकान नहीं दिखता, अकेला सूर्य दिखता है। इसप्रकार ज्ञान में स्वपर-प्रकाशक के समय मुझे शरीर जानने में ही नहीं आता है, अकेला "जाननहार जानने में आता है" तब उसे अनुभव होगा।

अनुभव होने के बाद शरीर को कैसे जानता है? आँख का उघाड़ उसे जानता है, मैं उसे नहीं जानता। अनुभव द्वारा पर को जानने का निषेध आया, वह आया ही। समाप्त हो गई बात। शरीर मेरा है ऐसा स्वप्न में तो आता नहीं, परंतु मैं शरीर को जानता हूँ ऐसा भी आता नहीं। यह मंत्र लेकर जाओ इंदौर में और उसकी साधना करो।

८५६

जिज्ञासा : स्वपरप्रकाशक में से स्वप्रकाशक कैसे निकालना?

समाधान : जैसे द्रव्य-पर्याय स्वरूप वस्तु में से पर्याय का निषेध करके द्रव्य का पक्ष आया वैसे ज्ञान के स्वपरप्रकाशक में से स्वप्रकाशक निकालता है। **जैसे द्रव्य-पर्यायरूप वस्तु में विधि-निषेध से दृष्टि का विषय दिया; वैसे ज्ञान की पर्याय में भी स्वपरप्रकाशक प्रमाण है। उसमें भी मैं पर को जानता ही नहीं, "जाननहार ही मुझे जानने में आता है", ऐसे थोड़े समय विधि-निषेध के विकल्प रहते हैं। अब विषय पलटा।**

मैं पर को जानता ही नहीं। "जाननहार मुझे जानने में आता है"। ऐसा थोड़ी देर; थोड़ी सेकंड...विधि-निषेध करते-करते निषेध का विकल्प छूटता है। "मुझे तो जाननहार जानने में आता है" यह विधि का विकल्प उठता है। उपयोग में आया कि "जाननहार जानने में आता है" तब थोड़ी देर के लिए इन्द्रियज्ञान का व्यापार कामचलाऊ बंद हो जाता है, क्षय नहीं होता। और नये अतीन्द्रियज्ञान में आत्मा के दर्शन होते हैं। **इसप्रकार स्वपरप्रकाशक में से स्वप्रकाशक में आत्मा के दर्शन होते हैं। स्वपरप्रकाशक में नहीं होते। स्वप्रकाशक निश्चय है और स्वपरप्रकाशक व्यवहार है।**

८५७

अनंतकाल से पर को जानता हूँ, तो ज्ञान भी न हुआ और सुख भी न हुआ। इन्द्रियज्ञान में ज्ञान भी नहीं होता और सुख भी नहीं होता। ऐसा विचार करते हुए भेदज्ञान करता है।

जिज्ञासा : एक समय ही मिलता है तो एक समय में वापस मुड़ा जा सकता है या नहीं?

समाधान : हाँ! वापस मुड़ा जा सकता है १००% वापस मुड़ता है.... और आत्मा का अनुभव कर लेता है। अनंतकाल से तो समुच्चयपने... परंतु समय-समय परसन्मुख होता है। एक समय परसन्मुख... फिर दूसरे समय परसन्मुख... फिर तीसरे समय परसन्मुख... परंतु बाद के समय में स्वसन्मुख हो सकता है। परसन्मुख हुआ वह तो विभाव है। टल जानेवाला है ना!

प्रश्न मजे का है। जैसे अनंतकाल संसार में निकाला वैसे अनंतकाल अब वापस आत्मा के दर्शन में निकालना पड़ेगा? कहते हैं! "ना"। १५ दिन निकालने पड़ेंगे? कि: "नहीं"। एक समय। "जाननहार जानने में आता है मुझे पर जानने में नहीं आता"। पर का निषेध आते ही विधि में आ गया !! और डुबकी मारते ही अनुभव हो गया !! एक समय का ही काम है। मिथ्यात्व कितने समय का? एक समय का है। दूसरे समय अनुभव हो

जाता है।

८५८

ज्ञाता को कर्ता मान बैठा है तब तक संसार है। जिस दिन ज्ञाताभाव में आएगा...उस दिन संसार का अंत आएगा। समाप्त! तत्क्षण अनुभव होता है। तत्क्षण अकर्ता के बल से कर्ताबुद्धि छूटकर ज्ञायक में उपयोग आ जाता है। "अकर्ता हूँ ऐसा मैं ज्ञायक हूँ"। ऐसा ज्ञायक ही जानने में आता है। "जाननहार ही जानने में आता है बस"। जाननहार वह ही मैं हूँ। फिर सिद्ध भगवान अपने को ही जाना करते हैं सादि अनंतकाल। उपयोग बाहर निकला नहीं है। उपयोग ज्ञेय से ज्ञेयांतर नहीं होता जरा भी।

८५९

अब स्वपरप्रकाशक में भी कथंचित् है। स्वप्रकाशक तो उपादेय की मुख्यता से है। ज्ञान का धर्म स्वप्रकाशक ही है उसमें उपादेय की मुख्यता है। अब निर्विकल्पध्यान में जब उसका उपयोग अभिमुख हुआ है तब निश्चय स्वपरप्रकाशक प्रगट होता है।

जिज्ञासा : हमारा स्वपरप्रकाशक आएगा या नहीं?

समाधान : अभी तक तूने स्वपरप्रकाशक की बात सुनी थी न वह अज्ञान है। **निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता। ज्ञान आनंद को जानता है तब आनंद की पर्याय के सन्मुख हुए बिना ही ज्ञान आनंद को जान लेता है। उसे निश्चय स्वपरप्रकाशक कहा जाता है।** ज्ञान ज्ञान की अपेक्षा से स्व और ज्ञान में श्रद्धा, चारित्र, आनंद वे सभी गुण भी झलकते हैं। अर्थात् निर्विकल्पध्यान में निश्चय से स्वपरप्रकाशक उदय को प्राप्त होता है। और फिर बाहर आता है तब व्यवहार स्वपरप्रकाशक होता है। जाननहार भी जानने में आता है और देव-गुरु भी जनाते हैं। अब वह व्यवहार स्वपरप्रकाशक कहा जाता है। व्यवहार में पर आता है। निश्चय स्वपरप्रकाशक में पर नहीं आता।

८६०

यह राग है, यह पुस्तक है, यह वाणी है, ऐसे इसका जोर पर में जाता है। उसकी श्रद्धा में अपनी सामर्थ्य का विश्वास ही आता नहीं है कि मेरी ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य ही ऐसी है कि ज्ञायक ही मेरे ज्ञान में जानने में आता है। पहली पुस्तक आदि तो ज्ञेय है। पहला (ज्ञेय) तो तीनों काल में है...है....और है। परंतु "जाननहार जानने में आता है" ऐसी सामर्थ्य उसकी पर्याय में प्रगट हो चुकी है। उसकी श्रद्धा में अपनी सामर्थ्य का विश्वास ही आता नहीं है। कि : मेरी श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय में "जाननहार जना रहा है।" ज्ञायक जानने में आता है ऐसा उसे विश्वास ही नहीं आता।

८६१

दीपक का प्रकाश प्रकाशक को प्रसिद्ध करता है, करता है और करता है ऐसी सामर्थ्य पर्याय में है। "एक समय की प्रकाश की पर्याय में बाल-गोपाल सभी को जाननहार जानने में आता है"। "जाननहार ही जानने में आता है" ऐसी सामर्थ्य पर्याय में प्रगट हो गई है। और वह सामर्थ्य प्रत्येक जीव में है। परंतु उसे श्रद्धा में अपनी सामर्थ्य का विश्वास ही नहीं आता कि: मेरी सामर्थ्य अभी प्रगट हो रही है। मेरा भगवान आत्मा "मुझे जानने में आ रहा है।" मुझे दूसरा कुछ जानने में नहीं आता, ऐसा श्रद्धा में नहीं आता। मुझे पर जानने में आता है, ऐसा श्रद्धा में आता है। इसलिए दृष्टि बहिर्मुख रह गई। उपयोग अभिमुख होता ही नहीं।

८६२

आबाल-गोपाल सभी वास्तव में जाननहार को ही जानते हैं। राग को जानते हैं, स्व-पर को जानते हैं, ऐसा नहीं लिया है। परंतु.."जाननहार को ही जानते हैं"। सम्यक् एकांत में ले गए। ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। अनादि-अनंत ऐसा ही है। उसमें विभाग नहीं है कि: ज्ञानी को आत्मा जानने में आता है और अज्ञानी को देह जानने में आता है।

बाल-गोपाल "सभी को" शब्द प्रयोग किया है ना? वास्तव में ऐसी स्थिति बनी हुई है, तो स्वीकार कर ले। **पर्याय का सामर्थ्य ख्याल में नहीं आता है कि यह "जाननहार ही जानने में आता है"। ऐसी मेरी ही पर्याय की सामर्थ्य है। व्यक्त अव्यक्त को प्रसिद्ध करता है। उत्पाद ध्रुव को प्रसिद्ध करता है। ऐसे उसकी श्रद्धा में अपनी सामर्थ्य का विश्वास नहीं आता कि: "जाननहार जानने में आता है"। ऐसा उसे श्रद्धा में नहीं आता।**

८६३

अज्ञानी की श्रद्धा में ऐसा आता है कि पर जानने में आता है। पर को करता हूँ और पर को जानता हूँ... यह विषय-कषाय की प्रवृत्ति है, और उसमें प्रवर्तता है। इस समय "जाननहार जानने में आ रहा है" परंतु उसे ख्याल में नहीं आता। तेरी श्रद्धा में वह आता ही नहीं इसीलिए तू मिथ्यादृष्टि रह गया, ऐसा कहते हैं। तेरी श्रद्धा में जब "जाननहार ही जानने में आता है" ऐसा आएगा तब सम्यग्दर्शन हो जाएगा। इतनी ही देर है परंतु तू श्रद्धा नहीं करता।

८६४

जीव का चेतना लक्षण है कि जिसके द्वारा ही अनुमान में आता है और उस ही लक्षण द्वारा अनुभव में आता है। पहले अनुमान करता है और फिर अनुभव होता है।

अनुमान निर्णय को सिद्ध करता है। "मैं तो ज्ञानमय हूँ"। अनुमान में जो जाननहार जानने में आया वह ही मैं हूँ। वह ही अनुमान। कितनी बातें ऐसी हैं कि...

समझ गए!! उसका नाम ही अनुमान।

८६५

सविकल्पदशा में तो वास्तव में ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है। "जाननहार जानने में आता है" यह अपूर्व और ऊँची गाथा है, अंतिम बात है। चेतना लक्षण से जानने में आता है, जानने में आएगा ऐसा नहीं लिखा है, जानने में आता है। अर्थात् लक्ष्य और लक्षण अभेद है। अर्थात् लक्षण से लक्ष्य भिन्न नहीं है।

८६६

जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है - इतना विकल्प उठा वह झूठा है। अर्थात् उसमें आत्मा का अनुभव नहीं है। आहाहा! ज्ञान राग को करता है वह विकल्प तो झूठा, ज्ञान की पर्याय ज्ञान की पर्याय को जानती है वह विकल्प भी झूठा, ज्ञान की पर्याय जीव वस्तु को जानती है वह विकल्प भी झूठा, आहाहा! पराकाष्ठा है। इस ही लाइन में १२ अंग का सार है। वस्तु स्वरूप विचारने पर इतना विकल्प भी झूठा है....कितना विकल्प? कि जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है। "जाननहार जानने में आता है" वह विकल्प भी झूठा है। उसमें अनुभव नहीं है। परंतु... "जाननहार वह ही मैं हूँ" उसमें अनुभव होता है ऐसी विशेषता है।

८६७

ध्येय बिना ज्ञेय हो सकता ही नहीं। "ध्येय सामान्य आत्मा होता है फिर ध्येय पूर्वक ज्ञेय" होता है। पर नहीं जानने में आता परंतु ज्ञायक ही जानने में आता है। पर को जानने की रुचि निरंतर रखता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। **"जाननहार जानने में आता है" उसका *धसारा* (झुकाव) अंदर में है, विचार में भेद है। परंतु वह भेद में अटकता नहीं है, अभेद में चला जाता है। परिणति तैयार हो गयी है। ज्ञानी कहते हैं वह सीधा अंदर में झेल (ग्रहण कर) लेता है ऐसी संधि है।**

८६८

जिस ज्ञान में दिव्यध्वनि जनाती है वह ज्ञान की उपाधि है। उस उपाधि को दूर कर। ज्ञेय के संबंधवाला ज्ञान रखता है। ज्ञेय का संबंध तोड़ दे तो ज्ञान रह जाएगा। जिस ज्ञान में अकेला परज्ञेय प्रसिद्ध होता है, और जिस ज्ञान में ज्ञायक तिरोभूत होता है वह ज्ञान नहीं है। "जाननहार जानने में आता है" उसमें आजा ना!! प्रथम "जाननहार जानने में आता है" इतना भेद होता है फिर वह निकल जाता है। अनुभव से पहले गुण-गुणी का भेद सम्मत है। उससे दूर नहीं जाना है। वह भी अनुभव के काल में छूट जाता है।

८६९

पर्याय से रहित हूँ ऐसी श्रद्धा होने पर; पर्याय से सहित हूँ, ऐसा ज्ञान साथ में ही होता है, तब अनुभव होता है। "मैं ज्ञानमय हूँ" वह तो विकल्प है। परंतु ज्ञानमय होकर ज्ञानमय हूँ, वह अनुभूति के काल में हो जाता है। उसके लिए "जाननहार ही जानने में आता है" वह प्रयत्न करना है। जो ज्ञान आत्मा को छोड़कर पर को जानने जाता है वह अपराध है।

८७०

ज्ञायक पलटता नहीं है इसलिए ज्ञान भी पलटता नहीं है। परंतु पर्याय उत्पाद-व्यय के स्वभाववाली है। समय-समय जाननहार बिना पुरुषार्थ के जना रहा है। परंतु उसका समय-समय निषेध करता है। उसका स्वीकार करे तो उसमें अनंतों पुरुषार्थ रहा हुआ है। मेरे ज्ञान में भगवान आत्मा जना रहा है। ऐसे परोक्ष अनुमान ज्ञान में हाँ तो कर। सर्वज्ञ भगवान की वाणी न्याय युक्त है।

८७१

ज्ञेयाकार अवस्था अर्थात् ज्ञेयों के जानने के काल में क्या जानने में आता है? ज्ञेय जानने में आता है? या ज्ञायक जानने में आता है? तो कहते हैं कि ज्ञायक ही जानने में आता है। सविकल्पदशा में ज्ञायक जानने में आता है? तो कहते हैं "हाँ"। ज्ञायक जानने में आता है।

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकपने ज्ञात हुआ वह स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में ज्ञायक है। उसमें तो किसी को प्रश्न है ही नहीं। परंतु ज्ञेय को जानते समय ज्ञेय जानने में आता है या "जाननहार जानने में आता है" मर्म वहाँ है।

८७२

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकपने ज्ञात हुआ, ज्ञेय के ज्ञातापने ज्ञात हुआ ऐसा नहीं है। उपयोग जो बाहर है वह आत्मा का नहीं है। अंतर का उपयोग है वह आत्मा का है। और यदि ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकपने ज्ञात ना होता हो तो उस समय सम्यग्ज्ञान रह ही नहीं सकता। सम्यग्ज्ञान का अभाव हो जाता है। परंतु सविकल्पदशा में या निर्विकल्पदशा में चौबीसों घंटे "जाननहार जानने में आया ही करता है"। उसमें उपयोग और परिणति ऐसे भेद का कोई काम नहीं है। परंतु निरंतर जानने में आया ही करता है।

८७३

कपड़े की दुकान पर बैठे-बैठे कपड़े दिखाते हुए, यह कपड़ा जानने में आता है; या मेरा ज्ञान जानने में आता है? या ज्ञायक जानने में आता है? बस। बस, इतने में तो कपड़ा कपडे में रह जाता है और वहीं के वहीं निर्विकल्प अनुभव हो जाता है। और फिर बाहर निकलकर तुम घर जाओ और छोटे भाई से कहो कि आज भव का अंत आ गया।

परंतु कैसे? तुम स्वाध्याय तो करते नहीं थे, और कोई शास्त्र तो हाथ में नहीं था। परंतु...उपयोग में समयसार था। कपड़ा ज्ञात होता था तब तक अनउपयोग था। और जैसे ही यह कपड़ा जानने में नहीं आता, "जाननहार जानने में आता है" बस वहाँ से लक्ष छूट जाता है। और किसी को पता नहीं चलता।

८७४

"ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकपने जानने में आता है।" सविकल्पदशा है। प्रतिमाजी विराजमान है। सामने दर्शन करता है। एक उपयोग का छोर अंदर में और दूसरा इन्द्रियज्ञान का छोर बाहर में है। **एक उपयोग के दो छोर हैं। उस वक्त ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेय जानने में आता है या "जाननहार जानने में आता है"। आहाहा! "जाननहार जानने में आता है"। ऐसा ना हो तो निर्जरा ना होवे। साधक को निर्जरा होती है "जाननहार जानने में आता है" इसलिए।**

८७५

ज्ञेय को जानने के काल में ज्ञेय जानने में आए तो ज्ञायक हाथ में से गया। अब ज्ञेय को जानने का काल है तब भी "जाननहार जानने में आता है" ऐसा कहना चाहते हैं।

८७६

ज्ञान में जो परपदार्थ ज्ञेय हैं वे जानने में आते हैं, फिर भी उन्हें जानता है ऐसा कहना वह व्यवहार है। ज्ञान उन्हें जानता नहीं है। ज्ञान तो ज्ञान को ही जानता है। कि: जिस ज्ञान की पर्याय में जाननहार जानने में आ रहा है। जाननहार जानने में आ रहा है तब तो उसे ज्ञान की पर्याय कहा जाता है, यदि जाननहार ही उसे ज्ञान की पर्याय में जानने में ना आए तो उसे ज्ञान नहीं कहा जाता परंतु अज्ञान कहा जाता है।

८७७

यहाँ तो स्वयं स्वयं को जाना है। जाननहार ने जाननहार को जाना है। अब जाननहार को जान तो लिया और सविकल्पदशा जानने में आती है, उसके साथ ज्ञान की पर्याय की ऐसी स्वच्छता है कि परपदार्थ का उसमें प्रतिभास होता है।

८७८

ज्ञान की पर्याय को जानते-जानते परज्ञेय जानने में आते हैं इसलिए मोह नहीं होता। ज्ञान की पर्याय को छोड़कर परज्ञेय जानने में आते थे जिससे मोह होता था वह समाप्त हुआ। क्योंकि द्रव्य-गुण-पर्याय, तीनों ज्ञान में से गए। और अकेला परज्ञेय जानने में आता है तो अध्यवसान हो गया। भ्रान्ति हो गई। इन्द्रियज्ञान को जीतते हैं तो ही मोह का नाश होता है; दूसरा कोई उपाय नहीं है। और इन्द्रियज्ञान कब जीता जाता है? कि: मैं पर को नहीं जानता....मुझे पर जानने में नहीं आता है, इतने भेद में परोक्ष अनुभूति हो

जाती है। परोक्ष अनुभूति के बाद प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाती है।

८७९

यह एक खूबी है, राग जब प्रतिभासित होता है, तब "जाननहार जानने में आता है"। यह बात अनुभवी को ही बैठे ऐसी है। बिनअनुभवी को यह ख्याल में भी नहीं आता। सविकल्पदशा में लड़ाई में "जाननहार जानने में आता है" तलवार जानने में नहीं आती! चक्र जानने में नहीं आता? तो कहते हैं "ना"। अनुभवी पुरुष अपना अनुभव घूटते घूटते यह बात करते हैं। हम अपने अनुभव की बात शब्दों द्वारा कहते हैं। जो कोई पकड़ ले तो वह ज्ञानी हो जाए ऐसी बात है।

८८०

ज्ञायक की पर्यायपने जानने में आता है उसमें भेद की अपेक्षा से ज्ञायक की पर्याय कही है। उसमें भी राग की पर्यायपने हूँ- ऐसा ज्ञान जानने में नहीं आता, परंतु मैं तो "जाननहार हूँ" ऐसा जानने में आता है। "जाननहार जानने में आता है" इसीलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे लागू नहीं पड़ती।

८८१

(ज्ञायकभाव पुस्तक) स्पष्ट शब्द हैं। परंतु जाननहार की पर्याय को उसने जाना है इसलिए जाननहार ऐसा आत्मा, आत्मा की अवस्था को वह जानता है। पुद्गल की अवस्था को नहीं जानता। अर्थात् राग को नहीं जानता। राग जानने में आता है (प्रतिभासित होता है) फिर भी गौण है। हर हालत में प्रत्येक समय "जाननहार जानने में आता है" ऐसा कहते हैं। "ज्ञेयाकार अवस्था में भी जाननहार जानने में आता है" और स्वरूप को जानने की प्रवृत्ति शुरु हुई, अंदर निर्विकल्पध्यान में तब "जाननहार जानने में आता है"। सविकल्प या निर्विकल्प में "जाननहार ही जानने में आया करता है"। इसीलिए तो संवर निर्जरा चालू है। संवर निर्जरा इसीलिए चालू है कि : "जाननहार जानने में आ रहा है"। भेदज्ञान इसलिए है कि "जाननहार जानने में आ रहा है"।

८८२

विशेष को जानने का पक्ष छूटा; सामान्य वह ही मैं हूँ। सामान्य का पक्ष ऐसा आया वह भी अभी है विकल्पवाला। मैं ज्ञायक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, वह सामान्य का पक्ष भी अनुभव में छूट जाता है। व्यवहार का निषेध वीर्यवान ही कर सकता है।

८८३

निमित्त जानने में नहीं आता उसमें नैमित्तिक पर्याय जानने में नहीं आती वह भी उसमें आ गया। सीधा "जाननहार जानने में आता है" ऐसा आया। निमित्त नहीं नैमित्तिक पर्याय जानने में आती है उसके बीच में एक स्टेप आया। बिल्कुल

स्थूल में पड़े हुए को वह स्टेप देना पड़ता है। अन्यथा निमित्त जानने में नहीं आता ऐसा कहने पर "जाननहार ही जानने में आता है" ऐसा सीधा आ जाता है।

८८४

"ज्ञेय जानने में आता है" ऐसा स्वीकार करनेवाला दुर्बुद्धि! "जाननहार जानने में आता है" ऐसा तुझे क्यों भासित नहीं होता? अँधा है? देखनेवाले को देखता नहीं! ज्ञेय को जानना और ज्ञान या ज्ञानी को ना जानना, वह एक आश्चर्य की बात है।

८८५

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा जो स्वाश्रित भेद वह छूट जाएगा। क्योंकि उसे "जाननहार जानने में आता है" ऐसा जोर है ना?! उस जोर से भेद छूट जाएगा। "ज्ञान ही जानने में आता है!" इसमें आता है वह काम पूरा करके ही जाता है।

८८६

दिगंबर संतों की बात अलौकिक है। "धर्मास्तिकाय मुझे जानने में आता है" वह "जाननहार जानने में आता है" इस स्वभाव को चूक गया। तो काम कहाँ से होवे? करने का तो स्वभाव ही नहीं है। मान्यता झूठी हो गई है। पर को तो कर सकता नहीं परंतु अपने परिणाम को पलट नहीं सकता ऐसी बात है। अपना पक्ष छोड़ देना चाहिए। ज्ञानी की वाणी पक्ष छुड़ाती है।

८८७

ज्ञेय ज्ञान में जानने में आते हैं उस समय ज्ञायकपने जो ज्ञात हुआ....परज्ञेय जानने में आते हैं वहाँ अटक जाता है, और जाननहार जानने में ना आए तो एकांत परप्रकाशक अज्ञान हो जाता है। इन ज्ञेयों के जानने के काल में ज्ञान जानने में आता है? या ज्ञेय जानने में आता है? "जाननहार ही जानने में आता है"। तब परज्ञेय की तरफ से (लक्ष) छूटकर जाननहार की तरफ आता है।

"ज्ञेयाकार अवस्था में मैं तो जाननहार ही हूँ"। प्रतिमा को जानते समय जाननहार ही जानने में आता है। और आत्मा को जानने पर "जाननहार ही जानने में आता है"। चौबीसों घंटे आत्मा ही जानने में आता है। ये बातें, बातें करने की नहीं हैं; प्रयोग की बातें हैं।

८८८

स्वरूप को जानने के काल में भी "जाननहार ही जानने में आता है"। जिस ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में आया वह जाननेवाला स्वयं और जानने में आया स्वयं ही इसलिए अभेद कर्ता-कर्म स्वयं ही बन जाता है। शुद्ध पर्याय से परिणत आत्मा स्वज्ञेय बन जाता है।

८८९

प्रतिमाजी के दर्शन करने खड़ा हो तब ज्ञान में भगवान जानने में आते हैं। इतना ही ज्ञान का वेदन-स्वाद वह अज्ञान है। ज्ञेय संबंधी ज्ञान उसे ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव कहकर ज्ञेयलुब्ध कहते हैं। उसमें ज्ञेय के साथ एकाकार होता है। जो ज्ञान ज्ञेयाकार हुआ अर्थात् जिस ज्ञान के अंश में ज्ञेय ज्ञात होते हैं उसमें "जाननहार जानने में नहीं आता"।

८९०

"मैं ज्ञाता और छह द्रव्य मेरे ज्ञेय" वह भ्रमणा तोड़ने के लिए ज्ञाता-ज्ञेय के व्यवहार का निषेध करना पड़ेगा। व्यवहार का निषेध करके "जाननहार ही जानने में आता है", वहाँ आना पड़ेगा। करने की तो बात ही नहीं है।

८९१

जिज्ञासा : शुभ राग को जानने पर ममता क्यों नहीं होती?

समाधान : क्योंकि उस वक्त जाननहार को जानता है। इसलिए शुभराग में ममता नहीं होती। ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं लगती? क्योंकि उस वक्त ज्ञायक जानने में आता है। इसके ऊपर से बुद्धि हटाकर ज्ञायक के ऊपर लाता है। "जाननहार जानने में आता है" चौबीसौ घंटे ज्ञायक ही जानने में आता है। कर्ता भी आत्मा और कर्म भी आत्मा ऐसा अभेद कारक है। जब तक ज्ञेय में भेद जानने में आता है तब तक अभेद जानने में नहीं आता।

८९२

ज्ञेय ज्ञान में जानने में आते हैं तब ऐसा विचारता है कि "जाननहार जानने में आता है" तो उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता लागू नहीं पड़ती। परंतु उसे ज्ञायक नहीं ज्ञात होता और परज्ञेय में उपयोग लगाकर जानता है तो अशुद्धता होती है। एक ही समय में स्वपरप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव होने से ज्ञायक का प्रतिभास तो होता है, और ज्ञेय का प्रतिभास भी होता है, परंतु ज्ञेय के प्रतिभास के समय उपयोगपूर्वक ज्ञेय के प्रतिभास को जानने के लिए रुकता है इसलिए उसे अज्ञान होता है।

८९३

मैं प्रैक्टिस करता हूँ कि मुझे "जाननहार ही जानने में आता है"। ऐसा प्रयोग करने पर मुझे अवश्य आनंद का अनुभव होगा ही। लेकिन अभी आनंद का वेदन तो नहीं है फिर भी ज्ञायक जानने में आता है? "हाँ"। भले आनंद का वेदन ना हो परंतु विशेष में-ज्ञान उपयोग में सामान्य ज्ञायक ही मुझे जानने में आता है; क्योंकि सामान्य का विशेष उसकी जाति का ही है। और वह सामान्य को जाहिर करता है। इसलिए प्रयोग करके मुझे मेरा भगवान आत्मा ज्ञायक ही जानने में आता है ऐसा निर्णय करना है।

८९४

तात्विक संबंध किसके साथ है? ज्ञान और आत्मा के साथ तात्विक संबंध है। उसे अलग नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रगट जीवंत संबंध नहीं दिखता। यदि ऐसा विचार में आ जाए कि शास्त्र निमित्त है उस वक्त मुझे ज्ञान ही जानने में आता है। ऐसा बारंबार विचार करे कि ज्ञेय जानने में आता है या ज्ञान जानने में आता है? ऐसा यदि प्रयोग करे तो अनुभव लेकर उठे ऐसी बात है। परंतु यह बात धारणा में रखने के लिए नहीं है।

प्रैक्टिकल करना है कि जाननहार जानने में आता है? या रोटी जनाती है? रोटी करता हूँ वह तो अज्ञान है। रोटी जानने में आती है वह भी अज्ञान है। ज्ञेय जानने में आता है या ज्ञान जानने में आता है? थोड़ी देर "ज्ञान ही जानने में आता है", "जाननहार ही जानने में आता है" ऐसा प्रयोग कर तो अनुभव हो जाता है।

८९५

आत्मा की रुचिपूर्वक अभ्यास मनन वांचन करे तो उसका ज्ञान उघड़ता जाता है और भावभासन होता है। जाननहार ज्ञायक आत्मा को, आत्मा का ज्ञान जानता है ऐसे दो भेद नहीं हैं। स्व स्वामीरूप अंशों के व्यवहार से क्या साध्य है? "जाननहार जानने में आता है" कुछ आगे बढ़ा? नहीं कुछ आगे नहीं बढ़ा। अरे! वह विकल्परूप ही है। परंतु दो भेद छोड़कर आत्मा को अभेदपने जान ले।

८९६

आत्मा आत्मा को जानता है ऐसा भेद छूट जाता है। ज्ञायक ज्ञायक ही है। उसमें ही अनुभव होता है; उसमें भेद छूटकर निर्विकल्प आत्मा की अनुभूति होती है। इसलिए ज्ञाता वह तो वह ही है। "जाननहार वह ज्ञायक और जानने में आया वह भी ज्ञायक ही है"। परिणमन हो जाता है। फिर ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय के भेद नहीं रहते।

८९७

ज्ञानी को ज्ञेय जानने में आता है तब ज्ञान उसमें तन्मय नहीं होता। अपनेरूप नहीं मानता। इसलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं होती। ज्ञानी का उपयोग बाहर में आता है तब भी मुझे "जाननहार ही जानने में आता है"। ऐसा करके फिर से निर्विकल्प हो जाता है। **जो सम्यग्दर्शन की विधि है, वह ही चारित्र की विधि है।**

८९८

जाननहार कौन है? वह तो स्वयं आत्मा ही है। और जानने में आया वह भी आत्मा है। "स्वयं जाननहार और स्वयं ही जानने में आता है"। प्रत्येक में स्वयं ही है। उसमें द्विविधता नहीं है। वस्तु के स्वभाव में दो भेद नहीं हैं। स्व-स्वामीरूप अंशों के व्यवहार से क्या साध्य है?

८९९

आत्मा का अनुभव हुआ उसमें "मात्र ज्ञायक हूँ" ऐसा प्रतीति में आ गया। "मात्र ज्ञायक हूँ" ऐसा स्वीकार कर ले!! उसमें परिणाम का कर्ता नहीं है वह आ गया। कहने की जरूरत नहीं है। 'मात्र' में कर्ताबुद्धि का नाश हो गया। "मात्र ज्ञायक" में 'मात्र' विशेषण लगाया है ना? ऐसे ही मुफ्त में नहीं लगाया? "मात्र ज्ञायक हूँ" ऐसे ज्ञायक के दर्शन अंतर्दृष्टि से होने पर अनुभव हुआ। बाद में सविकल्पदशा में आने पर परिणाम के दो प्रकार हो गए।

पहले मिथ्यादर्शन में शुभाशुभभाव ही थे। ज्ञानी हुआ फिर आत्माश्रित निर्विकारी परिणाम प्रगट हुए। तो जो परिणाम प्रगट हुए उन्हें जानता है परंतु जानने के समय उसे पर्यायदृष्टि क्यों नहीं होती? ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं है?

परिणाम को जानने मात्र से पर्यायदृष्टि नहीं होती। द्रव्य को जानते-जानते परिणाम को जानता है। और परिणाम जानने के समय जाननहार को जानता है, ज्ञायक को जानता है। सविकल्पदशा में रोटी खाता हो। दुकान में दाल चावल का व्यापार भले ही करता हो..! परंतु दाल जब ज्ञान में ज्ञेय होती है, तब यदि मात्र दाल और चावल ज्ञान में ज्ञेय होते हैं; तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। तो ज्ञेय ज्ञायक संकर दोष हो गया।

लेकिन जब दाल जानने में आती है तब "जाननहार जानने में आता है"। ज्ञायक जानने में आता है तो पर्यायदृष्टि नहीं होती। क्योंकि अपने आत्मा को जानते-जानते वह जानने में आ जाता है। परिणाम को जानने का पुरुषार्थ नहीं है। द्रव्य स्वभाव को जानने का पुरुषार्थ है। परिणाम तो सहज में-मुफ्त में जानने में आ जाते हैं। दृष्टि में द्रव्य को लेने के लिए रुचि की कीमत चुकानी पड़ती है।

९००

प्रकाश और दीपक का भेद किया तो व्यवहार भले ही हुआ, परंतु वह प्रकाश भेदरूप व्यवहार है। वह घड़े को प्रसिद्ध करता है या प्रकाश दीपक को प्रसिद्ध करता है? क्योंकि भेद दीपक से अभेद है। यह..तो समझाने के लिए भेद कल्पना की है, भेद कल्पना करने से दीपक से प्रकाश अलग नहीं पड़ जाता। इसलिए इस भेद ने परमार्थ को ही बताया।

ज्ञान वह आत्मा, जाने वह आत्मा, ऐसा कहा है ना?! "जाननहार जानने में आता है" उसने भी जाननहार को ही प्रसिद्ध किया ना?! उसमें तो विकल्प उठता है ना? ! रहने दे ना! भेद, विकल्प को प्रसिद्ध नहीं करता! विकल्प होता है तो विकल्प जानने में नहीं आता। विकल्प भले हो! परंतु वह भेद राग को प्रसिद्ध नहीं करता। क्योंकि वह राग के

साथ तादात्म्य नहीं है। और यह...भेद अभेद के साथ तादात्म्य है। इसलिए यह ज्ञान..ज्ञेय रूप ज्ञायक को ही प्रसिद्ध करता है। अभेद से तो ज्ञायक जानने में आता है। परंतु भेद में आने पर भी ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक ही जानने में आता है। ऐसा कहते हैं इस....सविकल्पदशा में भी ज्ञायक जानने में आता है।

यह....जो भेद है न वह अभेद को प्रसिद्ध करता है। अब यदि वह अभेद को प्रसिद्ध ना करे और अभेद को प्रसिद्ध करना बंद हो जाए और राग को प्रसिद्ध किया करे तो ज्ञान नहीं रहता।

९०१

पूज्य गुरुदेव ने मार्च ८१ के आत्मधर्म में एक बात की है कि: वास्तव में आत्मा पर को जानता ही नहीं। तो पर की तरफ उपयोग लगाने की बात ही कहाँ रही। "जाननहार ही जानने में आता है" समय-समय। और जो पर को प्रसिद्ध करता है इन्द्रियज्ञान, वह तो हमारा है नहीं। वह तो ज्ञेय है। उसे हम ज्ञान नहीं कहते। जो ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध करे उसे ज्ञान कहते हैं, उसे व्यवहार कहते हैं। इन्द्रियज्ञान वह व्यवहार नहीं है। इन्द्रियज्ञान अभेद का भेद नहीं है। वह तो ज्ञेय का भेद है। वह ज्ञान का भेद नहीं है। जो ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध करे वह अभेद का भेद है। ऐसी दो धाराएं हैं। इन्द्रियज्ञान कर्म धारा में जाता है।

९०२

एक बार अंदर से भावना जागी कि मेरे ज्ञान का मुझे सदुपयोग करना है। इसलिए मेरे ज्ञान के द्वारा अपने आत्मा को जानना है। ऐसे जब अंतर से भावना जागती है और जो एक बार आत्मा के दर्शन होवे तो फिर सादि अनंतकाल तक उपयोग नहीं बदलता। उपयोग आत्मा की तरफ रहा करता है। एक का लक्ष रहा करता है। उसे अल्पकाल में मुक्ति होती ही होती है।

तुम्हारे उपयोग में आत्मा ज्ञात तो हो रहा है लेकिन "जाननहारा जानने में आता है" उसे ऐसा विश्वास नहीं आता। और जो जानने में नहीं आता, वह जानने में आता है...यह उपयोग का दुरुपयोग है। प्रत्येक जीव को प्रत्येक समय उपयोग प्रगट होता है। उस उपयोग में भगवान आत्मा जानने में आता है, परंतु उसे विश्वास नहीं है, उसे घड़ी में कितने बजे हैं... वह जो उपयोग से भिन्न है वह जानने में आता है, और जो उपयोग से अभिन्न है वह जानने में नहीं आता। उसने उपयोग का दुरुपयोग किया ऐसा कहने में आता है।

९०३

उपयोग लक्षण अलक्ष्य को प्रसिद्ध करता था। अब वह उपयोग तो आत्मा का है। और आत्मा से तो अनन्य है। उपयोग में तो आत्मा जानने में आता था, तो आत्मा जानने में आ जाएगा और नहीं ज्ञात होता तो वह कालांतर में भी ज्ञात नहीं होगा। जानने में आता है "हाँ" कर तो हालत हो जाएगी। तुझे ज्ञात हो रहा है ऐसा! ज्ञानी कहते हैं। हमारे उपयोग में तो हमारा आत्मा जानने में आता है। लेकिन तेरे उपयोग में तेरा आत्मा ज्ञात नहीं होता? तेरे उपयोग में देह नहीं ज्ञात होता, तेरे उपयोग में हम ज्ञात नहीं होते। क्योंकि हम अन्य हैं। अन्य जानने में नहीं आता और अनन्य ज्ञात हुए बगैर रहता नहीं। सदाकाल बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा अनुभव में आता है। "हाँ" कर। "हाँ" कर कि पर जानने में नहीं आता परंतु "जाननहार जानने में आता है।"

९०४

प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादिकाल से है। वह कैसा है? शुभभाव कुछ मददरूप तो होता है ना? धीमे-धीमे! किसी परंपरा से तो कारण होता है ना?

ऐसे कर-करके मिथ्यात्व को पोषता है। जो आत्मा में नहीं है; आत्मा उसे करता नहीं है; करना अशक्य है। शुभाशुभभाव को; पुण्य को; आत्मा नहीं करता। हाय! हाय! पुण्य को नहीं करता? "ना"। अरे! पुण्य को तो नहीं करता लेकिन धर्म को भी करता नहीं है। सुन अभी! होता है उसे करे क्या? परिणाम होने योग्य होते हैं और "जाननहार जानने में आता है"। ऐसा ले ले ना! काम हो जाएगा। इस परिणाम को मैं करता हूँ, और, पाप का त्याग करता हूँ; और पुण्य को ग्रहण करता हूँ; फिर पुण्य का त्याग करता हूँ; और धर्म को ग्रहण करता हूँ। 'ग्रहण त्याग से परमात्मा शून्य है'। वह ग्रहता भी नहीं और छोड़ता भी नहीं। सम्यग्दर्शन को ग्रहता भी नहीं और मिथ्यात्व को छोड़ता भी नहीं है, वह तो जानता है।

९०५

"भिन्न-भिन्न ज्ञानों से उपलब्ध होने से", आत्मा वास्तव में स्व-संवेदन ज्ञान से जानने में आता है। बाल-गोपाल सभी को जानने में आता है वह सविकल्प स्व-संवेदन है। यह ध्यान रखना।

ऐसा एक ज्ञान आत्मा के सन्मुख जब होता है तब सविकल्प स्व-संवेदन ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। यह (अनुभव) शुद्धोपयोग से पहले की बात है।

जयसेनाचार्य भगवान ने प्रवचनसार की ८० नंबर की गाथा में अनुभव कैसे होता है, सम्यग्दर्शन कैसे हो उसकी विधि बताते हुए यह बात की है। अनुभव से पहले सविकल्प स्व-संवेदन ज्ञान में अनुभव हो जाता है। परंतु परोक्ष अनुभव, सविकल्प स्व-संवेदन है ना? प्रत्यक्ष नहीं है; लेकिन परोक्ष अनुभव सभी को होता है।

ऐसा कहते हैं अकेला प्रतिभास नहीं है कुछ विशेषता है अंदर में। वह विशेषता संज्ञी पंचेन्द्रियों को ही होती है। असंज्ञी को नहीं होती। उसे प्रतिभास मात्र होता है। उसे विशेषता नहीं होती। विशेषता मनवाले प्राणी को ही होती है। मुझे "जाननहार ही जानने में आता है"। आहाहा! दूसरा कुछ नहीं जानने में आता। ऐसा यदि वह पर्याय स्वभाव के पक्ष में आए तो पर्याय प्रत्यक्ष हो जाती है। इस वर्तमान वर्तते ज्ञान में ज्ञान है ना! यह...राग नहीं है..., यह...अज्ञान नहीं है... उसमें जानने की क्रिया होती है। उस जानने की क्रिया से आत्मा कथंचित् अभिन्न है। कथंचित् तादात्म्य है। इस... ज्ञान से आत्मा अनन्य है इसलिए उसमें परोक्ष अनुभूति हुआ करती है। जैसे इन्द्रियज्ञान सर्वथा भिन्न है, वैसे उपयोग से आत्मा सर्वथा भिन्न नहीं है।

९०६

"जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को निरंतर जानती है"। ऐसा कलश टीकाकार ने आठ नंबर के कलश में कहा है।

सामान्य ज्ञान तो प्रगट होता है। **सामान्य ज्ञान अर्थात् विशेष के संबंध बिना का, विशेष के अवलंबन बिना का और आहाहा! ज्ञायक के अवलंबनवाला परंतु अभेद होकर नहीं। भेद होकर उसे जानता है। भेद रहकर भी भेद अभेद को जानता है परंतु पर को नहीं जानता।** पर को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान अलग है। बाजी हाथ में है। जिसको अनुभव करना हो उसको तो ऐसा लेना चाहिए कि: मुझे तो "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता" तो शुद्धोपयोग हो जाता है। ज्ञान अभेद रहे तो भी आत्मा को जानता है, किन्तु पर को नहीं जानता। भेदबुद्धि करने पर भी; यह ज्ञायक और यह उपयोग लक्षण ऐसा भेद कर न तो भी वह भेद अभेद को प्रसिद्ध करता है।

भेदबुद्धि करने पर भी आहाहा! जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है। फिर अभेद होता है तो प्रत्यक्ष हो जाता है। परोक्षरूप से जाने तब प्रत्यक्ष होता है। यदि परोक्ष का स्वीकार नहीं होता और मुझे यह जानने में आ रहा है..यह जानने में आ रहा है..वह तो बहिर्मुख ज्ञान हो गया। बहिर्मुख ज्ञान के समय भी एक उपयोग अंतर्मुखी रहा हुआ है। वह अंतर्मुख होकर अभेद होता है तो अनुभव हो जाता है। जानता है ज्ञान, इसलिए सभी को जानने में आता है। सामान्य ज्ञान आत्मा को जानते हुए ही प्रगट होता है। उत्पाद ध्रुव को प्रसिद्ध करता हुआ ही प्रगट होता है। ज्ञान ज्ञायक को जानता है ऐसा ही ज्ञान प्रगट होता है। इसलिए प्रत्यक्ष हो जाता है।

९०७

अमितगति आचार्य भगवान के योगसार के बोल से- "शरीर वास्तव में इन्द्रियज्ञान से जानने में आता है"। "आत्मा वास्तव में स्वसंवेदन ज्ञान से जानने में आता है"। राग से आत्मा जानने में नहीं आता, वैसे ही शास्त्रज्ञान से आत्मा जानने में नहीं आता। परंतु आत्मज्ञान से आत्मा जानने में आता है वैसा आत्मज्ञान प्रगट होता है। जैसे इन्द्रियज्ञान अनादि से प्रगट हो रहा है वैसे आत्मा को जाननेवाला आत्मज्ञान भी अनादि से प्रगट हो रहा है। उस सामान्य ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। और ज्ञान विशेष में पर जानने में आता है। ज्ञान सामान्य में स्व जानने में आता है। ऐसे दो भाग अंदर अंतरंग में रहे हुए हैं।

चैत्य-चेतक एकसाथ प्रगट होता है, ऐसा लिखा है! चैत्य अर्थात् राग और चेतक अर्थात् आत्मा को जाननेवाला उपयोग भी एक समय में प्रगट होता है। एक समय में दो प्रगट होते हैं, लेकिन उसका लक्ष राग पर है। इसीलिए उसे "जाननहार जानने में आ रहा है" वह लक्ष में नहीं आता, वास्तव में स्वसंवेदन ज्ञान से जानने में आता है, परंतु परोक्ष और प्रत्यक्ष जितना अंतर है। यह ध्यान रखना। अज्ञानी को प्रत्यक्ष आत्मा जानने में नहीं आता इतना अंतर है, नहीं तो आनंद आना चाहिए। सम्यग्दर्शन होने का कारण जिसके हाथ में आता है उसे सम्यग्दर्शन होता है, होता ही होता है। "जाननहार जानने में आ रहा है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। निश्चय का हकार और व्यवहार का नकार।

९०८

अज्ञानी मानता नहीं यह उसका दोष है। वरना गुरुदेव के (प्रवचन रत्नाकर के) ११ भाग हैं कि: "जाननहार जानने में आता है...जाननहार जानने में आता है..जाननहार जानने में आता है..जाननहार जानने में आता है"। आप किसे कहते हो? कि: तुझे कहता हूँ! हमें तो जाननहार जानने में आता है प्रत्यक्षरूप से। तुझे भी परोक्षरूप से जाननहार जानने में आता है। यह... परोक्षरूप से जानने में आता है यह "हाँ" करेगा तो प्रत्यक्ष हो जाएगा। लेकिन मुझे जानने में आता ही नहीं, ऐसे परोक्ष में से भी गया तो सम्यग्दर्शन कहाँ से हो!?

९०९

दुकान मेरी.. तो दुकान आत्मा की हो गई! पुत्र मेरा.. तो पुत्र मेरा हो गया ! इस प्रकार मूढ़ हो गया है। उसकी भेदज्ञान की शक्ति संकुचित हो गई है, ऐसे जीव को यह "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा ख्याल में नहीं आता। यह अनुभूति अर्थात् कि "ज्ञायक मैं हूँ" ऐसा ख्याल में नहीं आता।

९१०

जाने हुए का श्रद्धान होता है, नहीं जाने हुए का श्रद्धान नहीं होता। पहले ज्ञान का विषय बताया। फिर किस काल में जानने में आता है वह बताया। अज्ञानी के ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। सभी को जानने में आता है कहा। पाँच इन्द्रियों के भोग में पड़ा हो; खाने-पीने का भोग, पहनने-ओढ़ने के, पाँच इन्द्रियों के विलास में पड़ा हो, तब "जाननहार जानने में आता है"।

जाननहार भगवान आत्मा उसमें ज्ञेयत्व है। प्रमेयत्व नाम का त्रिकाली गुण है; इसलिए ज्ञान का विषय हुआ करता है। और ज्ञान में ज्ञानत्व है इसलिए वह जाना करता है। एक जनाय और दूसरा जाने। जनाय क्या? और जाने कौन? भगवान आत्मा में प्रमेयत्व नाम का गुण है और ज्ञान में ज्ञानत्व है इसलिए ज्ञान में कभी अँधेरा नहीं होता। वह किसे जानता है? वह ज्ञान भी ज्ञेय, ज्ञायक भी ज्ञेय, गुण भी ज्ञेय सब ज्ञेयरूप से है। ऐसा अनादि-अनंत चला ही करता है। कोई स्वीकार करे तो अनुभव हो जाता है।

९११

"ज्ञान भिन्न और राग भिन्न" उपयोग में उपयोग है। उपयोग में राग नहीं है। राग के सद्भाव के समय राग उपयोग से भिन्न है। अब उपयोग से भिन्न है तो भगवान आत्मा से तो भिन्न होवे ही ना? उसमें तुझे शंका क्या पड़ती है? अब ऐसे जिस ज्ञान में पर जानने में आता है और स्व जानने में आता है उसमें पर का क्या? और स्व का क्या? उसका भेदज्ञान करना है कि: "जाननहार जानने में आता है" "ज्ञायक वह ही मैं हूँ", रागादि, देहादि और पर जानने में आता है वह मेरा भाव नहीं है। ऐसे भेदज्ञान करके, पर्याय के ऊपर से छूटकर द्रव्य के ऊपर लक्ष आए तो उसे आत्मा का साक्षात् अनुभव होता है। आत्मा का साक्षात्कार; जिसे अन्यमति साक्षात्कार कहते हैं वह पंचमकाल में होता है। जिसे आत्मदर्शन कहने में आता है।

९१२

राग का करनेवाला दूसरा अर्थात् द्रव्यकर्म है; राग का जाननेवाला दूसरा अर्थात् इन्द्रियज्ञान है। इस सूत्र में दोनों का निषेध है। करनेवाला नहीं, परंतु "जाननेवाला जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता"। जाननहार जानने में आ रहा है, ऐसे भेद में भी जाननहार जानने में नहीं आएगा।

इन्द्रियज्ञान में भी राग जानने में नहीं आता केवल ज्ञायक ही जानने में आता है वह निर्णय है। "जाननहार जानने में आता है" आनंद आया?! "नहीं"। परंतु**....तुझे खबर नहीं है कि: "जाननहार जानने में आता है" उसमें आनंद आएगा क्योंकि निर्णय सच्चा है। अनुमान वह व्यवहार और अनुभव वह निश्चय है। दोनों का विषय एक है।**

९१३

परोक्ष की बात नहीं है, प्रत्यक्ष आनंद वेदन में आता है उसे स्वयं जानता है। शक्कर जीभ पर रखे तो किसी से पूछता है कि यह मीठी है या खट्टी है! या कड़वी है शक्कर? किसी को पूछता ही नहीं। ऐसे ही जिसने अंतर्मुख होकर अंतर्दृष्टि के द्वारा चैतन्य परमात्मा को निहारा- अवलोकन किया और अनुभव में लिया कि : जाननहार वह मैं हूँ; करनेवाला मैं नहीं। और "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता" इसप्रकार कर्तृत्व छोड़कर; पर का ज्ञेयत्व छोड़कर और आत्मा ही ज्ञान, आत्मा ही ज्ञेय, आत्मा ही ज्ञाता ऐसा अभेद अनुभव करे तो होता है।

९१४

ज्ञान की पर्याय में बाल-गोपाल सभी को ज्ञायक जानने में आता है परंतु वह उसे नहीं जानता। उस अपेक्षा से ज्ञान ने सामान्य का तिरोभाव किया और विशेष ज्ञान का आविर्भाव किया। मुझे यह...(पर) जानने में आता है...मुझे यह जानने में आता है...। परंतु (अब सामान्य का आविर्भाव किया तो-) मुझे सामान्य में सामान्य जानने में आता है। सामान्य ज्ञान में द्रव्य सामान्य जानने में आता है; ज्ञायक आहा! द्रव्यार्थिकनय की आँख खोलकर देखता हूँ तो एक सामान्यज्ञान परोक्षरूप से तो आत्मा की अनुभूति कर रहा है। अब उसका प्रत्यक्ष होने का काल आता है तब "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" ऐसे स्वभाव के पक्ष में आता है जीव। ऐसे पक्ष में आता है उसे या तो अंतर्मुहूर्त में अथवा अधिक से अधिक ६ महीने में आत्मा का अनुभव होता है। ६ महीने से अधिक काल नहीं होता। रुचिवंत को यह उघाड़ की रुचि, पुण्य की रुचि, पुण्य के फल की रुचि छोड़नी पड़ेगी। यदि उसे सुखी होना हो तो।

९१५

राग के सद्भाव में राग का लक्ष छोड़कर आत्मा का अनुभव हो सकता है। राग का अभाव करने की जरूरत नहीं है। राग के राग का अभाव हो जाता है। जैसे ही सम्यग्दर्शन हुआ तो राग मेरा, ऐसी ममता छूट गई, और राग रह गया। आनंद पुत्र रह गया और आनंद की ममता छूट गई। अरे! एक बार तेरे ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में आ रहा है; "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसे पक्ष में तो आजा। "ना" किसलिए करता है? "ना" करेगा तो 'ना' आयेगा, 'हाँ' करेगा तो हालत होगी। 'ना' करेगा तो 'ना' आएगा। वह तो सभी समझ जाते हैं। इसे स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है। "ना" के दो प्रकार हैं। एक नरक और एक निगोद।

९१६

अच्छे, बड़े घर का रिश्ता आये तो स्वीकार कर लेना! मना मत करना! ऐसे यह परमात्मा का बुलावा है, कि! तेरा आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न परमात्मा अभी प्रगट है और प्रत्यक्ष है। तेरी देर से देर है। तू 'हाँ' कर इतनी ही देर है। "जाननहार जानने में आ रहा है" तुझे 'हाँ' करने का काम है। बाकी सब तो होता रहेगा। जैसे विवाह में टीका करने जाते हैं तो तुम 'हाँ' कर दो, बाकी सब हमारे ऊपर छोड़ दो।

९१७

"यह जाननहार सो मैं," यह (पर) जनाय सो मैं नहीं। उसमें सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। ऐसे उपजे हुए आत्मकर्म के विवेकपने से अर्थात् भिन्नता से स्वभाव और विभाव दोनों भिन्न-भिन्न हैं। थे तो स्वभाव से भिन्न लेकिन विभाव की दृष्टि से स्वभाव तिरोभूत होता था। इसीलिए एकत्वबुद्धि थी। अब जब विवेक जागा तो स्वभाव से विभाव भिन्न है ऐसे स्वभाव का भान हुआ।

आहाहा! राग से भिन्न मेरा आत्मा है, उपयोग में राग नहीं है, यह.. सामान्य उपयोग में उपयोग है इतने में तो शुद्धोपयोग हो जाता है। उपयोग में अर्थात् वर्तमान वर्तते ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है"। मेरे ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है" राग नहीं जनाता क्योंकि उसमें राग नहीं है। ज्ञायक में तो राग नहीं है किन्तु उपयोग में राग नहीं है। मिथ्यात्व की चिकास उपयोग में नहीं आती। तो ज्ञायक में तो कहाँ से आए?

९१८

उपयोग की स्वच्छता है उसमें क्रोधादि जानने में आते हैं (प्रतिभासते हैं)। बहुत जगह पर यह बात है। क्रोधादि जानने में आते हैं तो कहीं ज्ञान में आ जाते हैं? दर्पण में कोयला जानने में आता है तो कहीं दर्पण काला हो जाता है! "अपने पुरुषार्थ से करने में आए हुए सहज एक ज्ञायकभावपने के कारण" देखो! भगवान आत्मा तिरोभूत हो गया था परंतु उसका अभाव नहीं हुआ था। आत्मा होते हुए भी दिखता नहीं था।

"नयन की आलसे रे मैंने नहीं निरख्या हरि को जरी"। जानने में तो आता है समय-समय परंतु यह जाननहार जानने में आता है समय-समय ऐसा नहीं लगता। यह सब (पर) जानने में आता है ऐसा जानकर इन्द्रियज्ञान उत्पन्न करके भटक रहा है।

९१९

ऐसा उपयोग है कि जिसमें राग का प्रवेश नहीं है। राग भिन्नरूप से जानने में आता है परंतु राग अभिन्नरूप से जानने में नहीं आता। दुःख भिन्नपने जानने में आये ऐसा ज्ञान प्रगट होता है, परंतु दुःख अभिन्नपने ज्ञात हो वैसा ज्ञान प्रगट नहीं होता। एक ऐसा सामान्य ज्ञान है न कि "उपयोग में उपयोग है।" उपयोग में क्रोधादि कर्म तो है ही नहीं, उसका नाम अभी सामान्य ज्ञान कहा जाता है।

सामान्य ज्ञान का पक्ष आता है; निश्चय ज्ञान का कि: "जाननहार जानने में आता है" तो उसे शुद्धोपयोग होकर साक्षात् अनुभव होता है। शुद्धनय का उपदेश भी विरल है। उसे सुननेवाले भी विरल हैं।

९२०

रात- दिवस मजदूरी करता है उसे हजार रुपये भी बैंक बैलेंस नहीं होता। उसे ऐसा लगता है पुरुषार्थ करता हूँ; परंतु पर में पुरुषार्थ किसी दिन होता नहीं। पुरुषार्थ तो स्वभाव के सन्मुख होकर स्वभाव के दर्शन करना उसका नाम पुरुषार्थ है। यह राग करना, मिल चलानी वह पुरुषार्थ है? वह पुरुषार्थ नहीं, अज्ञान है।

उसे कर्ताबुद्धि का भूत चढ़ गया है। जगत के जड़ चेतन के परिणाम स्वयं होते हैं और "जाननहार जानने में आता है" यह स्थिति है। परंतु उसे स्वीकार नहीं आता। *"हूँ करूँ, हूँ करूँ, ए ज अज्ञानता शकट नो भार जेम श्वान ताणे । सृष्टि मंडान सर्व एनी पेरे कोई योगी योगीश्वरा जाणे"* नरसिंह मेहता अन्यमति भी ऐसा कहते हैं।

९२१

गुरुदेव कहते थे कि बाजरा उगाए तो १०...२० खांडी बाजरा तो होता है, लेकिन साथ में घास होती है। होती है या नहीं? होती है। ऐसे ही आत्म अनुभव होता है उसके साथ ये पुण्य के प्रकार घास-फूस हैं। जानवर खाते हैं हों! मनुष्य नहीं खाते। आनंद का अनुभव करता है वह... सम्यग्दृष्टि घास-फूस नहीं खाता। यह सत्य बात है, हकीकत। संत फरमाते हैं "अपनी बुद्धि से डाले हुए शुद्धनय के अनुसार बोध होने मात्र से"; "मैं जाननहार हूँ, वहाँ जाननहार जानने में आ गया।" इतने बोध में काम हो गया? कि: "हाँ", काम हो गया। भव का अंत आ गया।

९२२

आत्मा तो केवल ज्ञाता है, और कर्ता नहीं है। आत्मा तो केवल ज्ञाता है। उसे जानते-जानते अपने स्वकाल में पर्याय उत्पाद-व्ययरूप हुआ करती है। स्वाश्रित और पराश्रित। सद्भूत और असद्भूत दो प्रकार के परिणाम साधक को होते हैं।

थोड़ा संवर, निर्जरा; थोड़ा आस्रव, बंध ये चार भाव एकसाथ होते हैं। मोक्ष नहीं होता तब तक। अपरमभाव में स्थित है उसे व्यवहार का उपदेश है। व्यवहार का आत्मा में सर्वथा अभाव कहा था वह... ठीक था। अब यहाँ व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। इसलिए वे... परिणाम आत्मा में घुस गए हैं ऐसा नहीं कहना है। वह आगे की बात कायम रखकर उससे भिन्न परिणाम होते हैं। द्रव्य को वे छूते नहीं। द्रव्य उनका कर्ता नहीं।

ज्ञायक को जानते-जानते; अभेद को जानने पर भेद को जानता है। परंतु यह... भेद को जानने की दशा हुई उसका नाम सविकल्पता है। वह....**वापस भेद को उलंघ**

जाता है। भेद को जानता है तब तक सविकल्प है। फिर मुझे तो "जाननहार जानने में आता है"; परिणाम परद्रव्य हैं, इसलिए वे मुझे ज्ञात ही नहीं होते। हें!! परद्रव्य हैं! जानने में नहीं आते वहाँ तो फिर से शुद्धोपयोग होता है। ऐसी एक साधक की स्थिति का वर्णन है। साधक हुआ हो वह...साधक की स्थिति जानता है। जो साधक नहीं है वह... कुछ नहीं जानता। वह ध्येय को नहीं जानता, साध्य को नहीं जानता, साधक को भी नहीं जानता।

९२३

"जाननहार जानने में आता है" ---> राग।

पर को नहीं जानता --->द्वेष।

अस्ति के जोर से विधि-निषेध का विकल्प गलता है और अनुभव होता है।

९२४

"जाननहार जानने में आ रहा है" यह मुक्ति की विधि है।

९२५

पर जानने में नहीं आता ऐसा जब तक नहीं आयेगा; तब तक "जाननहार जानने में आता है" ऐसा व्यवहार से विश्वास भी नहीं आयेगा।

९२६

"जाननहार जानने में आ रहा है" इसीलिए तो "जाननहार जनाता है"।

९२७

ज्ञेय से तो ज्ञान नहीं होता। परंतु आत्मा का ज्ञान जगत के किसी पदार्थ को ज्ञेय नहीं बना सकता क्योंकि परपदार्थ कोई ज्ञेय है नहीं। ज्ञान का ज्ञेय तो अकेला अपना आत्मा है। जब मात्र ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता" तब उसे आत्मदर्शन हो जाते हैं।

९२८

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञान की अवस्था हुई उसमें स्वपर का प्रतिभास होता है, इसलिए ज्ञेयाकार ज्ञान है, उसमें ज्ञेय प्रतिभासते हैं? या वह ज्ञेयों को जानता है? ज्ञेयों का प्रतिभास होता है ऐसे प्रतिभास को जानता है? या ज्ञान की पर्याय होती है वह जानने में आती है? तीनों में से कुछ जानने में नहीं आता। ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायक जनाया; "जाननहार जनाया"।

९२९

पर के प्रतिभास के काल में ज्ञान पर को जानता है? या जिसका प्रतिभास होता है उसे जानता है? या जिसका प्रतिभास होता है वह जानने में आता है? प्रतिभास तो

समझ में आता है ना? पीतल के स्पेयर पार्ट्स ज्ञान में ज्ञेय तो होते ही नहीं। प्रतिभासते हैं उस समय प्रयोग करना चाहिए; सामने पदार्थ रखकर।

इस पदार्थ को जानता है ऐसा नहीं लेना हों! ऐसा प्रतिभास जब होता है ज्ञान में तब ज्ञान उस पदार्थ को जानता है या ज्ञान "जाननहार को जानता है"? "पर से खस और स्व में बस" इतना कर तो बस।

९३०

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ! ज्ञेयाकार अवस्था हुई परंतु उस समय उसे ज्ञेय ज्ञात नहीं होते, "जाननहार ज्ञात होता है"। इसमें लिखा है, कल पढ़ा था। "ज्ञानकला में अखंड का प्रतिभास" यह पदार्थ सामने रखो, और पदार्थ को मैं जानता हूँ भूल जा! उस पदार्थ का प्रतिभास होता है वह रख! परंतु प्रतिभास के काल में ज्ञान जिसका है उसे जानता है। जिसका प्रतिभास होता है उसका ज्ञान नहीं है। इसीलिए ज्ञान उसे नहीं जानता। इस ज्ञेय पदार्थ को सामने रखना और फिर प्रयोग करना। इसे रखना!

उसमें वह रह जाए तो वह भले ही रह जाए, लेकिन लक्ष छूट जाता है। लक्ष के फेर से फेर है। प्रतिभास दो का और लक्ष एक का; दो का लक्ष नहीं होता।

९३१

इस गाथा में क्या कहा? समयसार ३७३ से ३८२ अपूर्व गाथा हैं। जिसको इस गाथा के भाव का अपूर्व भाव आएगा उसे अल्पकाल में सम्यग्दर्शन जरूर होगा। कि : मुझे "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता" ऐसी यह गाथा है। ये कुंदकुंदाचार्य के शब्द हैं।

९३२

"मैं जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं", "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता।" इस सूत्र में १२ अंग का सार है। उसमें अपरिणामी, परिणामी दोनों आए हैं। इस स्टीकर के लिए किसी ने जामनगर में पूछा! कि: यह किसका है? यह तो अनादि का है। किसी तीर्थंकर भगवान का नहीं है। महावीर भगवान का भी नहीं है। यह तो शाश्वत जिनवाणी है। जैसे णमोकार मंत्र शाश्वत अनादि का है वैसे ही णमोकार मंत्र में आ जाये समा जाये ऐसा मंत्र है।

९३३

"जाननहार है और करनेवाला नहीं है, जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" इन दोनों में 'जाननहार' आया है ना? इसलिए प्रश्न हुआ। **अपरिणामी में गुणभेद नहीं दिखते, और परिणामी में पर्यायभेद नहीं दिखता, आज की चर्चा बहुत अच्छी है।**

९३४

स्व-पर का प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता ही है। और उष्णता है वह अग्नि की है। राग का प्रतिभास होता है तो वह ज्ञान की स्वच्छता तो आत्मा की है। और रागादि तो द्रव्यकर्म के परिणाम हैं। दृष्टांत में तो 'हाँ' आएगी। परंतु...सिद्धांत में; राग मेरे में नहीं होता.. मात्र प्रतिभास होता है, उस समय "जाननहार जानने में आता है"। समाप्त। बेड़ा पार। एक समय का काम है।

९३५

प्रतिभास होता है राग का परंतु ज्ञान उसे नहीं जानता। वह तो गुणरूप है, तो तुम्हें "जाननहार जानने में आ जाएगा"। और राग के प्रतिभास के समय राग जानने में आये तो वह दोषरूप है।

९३६

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है" ऐसा लेने पर; उसमें भेद पड़ने से विकल्प उत्पन्न होता है। तो विकल्प किस प्रकार छूटे?

समाधान : "जाननहार जानने में आ रहा है"; "जाननहार जानने में आ रहा है"; ऐसा लिखा है। जानने में आएगा ऐसा लिखा है? किसको? सभी को हों!! प्रत्येक समय। **"जाननहार जानने में आता है" वहाँ विकल्प नहीं लेना। भले ही विकल्प हो लेकिन विकल्प को बीच में खड़ा मत करो। "जाननहार जानने में आता है" बस इतना लेना। "जाननहार जानने में आता है" फिर यह... विकल्प टूट जाएगा। "जाननहार जानने में आता है" इतना भेद पड़ा ऐसा भी नहीं लेना।**

है तो भेद! भले विकल्प उत्पन्न होवे, लेकिन यह... विकल्प उसे जानने में नहीं आता, "जाननहार जानने में आता है"। विकल्प उठता है उसे ज्ञान नहीं जानता। "जाननहार जानने में आता है" इतना लिया है; फिर "जाननहार भी जानने में आता है" और विकल्प भी जानने में आता है? विकल्प ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। **विकल्प आत्मा के ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। फिर जानने में कहाँ से आए?** ज्ञेय हो तो जानने में आए ना? छठवीं गाथा बहुत अपूर्व है।

९३७

जिज्ञासा : "जाननहार जानने में आता है" वह भी विकल्प है ना?? वह विकल्प किस प्रकार से छूटे?

समाधान : विकल्प जानने में ही नहीं आते, तो फिर विकल्प उत्पन्न ही नहीं होंगे। "जाननहार जानने में आता है" फिर विकल्प उत्पन्न हो या ना हो वह हम नहीं जानते। हमें तो "जाननहार जानने में आता है"। **विकल्प के काल में विकल्प जानने में**

नहीं आता; क्योंकि विकल्प को जानने का ज्ञान का स्वभाव ही नहीं है, वह तो इन्द्रियज्ञान का स्वभाव है।

विकल्प मन का विषय है, परंतु मेरे ज्ञान का विषय कहाँ रहा! हें! "जाननहार जानने में आता है" उसमें विकल्प उठता है! अरे! विकल्प उठता है उसका ज्ञान नहीं है तो फिर विकल्प की बात कहाँ से लाया?

"जाननहार ही जानने में आता है" तो उसमें जाननेवाला भी जानने में आता है और विकल्प उठते हैं वे भी जानने में आते हैं!! परंतु....विकल्प को जानने का तेरा स्वभाव ही नहीं है। विकल्प बुद्धि का-मन का विषय है, वह ज्ञान का विषय है ही नहीं। ज्ञान का स्वभाव विकल्प को जानने का नहीं है और इन्द्रियज्ञान के विषयों को नहीं जानता। ज्ञान तो समय-समय अकेले शुद्धात्मा को जानता है।

९३८

जिज्ञासा : विकल्प किस प्रकार छूटे? वह कृपा करके समझाओ।

समाधान : भले ही विकल्प उत्पन्न होते हों! लेकिन विकल्प ज्ञात नहीं होते, मुझे तो "जाननहार जानने में आता है"। जिसे "जाननहार जानने में आता है" उसे विकल्प की उत्पत्ति ही नहीं होती। उसे निर्विकल्पध्यान आ जाता है यदि जाननहार जानने में आये तो!!

९३९

जिज्ञासा : कोई भी घोलन विकल्प है ना?

समाधान : यह विकल्प ही उत्पन्न नहीं होता; जाननहार जानने में आता है ना!! विकल्प मेरे ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं है। विकल्प कर्ता का कर्म तो नहीं है, क्योंकि आत्मा अकर्ता है। विकल्प को करता (तो) नहीं लेकिन विकल्प को जाने ऐसा ज्ञान ही नहीं होता। आत्मा के भेद को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान है; मन है; (परंतु) वह ज्ञान का ज्ञेय ही नहीं है। भेद तो परद्रव्य है भाई! परद्रव्य को तो ज्ञान जानता नहीं है, और स्वद्रव्य को जानना छोड़ता नहीं है। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले ना! तेरे साध्य की सिद्धि उसमें हो जाएगी।

९४०

जिज्ञासा : जिसको स्व-पर के प्रतिभास का स्वीकार है वह ५०% निश्चय में आ गया। दूसरे ५०% किस प्रकार से आए?

समाधान : जो स्वपर के प्रतिभास का स्वीकार करता है अर्थात् कि मैं पर को नहीं जानता, तो 'मैं पर को जानता हूँ'-यह शल्य निकल गया। अब जो उपयोग प्रगट होता है उसमें प्रतिभास दो का है। तो वह दोनों को जानता है या एक को जानता है?

एक को जानता है। तो जैसे ही स्वप्रकाशक में आता है ना कि "स्वप्रकाशक ही हूँ" और "जाननहार ही जानने में आता है", तो वह... ऐसे पक्ष में आ गया कि विकल्प छूटकर अनुभव हो जाएगा। अब जब अनुभव होता है तब ५०% आता है। पक्ष में आने के पश्चात फिर पक्ष में रुकता नहीं।

"जाननहार जानने में आता है; जाननहार जानने में आता है; जाननहार जानने में आता है" लेकिन "जाननहार जानने में आता है" ऐसा कब आता है? जब अभेद होकर अनुभव होता है, आनंद आता है, तब "जाननहार जानने में आता है"। तब तक पक्ष कहलाता है। अभी निश्चय के पक्ष में आए तो पक्षातिक्रांत हो जाए। **पर को करता हूँ और पर को जानता हूँ ऐसे व्यवहार के पक्षवाले की भेदज्ञान की शक्ति संकुचित हो गई है।**

९४१

"जाननहार जानने में आता है" ---> इस सूत्र में द्रव्य का निश्चय और पर्याय का निश्चय दोनों आ गए।

जाननहार ---> द्रव्य का निश्चय।
जनाता है ---> पर्याय का निश्चय।

इस प्रकार ध्येय पूर्वक ज्ञेय हुआ।

९४२

जानने में आता है जाननहार और लगता है पर जानने में आता है, वह ही अध्यवसान-विपरीत मान्यता-भ्रान्ति है। ज्ञान में वचन जानने में नहीं आता वाच्य जानने में आता है।

९४३

अपनेआप ही अनुभव में आता है; आहाहा! ज्ञान में ज्ञायक ही प्रतीत होता है। ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही जना रहा है। उर्ध्वरूप से आत्मा ही जना रहा है। "समता, रमता, उर्ध्वता" श्रीमद्जी में आता है ना ?! उर्ध्वपने आत्मा ही जना रहा है। ऊर्ध्वपने मैं ही जना रहा हूँ। उर्ध्वपने ज्ञायक ही जानने में आ रहा है।

भगवान आत्मा ही जानने में आ रहा है। जना ही रहा है। जना ही रहा है। उसका मात्र स्वीकार कर बस। इतनी ही देर है। तेरी देर से देर है। तेरी देर से देर है।

भगवान आत्मा तो दर्शन दे रहा है, बड़ा मनवाला होकर; परंतु समय-समय उसकी ज्ञान की पर्याय में वह *अवलचंडाई* (तिरछाई) करता है। फिर भी वह ऐसे बड़े मन का है कि उसकी ज्ञान की पर्याय में समय-समय प्रतिभास हो रहा है। उस प्रतिभास को तू उपयोगात्मक कर ले! आहाहा! "जाननहार जानने में आ रहा है"।

प्रतिमा के सामने खड़े रहकर विचार करना कि यह प्रतिमा ज्ञात हो रही है या

"जाननहार जानने में आ रहा है"! प्रतिमा जानने में आती है या प्रतिमा से संबंधित ज्ञान जानने में आता है! या "ज्ञायक जानने में आता है"!!

सभी को ऐसे ज्ञान का अंश जानने में आता है कि (जिसमें) ज्ञायक ज्ञात होता है। आहाहा! समाप्त..! तो क्या प्रतिमा ज्ञात नहीं होती? तुझे जानने के बहाने भी व्यवहार का पक्ष अर्थात् पर को जानने का पक्ष है। वह व्यवहार का पक्ष है। व्यवहार नहीं है। निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता।

९४४

कहते हैं स्वयं ही अनुभव में आता है। आहाहा! वर्तमान तुझे तो "जाननहार ही जानने में आता है ना"? भगवान जानने में आ रहा है। परज्ञेय जानने में आता है ऐसा नहीं, राग जानने में आता है ऐसा नहीं, एक समय की पर्याय जानने में आती है ऐसा भी नहीं, परंतु "जाननहार जना रहा है"। त्रिकाली सामान्य जना रहा है। सामान्य जिसकी सत्ता में ज्ञात होता है, वह (ज्ञान) ज्ञात नहीं होता; आहाहा! यह तो भागवती- भगवान होने की कथा है।

९४५

ऐसा सामान्य आत्मा जब दृष्टि में आता है तब उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होता है। स्वयं ही अनुभव में आते हुए भी वह ज्ञायक ज्ञायक को ही जानता है, ज्ञायक ही ज्ञात हो रहा है। "जाननहार वह ही आत्मा ज्ञात हो रहा है"। वर्तमान मुझे ज्ञात हो रहा है।

"ज्ञात हो रहा है" ऐसा कहा वह क्या? जना रहा है भाई! सर्वज्ञ परमात्मा की कही हुई यह बात है। एक समय में तीन काल तीन लोक का प्रत्यक्ष ज्ञान वर्तता है।

९४६

पर के साथ एक होने का निश्चय हो गया है; एक होने की भ्रान्ति हो गई है। हैं दोनों तत्त्व अलग-अलग; चैतन्य स्वरूपी, उपयोग स्वरूपी भगवान आत्मा से अनुपयोग ऐसा जो राग वह जड़ है और भिन्न है उसे एक मान बैठा है। निश्चय से मूढ़ अज्ञानी जीव एक मान बैठा है। अब ऐसे जीव को "यह अनुभूति है सो ही मैं हूँ" ऐसे पिछले पैराग्राफ में शब्द थे। 'यह अनुभूति है सो ही मैं हूँ' ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त...' वही शब्द यहाँ है। उसने उस अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा का स्वीकार किया, तो आत्मज्ञान हुआ।

और अज्ञानी को "अनुभूतिस्वरूप आत्मा है वह मैं हूँ" ऐसा ज्ञान उदय नहीं होता। क्योंकि राग वह मैं हूँ। अब राग वह मैं हूँ ऐसा आया तो ज्ञायक वह मैं हूँ ऐसा नहीं आया। इसीलिए यह अनुभूति है वही मैं हूँ ऐसा आत्मज्ञान उदय को प्राप्त नहीं होता।

वहाँ ऐसा कहा कि ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ, वहाँ आत्मज्ञान लिया, "ज्ञायक वह मैं हूँ"। और यह (अज्ञानी) ज्ञायक को चूक गया। देह मेरी, पैसा मेरा, कुटुंब

मेरा, आबरू मेरी, आहाहा! इसप्रकार पर में मेरेपने की बुद्धि करता हुआ, पर के वश होता हुआ, पर के साथ एकत्वबुद्धि करता हुआ, हे! मूढ़ अज्ञानी! कि : "यह " जाननहार जानने में आ रहा है" "जाननहार वह मैं ही हूँ" जाननहार वह मैं ही हूँ उसे चूक जाता है और जो जानने में आता है वह मेरा है; जो (पर) ज्ञात हो रहा है वह मेरा है, समय-समय नया-नया जानने में आता है, तब प्रत्येक ज्ञेय में आत्मबुद्धि करता हुआ भिन्न-भिन्न ज्ञेय जानने में आते हैं; भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न ज्ञेयों में आत्मबुद्धि करते हुए वह धाराप्रवाहरूप से जानने में आता हुआ ज्ञायकभाव सो "मैं हूँ" इसे चूक जाता है। धाराप्रवाहरूप से ज्ञेय बदलता ही रहता है।

९४७

पहले आत्मा को जान कि यह जाननहार अनुभव में आता है वह मैं हूँ। आहाहा! और जाननहार वर्तमान में अनुभव में आता है कि जाननहार वह मैं हूँ। जाननहार अनुभव में आता है। जाननहार जानने में आ रहा है। जाननहार ज्ञायकभाव ज्ञात हो रहा है। आहाहा! बगैर पुरुषार्थ के जना रहा है। गजब की बात है। जो जना रहा है वह तो उसका स्वभाव है। उसमें पुरुषार्थ की जरूरत नहीं है। बगैर पुरुषार्थ के ज्ञात हो रहा है। जाननहार प्रतिसमय ज्ञात हो रहा है।

९४८

भगवान की प्रतिमा के सामने खड़ा है, मेरे चर्म चक्षु भले ही प्रतिमा के सामने हैं, परंतु मुझे प्रतिमा ज्ञात नहीं होती, हों!! मुझे तो चैतन्य प्रतिमा ज्ञात होती है, तो इन्द्रियज्ञान अटककर आत्मा में जाता है। दूसरे को ऐसा लगता है कि यह प्रतिमा को जानता है, परंतु वह अंदर डुबकी मारकर चैतन्य प्रतिमा को जान लेता है, तब वह (प्रतिमा) निमित्त कहलाती है। उपादान जागता है तब उसे निमित्त कहते हैं।

यह जाननहार अनुभव में आता है हों!? "जाननहार जानने में आ रहा है", "जाननहार जानने में आ रहा है"। नकार मत कर! नकार मत कर! स्वभाव का नकार मत कर। स्वभाव का निषेध मत कर।

९४९

जाननहार तुझे जानने में आ रहा है। इसे....जानूँ! यह मुझे जानने में आता है....! यह जानने में आता है...! अभी थोड़े टाइम रहने दे! ऐसा करूँ...ऐसा करूँ.... यह जानने में आता है, यह जानने में आता है...! क्या यह नहीं जानने में आता? अभी थोड़े टाइम रहने दे!!

आहाहा! एक दो घड़ी प्रयत्न तो कर: सारा कोलाहल छोड़ दे! ऐसे करूँ, ऐसे करूँ; यह जानने में आता है, यह जानने में आता है; क्या यह जानने में नहीं आता? रहने

दे! कोलाहल बंद कर दे। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले! "जाननहार जानने में आता है" इसमें आजा थोड़े समय! क्या यह नहीं जानने में आता? भाई! कोलाहल रहने दे! वह तो व्यर्थ कोलाहल है।

यह जानने में आता है वह क्या झूठ है? भाई! बापू! कोलाहल रहने दे! "जाननहारा जानने में आ रहा है"; जाननहारा जानने में आ रहा है; आहाहा! एक बार तो अंदर देख तू! तुझे कुछ फायदा होता है या नहीं होता देख तो जरा!! सम्यग्दर्शन होता है या नहीं होता!!

तुझे सम्यग्दर्शन ना होवे तो मेरे पास से ले जाना! ऐसा ज्ञानी कहते हैं। "जाननहार जानने में आता है" एक बार तू अंदर आ जा। आहाहा! जाननहार जानने में आ रहा है, यह जाननहार अनुभव में आ रहा है। यह उसकी बात चलती है हों! हाँ, चलती है शास्त्र के आधार से, घर की बात नहीं है। शास्त्र का आधार है। है तो आत्मा के घर की बात यह।

९५०

जाननहार अनुभव में आता है वह मैं....हूँ। "यह जाननहार जानने में आता है", जाननहार अर्थात् ज्ञायकभाव ज्ञात हो रहा है वह मैं हूँ। आहाहा! मुझे ज्ञेय ज्ञात नहीं होते। मुझे "जाननहार जना रहा है"। ये ज्ञेय मेरे ऐसा मैं कैसे कहूँ? कौनसी जीभ से कहूँ? मुझे ज्ञात ही नहीं होते ना? ज्ञात हों तो वे मेरे, ऐसा कहूँ ना? यह अंतिम सुप्रीम कोर्ट की बात है। यह अनुभव की कला की बात है। जरा लक्ष में लेने जैसी है। इन्दुभाई! मोरबी के महाभाग्य की बात है। ऐसी बात यहाँ निकल रही है।

अब एक बार तू अपने भ्रमते हुए उपयोग को समेटकर! उस उपयोग में ज्ञायक जानने में आता है उसमें आजा! तेरे भ्रमते फिरते उपयोग को आत्मसन्मुख कर। पर में प्रतीति करनेवाला जो उपयोग उसे बंद कर दे! और जो उपयोग जिसका है उसे उसमें मोड़कर देख तो "जाननहार जानने में आता है" ऐसे दर्शन तुझे प्रत्यक्ष होंगे। कोलकरार; अनुभव हो जाए ऐसी बात है। "यह जाननहार अनुभव में आता है वह मैं हूँ"।

गुरुदेव मेरे हैं उसमें मेरापना कब होगा? वे जानने में आयें मेरे ज्ञान में तो ना? आहाहा! मुझे तो "जाननहार जानने में आता है" तो परपदार्थ मुझे ज्ञात नहीं होते तो वह मोह टल जाता है और निर्मोह दशा प्रगट होती है।

९५१

ज्ञेयाकार अवस्था में अर्थात् ज्ञेय ज्ञान में जानने में आते हैं ऐसी ज्ञान की अवस्था में भी ज्ञायकपने ज्ञात हुआ; जाननहारपने जानने में आया; क्या कहा? यह ज्ञेयपने ज्ञात हुआ ऐसा नहीं, ज्ञेय के जाननहारपने जनाया ऐसा भी नहीं। सूक्ष्म बात है। भगवान की

प्रतिमा ज्ञात होती है जिस समय ज्ञान में; ज्ञेयाकार अवस्था में; ज्ञेयों को जानने की अवस्था का काल है उस समय, उन ज्ञेयों को ज्ञान जानता है? जिसमें ज्ञेय जानने में आते हैं ऐसा आत्मा जानने में आता है? या जाननहारपने जानने में आता है? देखो प्रतिमाजी के ऊपर से लक्ष छूटता है। प्रतिमा को प्रसिद्ध करनेवाला इन्द्रियज्ञान वह अब लुप्त होता है। वाह! इन्द्रियज्ञान रुक जाता है। मुझे "जाननहार जानने में आता है" उसमें जैसे ही आया! जाननहार जानने में आता है कब? जब ज्ञेय जनाते हैं (प्रतिभासते) हैं, तब "जाननहार जानने में आता है"। यह (पर) जानने में आता है ऐसा नहीं। यह जानने में आता है ऐसा नहीं। परंतु जाननहार जानने में आता है।

जब प्रतिमा ज्ञात होती है तब उसमें स्वप्रकाशकपना होने के कारण "जाननहार जना रहा है।" अकेला परप्रकाशक नहीं है। तो तो परप्रकाशक के समय जाननहार स्वयं ज्ञात ही ना होवे। परंतु जब परप्रकाशक है तब भी "जाननहार जानने में आता है।" इसलिए वह परप्रकाशक जो ज्ञान है; ज्ञेय को जाननेवाला जो ज्ञान है; अकेला परज्ञेय को प्रसिद्ध करनेवाला जो ज्ञान है वह अज्ञान था। इसलिए ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव होता था। अब जब ज्ञेय जानने में आता है तब जाननहार भी जानने में आता है। इसप्रकार "जाननहार जानने में आता है" उस तरफ उपयोग जाता है, तब उसे विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव होकर सामान्य का आविर्भाव होता है।

९५२

जाननहार ऐसा है ना? अशुद्धता क्यों नहीं है? क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में, ज्ञेय को जानने की अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ। ज्ञायकपने जो ज्ञात हुआ वह ही ज्ञायकपने ज्ञान में ज्ञात हुआ। जो श्रद्धा का विषय है वह ज्ञान का विषय हो गया। एक गाथा में दोनों बातें ली हैं। बहुत गंभीर है यह बात, बहुत गंभीर है।

भगवान वह ज्ञायक आत्मा है। वह जाननहार है, देखनेवाला है, ज्ञान से भरा हुआ आत्मा है। जब प्रतिमा ज्ञात होती है, तब प्रतिमा का जाननेवाला है या जाननहार का जाननेवाला है। वह ज्ञान प्रतिमा का है या वह ज्ञान आत्मा का है? रतिभाई कहते हैं कि वह ज्ञान आत्मा का है।

९५३

आहाहा! प्रतिमा को जब ज्ञान जानता है; तब भगवान तू एक बार विचार कर कि मुझे यह प्रतिमा ज्ञात होती है? या "जाननहार जानने में आता है"? ज्ञायक जानने में आता है। आहा! क्योंकि वह ज्ञान प्रतिमा का नहीं है वह ज्ञान आत्मा का है। इसलिए उस समय "जाननहार जानने में आता है", ऐसा नक्की करने जाता है तो उपयोग वहाँ से खिसककर अंदर में झुक जाता है। शुरुआत वहाँ से हुई; लेकिन गया अंदर में। पर को जानने रुकता

था तब तक आत्मदर्शन नहीं होते थे।

अब उसे श्रीगुरु मिले, कि: तुझे प्रतिमा जानने में आती है, तब ज्ञान प्रतिमा का नहीं है। ज्ञान प्रतिमा का नहीं होता। ज्ञान ज्ञेय का नहीं होता। ज्ञान तो ज्ञायक का ही है। हें! यदि प्रतिमा का ज्ञान हो तो प्रतिमा ज्ञात होवे। परंतु ज्ञान तो प्रतिमा का नहीं है। यह... तो प्रतिमा तो ज्ञान में निमित्तमात्र है। ज्ञान में निमित्तमात्र है। कहते हैं कि...वह ज्ञान प्रतिमा का नहीं है। वह ज्ञान तो ज्ञायक का है। चैतन्य अनुविधाई परिणाम उसे उपयोग कहने में आता है। उपयोग वह तो शक्ति की व्यक्ति है। उस शक्ति में से, प्रवाह में से ज्ञान बाहर आता है। ज्ञेय में से ज्ञान नहीं आता। ज्ञेय में से ज्ञान आता है? इस शास्त्र में से ज्ञान आता होगा? नहीं आता। ज्ञान तो ज्ञान में से आ रहा है।

९५४

जब प्रतिमा ज्ञात होती है तब आचार्य भगवान फरमाते हैं: तेरी अवस्था के पलटने का जब काल आये तब तू ऐसा ले कि "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा ले ले ना! यह (पर) जानने में आता है ऐसा किसलिए लेता है! बापू अब तो रहने दे! पर ज्ञात होता है, तब उसे "जाननहार जानने में आता है" तो पर के ऊपर से उपयोग खिसककर अंदर में आएगा और अनुभव होगा। तब "ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ" ऐसा लिखते हैं। इसमें सब कुछ है।

९५५

ज्ञेयाकार अवस्था में; ज्ञेयों को जानने का पर्याय का काल है तब उस पर्याय में पर्याय ज्ञायकपने ज्ञात होती है उसे आहाहा! ज्ञायकपने ज्ञात हुआ! ज्ञायकपने ज्ञात हुआ वह स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी आहाहा! ज्ञायक ही है। पर जानने में आता है तब जाननहार जानने में आता है। और स्व जानने में आता है तब भी जाननहार जानने में आता है। चौबीसों घंटे जाननहार जानने में आता है। आहाहा! अद्‌भुत से अद्‌भुत चमत्कारिक बात है। बेड़ा पार हो जाए ऐसी बात है।

९५६

आचार्य भगवान कहते हैं तुझे जब पर जानने में आता है ऐसी अवस्था भले हो! तब भी "जाननहार जानने में आता है"। तुझे यदि यह पर जानने में आता है और जाननहार नहीं जानने में आता तो ज्ञेयकृत अशुद्धता- अज्ञान हो गया। यह जानने में आता है....यह जानने में आता है... यह जानने में आता है...., तब "जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले ना! निर्विकल्पध्यान में तो "जाननहार ही जानने में आता है" परंतु जब यह (नेपकिन) जानने में आ रहा है तब "जाननहार जानने में आ रहा है" ऐसा ले ना! अब यह परज्ञेय जानने में आता है, यदि उस समय तुझे जाननहार जानने में नहीं आता तो

अज्ञान हो गया।

९५७

अब जो अनादिकाल का अज्ञान है वह रखना है या अज्ञान का नाश करना है? कि अज्ञान का नाश करना है। यदि तुझे अज्ञान का नाश करना हो तो हम जैसा कहते हैं ऐसा कर! जैसा हम कहते हैं, उसके पीछे-पीछे तू चला आ। आहाहा! हमारे ज्ञान के पीछे-पीछे तू आ। हम कहते हैं वह तू जरा लक्ष में तो ले!

कि : ज्ञेयाकार अवस्था में जब प्रतिमाजी ज्ञात होती है भगवान की, गुरुदेव जब ज्ञान में जनाते हैं, तब "जाननहार जानने में आता है" ऐसा ले ना! गुरुदेव जानने में आते हैं मुझे और जाननहार नहीं जानने में आता वह तो अज्ञान। एकांत परप्रकाशक हो गया।

९५८

ज्ञायकपने ज्ञात हुआ! जाननहारपने जनाया!! "जाननहारपने जनाया", करनेवाले के रूप में तो जानने में आता ही नहीं। मैं करनेवाला हूँ ऐसा तो जानने में आता ही नहीं। क्योंकि आत्मा करनेवाला नहीं है। आत्मा जाननेवाला है तो जाननहाररूप से जानने में आता है। जैसा उसका स्वभाव हो ऐसा ही जानने में आये ना?! स्वभाव से विपरीत नहीं ज्ञात होता।

आठ कर्म के बंधवाला जानने में आता है ना? कि: 'ना'। क्योंकि वह आत्मा है नहीं। मैं क्या करूँ? आठ कर्म का सद्भाव हो तो तो वह मुझे जानने में आए परंतु आठ कर्म के बंधवाला तो आत्मा है नहीं। क्योंकि वह तो अबंध है। इसलिए जैसा उसका स्वरूप है ऐसा मुझे जानने में आता है। आहाहा! यह राग-द्वेष, मोहवाला जानने में आता है? कि: 'ना'। क्योंकि वह जीव वस्तु का स्वरूप नहीं है। वह दूसरा तत्त्व है। दूसरे तत्त्व का मेरे में अभाव है। आत्मा और आस्रव दोनों भिन्न हैं। अरे! निश्चयनय से एक बार भेदज्ञान का विचार तो कर। आत्मा और राग दोनों एक नहीं हैं। दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं।

९५९

"ज्ञायकपने ज्ञात हुआ"! आहाहा! "ज्ञायकपने ज्ञात हुआ" वह स्वरूप प्रकाशन की, स्वरूप को जानने की अवस्था में भी; "भी" कहा! भी... प्रतिमा ज्ञात होती है तब "जाननहार जानने में आता है"। ऐसे जब उपयोग निर्विकल्पध्यान में जाता है तब भी "जाननहार जानने में आता है"। तब दूसरा कुछ जानने में नहीं आता। वह तो निर्विकल्पध्यान में जाये तब "जाननहार जानने में आता है" और निर्विकल्पध्यान में से बाहर आये तब पर जानने में आता है? पर जानने में आता है तब "जाननहार जानने में आता है"? (श्रोता कहता है-) "कि: 'ना'। उस वक्त जाननहार जानने में नहीं आता।" जाननहार जानने में आता नहीं न और पर की प्रतीति करता है तो अज्ञान हो गया !! यहाँ

तो अज्ञान कैसे टले उसकी बात चलती है। अज्ञान सिद्ध नहीं करना, ज्ञान सिद्ध करना है।

९६०

दीपक घट-पट को प्रसिद्ध करे तब भी दीपक है। और घट-पट को प्रसिद्ध ना करे, तब भी दीपक है। घट-पट को प्रसिद्ध करे तो दीपक, ऐसी पराधीनता दीपक को है नहीं। पर को जानता है इसलिए जाननहार है ऐसा है नहीं। जाननहार तो अपने से है। ज्ञेय से निरपेक्ष है। जीव तत्त्व, वह सापेक्ष पर्याय से भी निरपेक्ष है। आहाहा! यह तो अंदर-अंदर में "जाननहार जानने में आता है" "जाननहार जानने में आता है"।

"जाननहार जाननहाररूप से जानने में आता है" जाननहार शुभाशुभभाव का करनेवाला है ऐसा तो ज्ञात ही नहीं होता। वह तो "जाननहारपने जानने में आता है"। जैसे परज्ञेय जानने में आओ या नहीं आओ मैं तो मेरे से ज्ञायक हूँ। आहाहा! ज्ञेय से निरपेक्ष मेरा अस्तित्व ज्ञायकपने रहा हुआ है। अनादि-अनंत वह जाननहारपने ज्ञात हुआ। वह दीपक की भाँति, घट-पट आदि की अवस्था को प्रकाशित करने में भी दीपक ही है। आदि-मध्य-अंत में दीपक ही है।

९६१

यह मार्मिक बात है। ज्यादा पदार्थों को दीपक प्रकाशित करे तो दीपक का प्रकाश बढ़ जाये और सभी चले जाएँ तब लाइट (प्रकाश) घट जाये ऐसा नहीं है। यह मार्मिक बात है हों! अरे! ज्ञान तो ज्ञान से ही है। ज्ञान ज्ञेय से नहीं है। ज्ञायक जब ज्ञान में जानने में आता है **तब जाननहार स्वयं जानने में आया इसलिए स्वयं कर्ता बना। और स्वयं जनाया इसलिए स्वयं कर्म बना। स्वयं जाननहार इसलिए स्वयं कर्ता, अपने को जाना, परंतु प्रतिमा को नहीं जाना, अपने को जाना इसलिए स्वयं ही कर्म। आत्मा कर्ता और आत्मा को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय कर्म ऐसा नहीं। जाननहार हुआ इसलिए स्वयं ही कर्ता।**

९६२

अनादि से उपयोग प्रगट होता है। उसमें मैं रस को जानता हूँ तो अज्ञान हो गया। उस उपयोग में "जाननहार जानने में आता है" और "जाननहार हूँ" ऐसा अनुभव करता है तो अतीन्द्रियज्ञान हो गया। तेरे हाथ में है ज्ञान प्रगट करना या अज्ञान प्रगट करना।

९६३

"जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" उसमें सकल दोष का परिहार होकर अनुभव होता है।

९६४

"जाननहार जानने में आता है पर जानने में नहीं आता" यह ही अनुभव की कला है।

९६५

"जाननहार ही जानने में आता है, मैं जाननहार ही हूँ" यह ज्ञायक से तन्मय हुआ ज्ञान है। और जाननहार होकर जाननहार को जानता है।

९६६

"जाननहार जानने में आता है" यह ही बात पहले सच्ची नहीं लगती तो फिर जाननहार की श्रद्धा कहाँ से हो!?

९६७

"जाननहार जानने में आता है पर जानने में नहीं आता" इसमें ही भेदज्ञान होता है, इसमें भेदज्ञान की विधि है।

९६८

मैं जाननहार हूँ, मुझे जाननहार जानने में आता है, इतना ही मेरा कार्य है। जाननहार आत्मा को जाननहारपने जाने वह ही मेरा पुरुषार्थ है।

९६९

मुझे मेरा ज्ञेयस्वरूप "जाननहार ही जना रहा है" ऐसा श्रद्धान, ज्ञान वह ही आनंदमयी मुक्तिमार्ग है।

९७०

जाननहार जानने में आता है वह कर्ता, और जाननहार जानने में आता है वह ही कर्म है और क्रिया भी वह ही है, उसमें भेद नहीं है।

९७१

नय को जानकर उसका कर्तृत्व छोड़कर और उसका ज्ञान भी छोड़कर समकित होता है। उपादानरूप से तो नहीं किन्तु निमित्तरूप से भी पुण्य को नहीं करता। सूक्ष्म बात है।

"होने योग्य होता है", जाननहार को जाननहारपने जानता है। परंतु जाननहार को अब पुण्य के करनेवाले के रूप में नहीं जानता। जाननहार को जाननहारपने जानकर, जाननहाररूप से परिणमता है। पुण्य के जाननहारपने परिणमता है। जाननहार जाननहार को जानते हुए ऐसा जानता है कि "पुण्य होने योग्य होता है"। होने योग्य और करनेवाला उसमें माल भरा है। पुण्य नहीं होने योग्य है ऐसा नहीं है, और मैं कर्ता हूँ ऐसा भी नहीं है। पुरुषार्थ तो सम्यक् एकांत का है। कर्ताबुद्धि होती नहीं और जानने में आए बिना रहता नहीं। जिसने जाननहार को जाननहारपने जाना वह पुण्य का मैं करनेवाला

ऐसा नहीं जानता।

९७२

"जाननहार जानने में आता है" उसमें 'जानने में आता है' वह अपरिणामी। और 'जानता है' वह परिणामी आत्मा है।

९७३

जिस ज्ञान में अकेला परज्ञेय प्रतीत होता है वह ज्ञान नहीं है अपितु ज्ञेय है। जाननहार जानने में आता है उसमें आजा ना!! जाननहार वह भी आत्मा, जनाया वह भी आत्मा।

९७४

जाननहार इसलिए स्वयं ही कर्ता, ज्ञात हुआ इसलिए स्वयं ही कर्म। जो स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में ज्ञात हुआ वह तो वही है। ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञात हुआ ही करता है, इसलिए जाने हुए का श्रद्धान चालू ही रहा करता है। राग जानने में नहीं आता इसलिए राग कर्म भी नहीं बनता। यदि राग ज्ञात हो तो राग कर्म हो जाए तो अज्ञान हो जाए। इसलिए सविकल्पदशा में साधकों को संवर निर्जरा चालू ही रहती है।

९७५

"अनुभव के काल में जो जानने में आया वह तो वह ही है"। उसमें "वह" "वह" शब्द दो बार टीका में है।

अनुभव के काल में जो जाननहार जनाया, वह जाननहारपने ही जानने में आता है। दूसरेरूप, पररूप जानने में आता ही नहीं। सविकल्पदशा में अन्य जानने में आए तो आत्मा तब अन्य का जाननेवाला हो गया ऐसा नहीं है। (वह तो वह ही है।)

९७६

एक बार जाननहार जानने में आता है फिर उसकी स्वच्छता में फर्क नहीं दिखता। निमित्त के संयोग से उपादान में कुछ अंतर नहीं दिखता। वह का वही रहता है, इसलिए वह का वही जानने में आता है।

जो ज्ञान ज्ञायक को जानता है वह ज्ञान ज्ञायक को ही जानता है। ज्ञान पलटता नहीं, क्यों? क्योंकि ज्ञायक पलटता नहीं है। ज्ञान में उसका विषय पलटता नहीं है इसलिए ज्ञान पलटता नहीं है। ज्ञेय पलटते हैं, ज्ञेय भले ही पलटें तथापि ज्ञान पलटता नहीं है।

९७७

दूसरा जानने में आता है ऐसा ज्ञात हो तो लक्ष ज्ञायक पर नहीं रहा परंतु लक्ष पर्याय के ऊपर जाता है, तो ज्ञायक जानने में नहीं आता।

अब दूसरा ज्ञात ही नहीं होता। सीधा मना किया। जाननहार स्वयं ही जानने में आता है, उसमें दूसरा नहीं है इसलिए राग जानने में नहीं आता।

९७८

जना रहा है वह जाननहार ही है। "जाननहार जानने में आ रहा है"। जानने में आ रहा है इसलिए सहज ही जानने में आता है। "जो जिसका होता है वह वही होता है"।

९७९

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन में आया कि: "सभी को ज्ञान जानने में आता है"।

जिज्ञासा : तुम्हें तुम्हारे ज्ञान में ज्ञानस्वरूप भगवान जानने में आता है अर्थात् द्रव्य जानने में आता है; और तुम्हें पर्याय (भी) ज्ञात होती है?

समाधान : 'हाँ' क्योंकि; किस पर्याय में ज्ञानस्वभावी आत्मा जानने में आएगा? जो पर्याय बलवान हो, निरपेक्ष हो, वह पर्याय ऐसा जानती है कि "जाननहार जानने में आता है"। जो परिणाम आत्मा को जानता है, उस परिणाम में कितनी ताकत होगी। जो निरपेक्ष है, शक्तिशाली है, उसमें आत्मा जानने में आता है। उस पर्याय को आत्मा की अपेक्षा लागू पड़ती है।

जिस पर्याय में आत्मा करनेवाला लगता है, उस पर्याय में आत्मद्रव्य कहाँ से ज्ञात होगा!? तो पर्याय में करनेवाला दिखेगा, जाननेवाला कहाँ से ज्ञात होगा!

९८०

"जाननहार जानने में आता है" उसकी अनजाने में भी आराधना की तो उसके फल में अतीन्द्रिय सुख प्राप्त होनेवाला है।

९८१

"जाननहार मुझे जानने में आता है", ऐसा ज्ञान में जनाता है; यदि ऐसा ना जनाए तो अनुभव की सिद्धि ही नहीं होती।

९८२

ज्ञानी का जन्म भेदज्ञान का मंत्र देने के लिए होता है। भेदज्ञान का मंत्र "जाननहार जानने में आता है"।

९८३

अकर्ता है इसीलिए तो "जाननहार जानने में आता है", तीन लोक में इससे उत्तम कोई बात नहीं है।

९८४

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा करके बैठ गए तो तीनों मुनिराज को केवलज्ञान हो गया। और हम समवशरण में आए तो हमें इन्द्रियज्ञान उत्पन्न हुआ।

९८५

"होने योग्य होता है, मैं तो जाननहार हूँ", तो जाननहार जानने में आ गया।

९८६

जाननहार को जानता है इसलिए उसका नाम ज्ञान है। "जाननहार ही जानने में आता है" इसलिए ज्ञान है। यह फंक्शन अनादि से बिगड़ा नहीं है, चालू है।

९८७

"जाननहार जानने में आता है" उसमें इन्द्रियज्ञान शिथिल हो जाता है। पर जानने में आता है उसमें इन्द्रियज्ञान बलवान हो जाता है।

९८८

"मैं पर को जानता हूँ" ऐसे अभिप्राय में मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र होता है। और "मुझे जाननहार जानने में आता है" ऐसे श्रद्धा-ज्ञान में आने पर सम्यग्दर्शन होता है।

९८९

चेतना में चेतन जानने में आता है, इसलिए तो अनुमानज्ञान में आ रहा है। वास्तव में जाननहार, जाननहार ही है; जाननहार को ही जाना करता है, और जाननहार ही जानने में आया करता है।

९९०

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा समझाने के लिए कहना पड़ता है। वरना तो "मैं जाननहार हूँ"।

९९१

परप्रकाशकपना ना होता तो ज्ञेयों का प्रतिभास ना होता। और स्वप्रकाशकपना ना होता तो जाननहार जानने में ना आता। दोनों धर्म हैं, ऐसा एक "जाननहार जानने में आता है"।

९९२

"मैं जाननहार हूँ" ऐसा जानना वही ज्ञान का स्वभाव है। प्रयोग में तो "मैं जाननहार हूँ" वह ही प्रयोग है। "जाननहार जानने में आता है" वह प्रयोग नहीं है। स्वयं स्वयं को जानता है, और "मैं जाननहार हूँ" इसमें रहस्य है।

९९३

"जाननहार जानने में आता है" वह पर्याय से रहित भी है और "जाननहार जानने में आता है" वह पर्याय से सहित भी है।

९९४

"मात्र जाननहार को ही जानता हूँ; मात्र जाननहार ही जानने में आता है"। और जाननहार को जानने पर दूसरा जानने में भी नहीं आता।

९९५

मैं; "जाननहार जानने में आता है" उसे जाननेवाला नहीं हूँ। जाननहार को भी जाननेवाला नहीं हूँ। तो अभेद में बैठ जाता है, और साक्षात् अमृत का पान करता है।

९९६

निषेध के विकल्प के साथ-साथ विधि का उसको ख्याल है इसलिए निषेध के विकल्प में विधि का विकल्प बलवान होता जाता है। जब तक निषेध का जोर नहीं आएगा तब तक विधि का विकल्प बलवान नहीं होगा। "मैं अकारक अवेदक हूँ"; जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता। पर जानने में नहीं आता उसमें जाननहार जानने में आता है यह भाव बलवंत होता है। समयसार की छठवीं गाथा में आचार्य भगवान ने निषेध से ही बात की है। "नहीं अप्रमत्त प्रमत्त नहीं"। शुरुआत 'है' से की है या 'नहीं' से की है? 'नहीं' से की है। क्योंकि (अज्ञानी ने) जो आत्मा में नहीं है उसकी आत्मा में स्थापना की है ना??

९९७

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा सूक्ष्म विकल्प स्वभाव के बल से नाश हो जाएगा।

९९८

"जाननहार जानने में आता है" इस वचन के ऊपर नहीं जाना। नहीं तो भेद दिखेगा। उसके वाच्य के ऊपर जा तो अभेद दिखेगा।

९९९

"जाननहार जानने में आता है, और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" इसका अर्थ स्वप्रकाशक हुआ। 'वास्तव में' क्यों कहा? प्रतिभास तो होता है। आत्मा का ज्ञान आज तक पर को जानने गया ही नहीं और जानेवाला भी नहीं है। राह मत देखना। आत्मा का ज्ञान आत्मा को जानता है, उसका स्वीकार करे तो अनुभव हो। "अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा तो जानने में आ रहा है सबको"।

१०००

अमृत बाहर आया है। अपूर्व चीज है। रुचि का मुख खुला रखना है। बस दूसरा कुछ नहीं है। ऐसी मछली होती है, उसमें स्वाति नक्षत्र का पानी पड़े, तो पेट में मोती बन जाता है। इसमें सम्यग्दर्शनरूपी रत्न पके ऐसा है। "जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता"।

१००१

प्रथम से ही "जाननहार जानने में आता है"। प्रथम से ही "पर नहीं जानने में आता"। भूतकाल में पर नहीं जानने में आता था वह प्रतिक्रमण। वर्तमान में ज्ञान जानने में आता है, ज्ञेय जानने में नहीं आया। वर्तमान में "जाननहार ही जानने में आता है" ज्ञेय ज्ञात नहीं हुआ वह आलोचना। और भविष्य में ज्ञान ही ज्ञात होगा ज्ञेय ज्ञात नहीं होंगे, वह प्रत्याख्यान।

१००२

आदि, मध्य, अंत में जाननहार जानने में आता है।

१००३

उत्तमक्षमा में ना रहे तो क्रोध आता है। क्षमाभाव छूटे तो क्रोध आता है। शुभभावरूप क्षमा में राग नहीं है। शुभभावरूप क्षमा के दो प्रकार। क्षमा के प्रति राग नहीं है, उसी प्रकार क्रोध के प्रति द्वेष नहीं है। अटपटी बात है। पसीना आ जाए! साधक को समझ में आता है और साधक होनेवाला है उसे भी ख्याल आ जाता है। साधक होने के सन्मुख है उसे अंदर ऐसा स्वरूप मेरा है ऐसा बैठता है, 'हाँ' आती है। क्योंकि वह ज्ञाता के पक्ष में आ गया है। इसलिए सम्यक्त्व के सन्मुख हो गया। ज्ञाता के पक्षवाले को और साक्षात् ज्ञाता हो उसे समझ में आता है। वरना समझ में नहीं आता। "जाननहार जानने में आता है" फिर क्रोध के प्रति द्वेष कहाँ से आए? जाननहारपने जाननहार को जानता है उसे क्रोध को जानने पर द्वेष आए तो उसने जाननहार को जाना नहीं। स्वपरप्रकाशक है। इसलिए क्रोध के प्रति द्वेष नहीं आता। परप्रकाशक में द्वेष आ जाता है। साधक के सविकल्पदशा के स्वपरप्रकाशक में राग-द्वेष होता है परंतु राग के प्रति राग नहीं है और द्वेष के प्रति द्वेष नहीं है।

१००४

सम्यग्दर्शन होने में भले देर लगे... लेकिन (इतना ढीठ है कि) ढीला भी नहीं पड़ता! विकल्पात्मक दशा में भी निर्णय नहीं करता कि: "मैं पर को नहीं जानता, जाननहार जानने में आता है।"

१००५

ज्ञानियों को थोड़े शब्दों में; थोड़ी बात में बहुत कहने की पद्धति होती है। थोड़ी बात में बहुत कह देते हैं। "जाननहार जानने में आता है", उसमें सभी कुछ कह दिया।

आत्मा जाननेवाला है, करनेवाला नहीं, और पर का जाननेवाला नहीं है। क्योंकि "जाननहार जानने में आता है"।

१००६

निश्चय क्षमापना। मेरे ज्ञान में आत्मा जानने में आता है तथापि मैं दर्शन करने नहीं आता, अथवा दर्शन नहीं लेता वह मेरा अपराध है। मुझे "जाननहार ही जानने में आता है"। वह ही मुझे दर्शन देता है, और मैं उसे ही जानता हूँ - आज मैं ऐसी प्रतिज्ञा करता हूँ।

१००७

"जाननहार जानने में आता है" उसमें सारा माल भरा हुआ है। जाननहार जानने में आता है तब तो अनुभव होता है। जाननहार जानने में न आए तो अनुभव नहीं होता।

१००८

ज्ञेयाकार अवस्था में "जाननहार जानने में आता है", स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी "जाननहार जानने में आता है"। अरे! निगोदिया जीव को भी "जाननहार जानने में आता है"। सभी जीवों को, आबाल-गोपाल सभी को अनुभूतिस्वरूप, ज्ञानस्वरूप भगवान "जाननहार जानने में आता है"। एक ज्ञाता द्रव्य आत्मा है वह सभी के ज्ञान में जानने में आता है।

सभी को "जाननहार जानने में आता है"। विशेष अपेक्षा से "जाननहार जानने में आता है"। ना जाने तो भी "जाननहार जानने में आता है"। सामान्य अपेक्षा से "जाननहार जानने में आता है"। सभी अवस्थाओं में "जाननहार जानने में आता है"। अरे! प्रभु अज्ञानी को भी "जाननहार जानने में आता है"। तो फिर...ज्ञानी होने के पश्चात तो सभी अवस्थाओं में जाननहार ही जानने में आता है ना?

निर्विकल्पध्यान की अवस्था में तो "जाननहार जानने में आता हो" और सविकल्प में आये तो यह सब जानने में आता है? 'ना' ऐसा नहीं है। निर्विकल्प में भी "जाननहार जानने में आता है"। और सविकल्प में भी "जाननहार जानने में आता है।"

सम्यग्ज्ञान का ज्ञेय किसी भी अवस्था में पलटता नहीं है। शीलवान स्त्री के हृदय में पति ही होता है, पति का ही वास होता है। फिर वह चाहे जहाँ हो। वैसे तो सविकल्पदशा की बात विचित्र प्रकार की है। उसे समझना बहुत कठिन है।

हे! भव्य! सावधान होकर सुन!! तूने अनंत अनंतकाल से यह बात समझी नहीं है।

१००९

"जाननहार जानने में आता है" ऐसा अंदर से जोर आना चाहिए। पर जानने में नहीं आता और जाननहार जानने में आता है वह अंदर से जोर आता है। पूज्य गुरुदेव फरमाते थे कि जब समुद्र में भरती(ज्वार) का काल आता है, तब चाहे जितनी गर्मी पड़ती

हो, १२० डिग्री का ताप पड़ता हो तो भी भरती आती ही है। समुद्र मध्यबिंदु में से उछलता है तब भरती आती है- वैसे ही "जाननहार जानने में आता है" ऐसा भाव मध्यबिंदु में से उछलता है तब भरती आती है। उस समय शास्त्र का लक्ष नहीं होता। "जाननहार जानने में आता है" उसमें अनुभव होता है।

लिंबूडा गए थे तब भक्ति में बोले थे- "जाननहार जानने में आता है, उसमें अनुभव लिया रे"।

"जाननहार जानने में आता है" उसमें अनुभव होता है वह समष्टिगत बात है। जबकि "जाननहार जानने में आता है" उसमें अनुभव लिया, वह व्यक्तिगत बात है।

यह सर्वज्ञ भगवान की कही हुई- दिव्यध्वनि में आई हुई, संतों द्वारा अनुभव की हुई यह बात है।

"जाननहार जानने में आता है" उसमें अनुभव होता है, पर जानने में आता है उसमें अनुभव नहीं होता। पर का कर्ता तो है ही नहीं, परंतु पर का ज्ञाता भी व्यवहार से है। "जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता" उसमें उपयोग अभिमुख होता है। ज्ञायक पर को जानता ही नहीं यह वज्र जैसी बात है। जिस प्रकार ३२० गाथा ने कर्ताबुद्धि को चूर-चूर कर दिया उसीप्रकार सेटिका की गाथा ने पर को जानने की ज्ञाताबुद्धि को चूर-चूर कर दिया।

१०१०

जाननहार हूँ करनेवाला नहीं हूँ, "जाननहार ही जानने में आता है" इसलिए मैं पर को नहीं जानता। इसप्रकार जाननहार ही जानने में आता है उसमें अनुभव होता है। अनुभव करता नहीं है-अनुभव सहज हो जाता है। लाओ अनुभव करूं! तो अनुभव होता है? द्रव्य के ऊपर नजर करते ही अनुभव सहज हो जाता है। अनुभव बिना धर्म की शुरुआत नहीं है।

१०११

अनुभव के काल में तो पर ज्ञात ही नहीं होता। परंतु अनुमान में भी..., अनुमान में आत्मा को स्थाप दे! ज्ञायक जानने में आता है- "जाननहार जानने में आता है", फिर कहते हैं कि इतना भेद है ज्ञान में। आत्मा जानने में आता है इतना विकल्प भी झूठा है। वह तो शुद्ध वस्तुमात्र है ऐसा अनुभव सम्यक् है। अनुभव के बाद सम्यक् नाम पड़ा। जब अनुमान था तब सम्यक् नाम नहीं पड़ा था। सम्यक् सन्मुखवाले को सम्यक् होने का अवकाश है। अब जिसके ज्ञान में ऐसा आता है कि यह पर जानने में आता है... यह पर जानने में आता है... उसे कहते हैं कि: तेरे परोक्ष ज्ञान में तुझे आत्मा जानने में नहीं आता तो प्रत्यक्ष कहाँ से होगा? अनुमान में तो आत्मा ले! अनुभव बाद में होगा ही। यह

करणलब्धि वाले जीव की संधि की नजदीक की भूमिका है। जिसके द्वारा यह पदार्थ जानने में आता है उसके द्वारा ज्ञानी आत्मा कैसे ज्ञात न हो? जिसके द्वारा प्रकाश दिखाई देता है उसके द्वारा दीपक दिखाई नहीं देता ? ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है और ज्ञायक ज्ञात नहीं होता?

१०१२

जनाता तो है ज्ञान में ज्ञायक और राग तो अन्य है। अब उस ज्ञान में ऐसा जानने में आता है कि- राग को मैं करता हूँ! उस ज्ञान में ऐसा जानने में आता है कि राग को जानता हूँ; ज्ञान में अभी ऐसा कहाँ लगता है कि मुझे ज्ञायक जानने में आता है- तो तो निश्चय के पक्ष में आ गया। राग को करता भी नहीं राग को जानता भी नहीं... "जाननहार जानने में आता है" तो तो वह निश्चय के पक्ष में आ गया। पक्ष में आये उसे पक्षातिक्रांत होने का अवकाश है।

१०१३

तुझे आत्मा को प्राप्त करना हो तो आत्मा आत्मा को जानता है- इस सिद्धांत में आजा ना! छोटी-बड़ी बातों को छोड़ दे! इस बात में, इस विचार में, इस भाव में ही साध्य की सिद्धि है ऐसा निर्णय कर। बाद में अनुभव होगा। मैं पर को जानता हूँ- वह बात अब छोड़ दे। प्रमाण के पक्ष का विकल्प भी किसे छूटता है? मैं पर को जानता हूँ (उसमें तो अभी प्रमाण में भी नहीं आया।) उसके विकल्प छूटेंगे? संक्षेप में आत्मा को जानना हो तो इसमें आजा ना! "जाननहार जानने में आता है" दूसरा जानने में नहीं आता उसमें आजा ना! यह एक वाक्य सुनहरा है।

सेटिका की गाथा की एक ही ध्वनि है ज्ञायक ही जानने में आता है, दूसरा कुछ ज्ञात ही नहीं होता। तो भी एकइन्द्रिय से लेकर आजतक उसे कभी शुद्धात्मा ज्ञेय हुआ ही नहीं। स्वयं स्वयं को जानता है उसमें आजा ना! उसे ऐसा नहीं कहा कि वह भेद है। जो स्वयं अपने को जानता है - इसमें आयेगा उसे इतना भेद निकल जाएगा। मूल बात तो यह है। इस बात पर ध्यान खिंचे तो काम हो जाये। ३२० गाथा में निर्जरा को जानता है वह बात आई- (वह बात ज्ञानी होने के बाद की है।) ज्ञानी होना हो तो? स्वयं स्वयं को जानता है उसमें आजा! सम्यग्दर्शन होने के बाद क्या? वह अलग बात है। निश्चय पूर्वक व्यवहार प्रगट होता है वह अलग बात है।

१०१४

जिज्ञासा :- अनुभव से पहले क्या लेना?

समाधान :- अनुभव से पहले ऐसा ही घूंटना कि "मुझे ज्ञायक जानने में आता है, मैं ज्ञायक ही हूँ"... क्योंकि पर्याय द्रव्य का अवलंबन लेती है तब दृष्टिपूर्वक ज्ञान होता

ही है वह परिणामी द्रव्य को जानता है। शुद्धोपयोग से पहले तो ऐसा लेना कि - मैं ज्ञायक ही हूँ।

कलशटीका कलश ८ में आता है कि जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है। मुझे "जाननहार जानने में आता है"... मैं तो जाननहार ही हूँ। मैं ज्ञायक हूँ ऐसा मुझे जानने में आता है। मैं शुद्धात्मा हूँ... मैं अभेद तत्त्व हूँ... मैं सामान्य तत्त्व हूँ ऐसा ज्ञान में लेना। सामान्य के पक्ष को लक्ष में लेता है तो विकल्प टूटकर निर्विकल्प अनुभव होता है। अब प्रथम से ही ज्ञान के विषय को लो तो ध्येय झूठा है क्योंकि वह ज्ञेय का पक्ष है।

१०१५

अब ऐसा लगता है कि किनारे आ गये हो। मैं पर को जानता ही नहीं। "जाननहार जानने में आता है" यह बात बैठ गई तो किनारे पर ही हो। क्योंकि पर को जानते हुए अनंतकाल गया... उसमें आनंद नहीं आया इसलिए पर को लक्ष करके जानना वह इन्द्रियज्ञान का स्वभाव है। निश्चयनय से ज्ञानपर्याय का स्वभाव ज्ञायक को अभेदपने जानना वह है। निश्चय प्रगट होने के बाद ज्ञान की पर्याय में पर जानने में आता है वह व्यवहार है। निश्चय से ज्ञानपर्याय का स्वभाव अभेदरूप से आत्मा को जानने का है। क्योंकि अभेद को जानने पर आनंद आता है। अब यदि पर को जानने पर आनंद आता हो तो तुम पर को जानते रहो! परंतु उसमें आनंद नहीं आता... उसमें उपयोग बाहर लोटता है। ज्ञेय से ज्ञेयान्तर ज्ञेय से ज्ञेयान्तर हुआ ही करता है। पर्याय को जानने से सुख नहीं मिलता।

तेरा अभिप्राय है कि- करना नहीं परंतु पर को जानना वह ज्ञान का स्वभाव है। केवली भगवान भी लोकालोक को जानते हैं- स्वपरप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव है... तो पर को जानने में दोष क्या है? अब मेरा प्रश्न है कि- पर को जानने में तूने अनंतकाल निकाला... तुझे आनंद और सुख आया? यदि आनंद नहीं आता तो वह ज्ञान का स्वभाव नहीं है, विभाव है। एक बार ज्ञान आत्मा को जाने तो आनंद आये बिना रहे नहीं। इसलिए अपने अभेद को जानना वह ज्ञान का स्वभाव है, भेद को जानना वह ज्ञान का स्वभाव नहीं है।

अरे! अनुभव के बाद भी यदि भेद को जानेगा तो श्रेणी नहीं आएगी- वह भी विभाव है। यह बात आज से समझ लेना। एक बार अनुभव हो गया फिर बाहर निकले... फिर भेद जानने में आया करेगा तो भी श्रेणी नहीं आएगी। अभी से निश्चित करो कि- सम्यग्दर्शन होने के बाद भी मुझे भेद को जानना नहीं है। एक अभेद को जानना है बस दूसरा कुछ नहीं। अभी से यह निर्णय कर लेना।

जिसप्रकार अभेद को जानने पर सम्यग्दर्शन हुआ उसी प्रकार अभेद को जानने

पर चारित्र होता है। भेद को जानने पर कभी चारित्र होता है? सम्यग्दर्शन भले रहे परंतु चारित्र नहीं होता। जो सम्यग्दर्शन प्रगट करने की रीति है वह ही चारित्र प्रगट करने की रीति है।

१०१६

अनुभूति करनी नहीं है... अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा जानने में आ रहा है... "जाननहार जानने में आ रहा है" उसका स्वीकार करना है। उसमें सहज ही अनुभूति प्रगट हो जाती है। अनुभूति करनी है तो करना वह स्वभाव ही नहीं है क्योंकि आत्मा अकर्ता है ना?

१०१७

जाननहार हूँ करनेवाला नहीं हूँ। मैं करनेवाला नहीं हूँ परंतु मैं पर को जानूँ। केवली लोकालोक को जानते हैं और मैं थोड़े पदार्थों को जानूँ! जानने में क्या दोष है? जानना तो स्वभाव है। एकेन्द्रीय से लेकर आज तक तूने पर को जाना। यदि पर को जानना तेरा स्वभाव हो तो आनंद आया? तो फिर पर को जानना वह स्वभाव कहाँ रहा? यह न्याय है।

अज्ञान परिणति क्षणभर भी पर को जानना बंद नहीं करती। यदि वह पर को न जाने तो वह जाननहार को जाने। पर को जानना बंद कर तो स्व में आ जायेगा। वह परसन्मुख ज्ञान होगा तब तक स्व जानने में आते हुए भी जानने में नहीं आयेगा। वह अब स्वसन्मुख होने पर, परपदार्थ जानने में आते हुए भी पर जानने में नहीं आता। ऐसा है (उपयोग पर की तरफ है) उसके बदले इस स्व को जान न!

(जीवों को) करना तो कषाय-दुःख लगता है... परंतु पर को जानना वह दुःख नहीं लगता। उसमें सुखाभास लगता है। (उसे ऐसा लगता है कि) मैं तो जानने में आ गया। होता है उसे मैं जानता हूँ।

कोई वस्तु स्वभाव को छोड़ती है? नहीं छोड़ती। तो ज्ञान की पर्याय अपने स्वभाव को जानना न छोड़े वह ही ज्ञान सच्चा है। अपने स्वभाव को जानना छोड़कर... जो अपना नहीं है उसे जानने जाये उसे ज्ञान कौन कहे? वह अज्ञान=मिथ्यात्व है।

एकेन्द्रीय से आजतक उसने पर को जाना। अब यदि पर को जानना स्वभाव हो तो- अतीन्द्रिय आनंद आया? आनंद आना चाहिए, यह न्याय की बात है। यदि आनंद नहीं आया तो पर को जानना विभाव है; स्वभाव नहीं है। जहाँ अपने ज्ञान में आत्मा ज्ञात हुआ वहाँ आनंद आया इसलिए वह जानना स्वभाव है। यह बेरोमीटर है- इसमें फैसला है। अच्छे-अच्छे इसमें भ्रमित हो जाते हैं। ग्यारह अंग के पाठी की यह भूल है। यदि तुम पर को जानना उसे ज्ञान का स्वभाव मानो तो कभी पर से विमुख नहीं हो पाओगे।

१०१८

या तो स्वयं समझे- आत्मा को सेवे और या तो जिसने आत्मा जाना हो उसके पास से समझे- प्राप्त करे। इसप्रकार निसर्गज और अधिगम ऐसे दो कारण बताए हैं। या तो स्वयं चेत जाये- मुझे "जाननहार जानने में आ रहा है" तो उसे किसी के उपदेश की जरूरत नहीं है। पूर्व में देशनालब्धि सुनी हो इसलिए (वर्तमान में) गुरु के बिना प्राप्त करता है, अथवा साक्षात् गुरु का योग होता है तब प्राप्त करता है। ऐसे दो कारण शास्त्र में हैं।

१०१९

जीव ज्ञेयलुब्ध हो जाता है। ज्ञेय में एकाकार हो जाता है। वह पर ज्ञेय छूट जाना चाहिए। वह... ज्ञेय होना कब छूटे? मुझे पर जनाता ही नहीं। ज्ञेय के सन्मुख हुआ उपयोग जो पर को प्रसिद्ध करता था वह बंद हो जायेगा। दीवार जानने में आती ही नहीं न! "जाननहार जानने में आता है"। सामने गाड़ी है वह जानने में आती ही नहीं... ऐसा प्रयोग उठने पर परिणति अंदर में आ जाती है। क्योंकि उसने व्यवहार से ज्ञेय ज्ञायक संबंध का निषेध किया है। कहते हैं- पर जानने में आता ही नहीं- इसप्रकार व्यवहार का निषेध करना ही चाहिए।

जिज्ञासा:- उसमें उदासीनता आती है- उदासीन रहा करता है।

समाधान:- उदासीन नहीं परंतु उसमें अनुभव होता है। उदासीन की बात बाद में करो, पहले उपयोग अंदर में कैसे आवे उसकी बात करो। दो प्रकार के व्यवहार का निषेध करने का बल आयेगा तो ही अनुभव होगा। दो प्रकार के व्यवहार का निषेध तुम्हें करना पड़ेगा। व्यवहार का निषेध किसलिए करना पड़ता है? कहते हैं- व्यवहार का पक्ष है इसलिए... (अज्ञानी को) व्यवहार नहीं होता। होते हुए परिणाम का करनेवाला हूँ वह व्यवहार नहीं है व्यवहार का पक्ष है; अनुभव से पहले व्यवहार कहाँ से हो? व्यवहार का पक्ष है वह विपरीतता है। जब व्यवहार का पक्ष छूटता है तब व्यवहार श्रद्धा होती है- वह भी निश्चयपूर्वक का व्यवहार नहीं है। परिणाम का कर्ता नहीं हूँ ऐसा अकर्ता हूँ। कर्तापने का पक्ष था वह विपरीतता थी। मैं कर्ता नहीं हूँ...अकर्ता हूँ उसमें पहली (कर्ताबुद्धि की) विपरीतता गई। वह व्यवहार श्रद्धा में आ गया। यह अभी व्यवहार श्रद्धा है, निश्चय श्रद्धा नहीं है। उसके बाद...

आहा! उसके बाद एक दूसरे व्यवहार का निषेध करना पड़ेगा। (मैं पर को जानता हूँ - यह व्यवहार का पक्ष है।) मैं पर का जाननेवाला हूँ ही नहीं- इसप्रकार व्यवहार के पक्ष का निषेध करना पड़ेगा। इसमें विपरीतता गई और व्यवहार श्रद्धा हुई- निश्चय श्रद्धा अभी बाकी है।

राग का करना तो नहीं परंतु राग का जानना भी नहीं। राग को जानता हूँ तो तो वह का वही (अर्थात् कर्ता ही) रहा। यह तो पानी में लाठी मारने जैसा हुआ। पानी में लाठी मारो तो भी पानी किसी भी तरह से अलग नहीं पड़ता। यह विषय आ गया है। राग को करना तो मेरा स्वभाव नहीं है परंतु राग को जानना वह भी मेरा स्वभाव नहीं है। ज्ञानी तो जानते हैं या नहीं? पहले ज्ञानी तो हो! बाद में (व्यवहार की) बात करना।

ज्ञानी तो देव-गुरु-शास्त्र को जानते हैं ना? ज्ञानी तो राग को जानते हैं ना? रुक जा तू! तू पहले ज्ञानी हो फिर वह बात कर। पहले जाननहार को तो जान ले! पर को जानने रुकेगा तो मर जायेगा। उसने(अज्ञानी ने) ज्ञानी की नकल की- स्वयं ज्ञानी तो है नहीं। वह कहता है- देखो! जाना हुआ प्रयोजनवान है या नहीं? १२ वीं गाथा में लिखा है ना! वह ज्ञानी की नकल करता है। दूसरों को जानने गया तो अपने को जानना रह गया। भेद को-परद्रव्य को जानने रुक गया। करने में से छूटा परंतु उसे जानने रुक गया। करने में तो कषाय दिखाई देती है और उसमें दुःख का वेदन भी होता है। जबकि पर के जानपने में तो मानसिक शांति रहती है- उसमें संतुष्ट हो जाता है। इसप्रकार कहीं न कहीं अटक जाता है।

प्रगट होते हुए उपयोग में क्षणभर पर को जानना बंद करो, जिससे इन्द्रियज्ञान का व्यापार अटक जायेगा... और नया अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होकर आत्मा का अनुभव करेगा। अब वापस तुम सविकल्प में आओगे तब इन्द्रियज्ञान खड़ा होगा... और उसमें पर ज्ञात होगा... परंतु अब वह मुझरूप नहीं जनायेगा। स्व के ज्ञातापूर्वक पर का ज्ञाता हुआ वह व्यवहार है। और स्व का ज्ञाता नहीं हुआ और पर का ज्ञाता कहे तो वह व्यवहार नहीं है परंतु अज्ञान-भ्रांति है।

१०२०

"जाननहार जानने में आता है... जाननहार जानने में आता है" वह बात सत्य है। ज्ञायक जानने में आता है वह उसका जो विचार है वह सच्चा है- सम्यक् है। यदि जाननहार जानने में न आता होता और ऐसा विचार करे कि- "जाननहार जानने में आता है" तो तो वह विचार भी झूठा ठहरे। परंतु "जाननहार जानने में आता है" वह विचार सच्चा है। आगे जाने पर "जाननहार जानने में आता है" इतना भेद भी निकल जायेगा। अभेद अनुभव के बाद सविकल्पदशा में भी "जाननहार जानने में आता है" वह बात बाद में भी ऐसी ही है। "जाननहार जानने में आता है" वह चालू ही है। फिर "जाननहार जानने में न आये" ऐसा कभी हो सकता है? आबाल-गोपाल सभी को जानने में आ रहा है फिर साधक को सविकल्प में जानने में न आये यह प्रश्न ही कहाँ रहा? निगोद के जीवों को भी ज्ञायक जानने में आ रहा है... तो फिर सम्यग्दृष्टि जीव की क्या बात करनी?

१०२१

कोई तर्क करे कि – वर्तमान ज्ञान की पर्याय में बाल गोपाल सभी को जाननहार जानने में आता ही हो तो तो कोई जीव अज्ञानी रहे ही नहीं। इसलिए जानने में आता ही नहीं। यदि आत्मा जानने में आता होता तो कोई जीव एकेन्द्रीय दोइन्द्रिय न रहता।

एकेन्द्रीय जीव के वर्तमान वर्तते हुए परिणाम चैतन्य अनुविधायी परिणाम हैं- जो आत्मा का अनादि-अनंत लक्षण है। उस उपयोग में ज्ञायक जाननहार जानने में आ रहा है। अब ऐसा प्रश्न होता है कि – वर्तमान पर्याय में यदि ज्ञायक जानने में आता होता तो तो कोई अज्ञानी न होता, सभी ही ज्ञानी हो जाते! ऐसा प्रश्न अवश्य हो सकता है!

वर्तमान वर्तते ज्ञान में – क्षयोपशम में जानने की क्रिया होती है। उसमें जानने की शक्ति प्रगट है। ज्ञप्ति अर्थात् जानने की क्रिया। इस क्रिया में ज्ञायक भी प्रतिभासित होता है और देहादि भी उसमें प्रतिभासते हैं। एक समय में दो प्रतिभासते हैं- ऐसी उसकी स्वच्छता है। अब प्रतिभासते हैं उसमें वह देहादि रागादि के प्रतिभास को उपयोगात्मक करके- मैंपने की बुद्धि करता है और ज्ञायक का प्रतिभास होते हुए भी उसको उपयोगात्मक नहीं करता। अरे! मुझे तो जाननहार जानने में आता है ऐसा वह मानता नहीं। इसलिए उसे अनुभव होता नहीं।

अब दूसरा कोई आत्मा इसप्रकार भेदज्ञान करे कि- मैं जिससे तन्मय हूँ वह ही मुझे जानने में आता है और जिससे तन्मय नहीं वह ज्ञात ही नहीं होता। इसप्रकार जब इन्द्रियज्ञान का व्यापार बंद करेगा तब उसे जो आत्मा जानने में आ रहा था वह प्रत्यक्ष अनुभव में आयेगा। यह सरल में सरल उपाय है।

ज्ञानी भेद से ऐसा कहते हैं कि- तुझे यह (पर) जानने में नहीं आता परंतु तुझे तेरी ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। क्योंकि भेद से समझाते हैं तब वह समझ सकता है। यह (पर) जानने में आता है तब आत्मा जानने में आता है, उसमें समझ नहीं सकता इसलिए भेद से समझाते हैं।

१०२२

ज्ञेय को जानता है इसलिए ज्ञायक- यह व्यवहार द्वारा परमार्थ प्रतिपादक है। परंतु वह व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है। निषेध कर कि ज्ञेय को मैं जानता ही नहीं... आहा! "जाननहार ही जानने में आता है" उसमें आजा!!

१०२३

उपयोग प्रगट हुआ और राग भी प्रगट हुआ। अब उस उपयोग में स्वपरप्रकाशक शक्ति होने के कारण उस उपयोग में ज्ञायक भी प्रतिभासता है और पुद्गल का परिणाम राग भी प्रतिभासता है। स्वच्छता एक है उसमें प्रतिभास दो का है-

ऐसी एक स्वच्छता है। स्वच्छता के दो प्रकार नहीं है। अच्छी बात है इसलिए फिर से...

दर्पण है वह स्वच्छ है। अब उसके सामने अग्नि है। उस अग्नि का स्वच्छता में प्रतिभास होता है... परंतु अग्नि उसमें घुसती नहीं। उस स्वच्छता में उसका दल भी प्रतिभासित होता है... क्योंकि दल और स्वच्छता तो एक वस्तु है- इसलिए दल उसमें प्रतिभासित होता है... प्रतिभासित होता और होता ही है। क्योंकि दर्पण की अवस्था में दल रहा हुआ है। इसलिए उसकी अवस्था में दर्पण जानने में आता... आता और आता ही है। इसप्रकार इस ज्ञानोपयोग की अवस्था में ज्ञायक का प्रतिभास प्रतिसमय हो रहा है। अज्ञानी एकेन्द्रीय जीव को बाल-गोपाल सभी को भगवान आत्मा अनुभव में आ रहा है... और देहादि और पुद्गल रागादि उनका भी प्रतिभास होता है।

(१.) जिस समय उपयोग प्रगट हुआ...

(२.) उसी समय राग भी प्रगट हुआ...

(३.) उसी समय राग का प्रतिभास होता है...

(४.) उसी समय ज्ञायक का प्रतिभास होता है...

इस समय वह ज्ञानस्वभाव को नहीं पकड़ता और राग को पकड़ता है और ज्ञान का अज्ञान कर देता है।

किसी को ऐसा लगता है कि- आबाल-गोपाल सभी को अनुभव में आता है तो सम्यग्दर्शन तो हो गया ना? ऐसा प्रश्न होता है। भाई! उस (ज्ञायक के) प्रतिभास को तू उपयोगात्मक कहाँ करता है? जो ज्ञान से भिन्न ज्ञेय हैं उन्हें उपयोगात्मक कर रहा है – इसलिए ज्ञेय-ज्ञायक संकर दोष होता है। प्रतिभास + उपयोगात्मक। कौनसे प्रतिभास को उपयोगात्मक करता है उसके ऊपर ज्ञान-अज्ञान का आधार है।

यदि उस उपयोग में ऐसा आता है कि- "जाननहार जानने में आता है"... ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है... तो सम्यग्दर्शन हो जाता है। और उस ज्ञान में रागादिक और देहादि जानने में आते हैं इसलिए वे मेरे, यदि ऐसा उपयोगात्मक कर ले तो ज्ञान का अज्ञान कर लेता है। अज्ञानी नया होता है। अज्ञानी पुराना नहीं है। पुराना तो ज्ञायक है। स्वयं तो ज्ञायकरूप ही है।

१०२४

परज्ञेय को मैं नहीं जानता... मात्र ज्ञायक ही जानने में आता है। यह असाधारण बात है। इसके सिवाय किसी को अनुभव नहीं होता। पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद कर दे! उसमें ज्ञेय पलट जाता है। यह बात उन बहन से की थी। "जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता" "पर का कर्ता नहीं है और पर का ज्ञाता नहीं है"। दो वाक्य कहे थे। फिर चर्चा बंद कर दी।

१०२५

अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने में भी दीपक ही है। अन्य कुछ नहीं है- ऐसे ही ज्ञायक का समझना। "ज्ञायक तो ज्ञायक है"। पर को जानता है तब भी "जाननहार जानने में आता है"- इसलिए ज्ञायक है। राग को जाने तो भी वह रागी नहीं होता... वह तो ज्ञायक ही है। वास्तव में तो राग को जानता ही नहीं ज्ञायक को ही जानता है। व्यवहार से राग को जानता है ऐसा कहने में आता है। निश्चय और व्यवहार की यह बात है। निश्चयपूर्वक व्यवहार होता है। निश्चय क्या? परिणाम से रहित जानना वह निश्चय और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सहित जानना वह व्यवहार है।

१०२६

अनुभव का विषय ज्ञानमात्र और अनुभव हुआ वह भी ज्ञानमात्र हुआ। ज्ञानमात्र दृष्टि का विषय दृष्टि में आने पर जो अनुभूति हुई वह भी ऐसा जानती है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। "जाननहार जानने में आता है" उसमें दोनों आ गये या नहीं?

अपन 'जाननहार जानने में आता है' यह एक सूत्र लो न! जाननहार वह ज्ञानमात्र है और जो ज्ञात हुआ वह तो वह ही है। ज्ञात वह तो ज्ञात ही है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। उसमें उपरोक्त दोनों भाव आ गये या नहीं?! आ ही जाते हैं। ज्ञानमात्र भाव में भी दोनों भाव आ जाते हैं। इसलिए ध्येयपूर्वक जो ज्ञेय हुआ वह वस्तु का स्वरूप है। जैनदर्शन की अलौकिक बात है।

१०२७

मौसमी के टोकरे में से एक मौसमी ली तो वे अनेक मौसमियाँ थी उनमें से एक अलग हो गई। अस्ति-नास्ति के पहले बोल में पर से भिन्नता। दूसरे बोल में अंदर में मौसमी के छिलके की रस में नास्ति है। उसीप्रकार पर्याय की द्रव्य में- भगवान आत्मा में नास्ति है।

अब "जाननहार ही जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता" मुझे छह द्रव्य तो जानने में आते नहीं परंतु छिलका भी जानने में नहीं आता। रस जानने में आता है। इसप्रकार स्वपरप्रकाशक है वह प्रमाणरूप है। उसमें से पर को जानता ही नहीं स्व को ही जानता हूँ तब स्वप्रकाशक होता है। स्वप्रकाशक पूर्वक स्वपरप्रकाशक ज्ञान तो बाद में ज्ञानी को होता है।

इसप्रकार अनेकांत का जो स्वरूप है वह द्रव्य-पर्याय स्वरूप है। उसमें से सम्यक् एकांत निकाले तो अनुभव हो। अनुभव होने पर द्रव्य-पर्याय स्वरूप वस्तु का ज्ञान हो जाता है। आनंद आया वह अनेकांत सम्यक् हुआ। अकेले द्रव्य को जानता है ऐसा नहीं है। पर्याय के लक्ष बिना, इन्द्रियज्ञान के सहारे बिना, युगपत्, अक्रम, एकसाथ

एक समय में द्रव्य-पर्याय का ज्ञान होता है।

१०२८

आत्मा ने एक समय भी आत्मा को नहीं जाना है। 'जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनंत'। क्रियाकांड बहुत किए, (उसके फल में) नवमी ग्रैवेयक तक गया... परंतु उसने एक केवल आत्मा को नहीं जाना।

आत्मा को जाने बिना भव का अंत किसी को आया नहीं... आनेवाला भी नहीं है। थककर.. हारकर भी.. (यहाँ आना है)। पूरे दिन भटकता है बाजार में, परंतु घर जाता है तो उसकी थकान उतरती है। आह! घर में आ गया। इसप्रकार आत्मा को अंतर्मुख होकर जाने कि... "जाननहार जानने में आता है", जो जानता है उसे नहीं जानता परंतु जानने में आता है उसे जानता हूँ; पर्याय के भेद को नहीं जानता परंतु मैं तो अभेद को जानता हूँ- वह मेरा स्वज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ -- ऐसा अनुभव करने पर भव का अंत आता है।

१०२९

भेदबुद्धि करने पर क्या जानने में आता है? राग देव-गुरु-शास्त्र जानने में आते हैं या नहीं? कहते हैं- नहीं। अभेद में तो आत्मा अनुभव में आता है... अनुभव में दूसरा कुछ जानने में नहीं आता। वह सविकल्प में बैठा है- भेदबुद्धि करता है मेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है- ऐसी भेदबुद्धि करने पर जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है। वस्तु विचारने पर अब इतना भेद निकल जाता है। वस्तु विचारने पर इतना विकल्प भी झूठा है!

आत्मा राग को करता है वह बात तो दूर रहो... परंतु राग को जानता है वह पूर्व भूमिका का विकल्प नहीं है। पूर्व भूमिका में "जाननहार जानने में आता है" इतना ही आता है। मुझे ज्ञान में आत्मा जानने में आता है ऐसा अनुभव में आता है वह भेद है वह झूठा है। शुद्ध वस्तुमात्र है वैसा अनुभव सम्यक्त्व है। जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को जानती है वह छूट गया।

अनुभव के लिए भी यही आता है और अनुभव के बाद भी यही आता है- बारंबार शुद्धोपयोग होता है न? उससे पहले उसे इस जाति का पहलू आता है। श्रुतकेवली धर्मात्मा (धर्मकीर्ति मुनिराज) ने कहा न "जाननहार जानने में आता है"। सविकल्प में इतना भेद आया। फिर तो जो जाननहार है वह जानने में आता है- ऐसा द्वैतपना निकल जाता है... ज्ञायक तो ज्ञायक है।

ज्ञान की पर्याय का व्यवहार क्या? और ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या? राग को ज्ञान जानता है या पर को जानता है वह ज्ञान की पर्याय का नजदीक का व्यवहार नहीं है- वह दूरवर्ती व्यवहार है। ज्ञान की पर्याय का अनुभव से पहले नजदीक का व्यवहार-

"जाननहार जानने में आता है"। मेरे ज्ञान में तो आत्मा जानने में आता है वह नजदीक का व्यवहार आया ना? अनुभव करने पर इतना व्यवहार भी झूठा है।

ज्ञान राग को जानता है वह उपचरित सद्भूत व्यवहार लिया। ज्ञान आत्मा को जानता है वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार हुआ उसका अभाव होता है। इसका (उपचरित का) अभाव होकर (अनुभव नहीं होता)। एक दूरवर्ती व्यवहार और एक निकटवर्ती व्यवहार है। व्यवहार के दो प्रकार किए। आठवें कलश में निकटवर्ती व्यवहार की ही बात की है। फिर उस व्यवहार को उलंघकर अनुभव करता है- सम्यग्दर्शन होता है।

१०३०

प्रमाण नय आदि भेद की तो बात ही क्या? शुद्धात्मा का अनुभव होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता। भेद की बात तो क्या करें? परंतु शुद्ध अनुभव होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा है नहीं। "जाननहार जानने में आता है" वह तो भेद हुआ। अभेद-अद्वैत-एकाकार चिन्मात्र भगवान ही दिखता है।

१०३१

क्या कलम चलायी है... मेरे ज्ञान में पंचमहाव्रत जब प्रतिभासित होते हैं उस समय हमें तो ज्ञायक जानने में आता है।

जिज्ञासा:- साहेब! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है ना!

समाधान:- मैं तो मेरे स्वभाव से बात करता हूँ। व्यवहारनय की मुझे कुछ खबर नहीं है। मेरे ज्ञान स्वभाव में तो ज्ञायक ज्ञात होता है। जो ज्ञात होता है उसकी बात करता हूँ बस।

यह सिद्धांत सविकल्प में सदैव साथ रखना - पर जानने में नहीं आता। यदि सविकल्प में भी व्यवहार से मुझे पर जानने में आता है तो उपाधि है अर्थात् ज्ञान दूर हो जाएगा। क्योंकि इन्द्रियज्ञान के (अनादि के) संस्कार हैं इसलिए इन्द्रियज्ञान बलवान हो जाएगा।

वीरजीभाई कहते थे वह बात यथार्थ है। पर जानने में नहीं आता - वह उनकी मास्टरी थी। पर जानने में ही नहीं आता उसमें ही जाननहार जानने में आ जाता है। पर जानने में आता है उसमें आत्मा तिरोभूत हो जाता है और अज्ञान उत्पन्न होता है।

छद्मस्थ का उपयोग एक समय में एक में ही होता है। पर जानने में आता है तो स्व तिरोभूत हुआ। सविकल्पदशा में एक ही ज्ञेय है। (ज्ञेय पलटता नहीं।)

ज्ञान जिससे तन्मय होता है उसे जाना ही करता है। वह ज्ञान ज्ञायक से अलग पड़ता है? नहीं पड़ता। उपयोग में उपयोग है, उपयोग में कोई क्रोधादि नहीं है। दो शब्दों

में गाथा पूरी हो गई - गाथा ही इतनी है।

उपयोग में क्रोधादि है वह भ्रांति थी। वह निकालने के लिए उपयोग में क्रोधादि नहीं है वह अस्ति-नास्ति अनेकांत की बात की। अंदर में अस्ति-नास्ति है। उपयोग में उपयोग है और उपयोग में क्रोधादि नहीं है। यह अस्ति-नास्ति अनेकांत है। यह अनेकांत भेदज्ञानपरक अमृत है। स्वभाव की सिद्धि करानेवाला है।

आहा! "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता"। गुरुदेव ने कहा- वास्तव में तुझे पर जानने में नहीं आता तो फिर पर की तरफ उपयोग लगाने की बात ही कहाँ रही? एजेंडा के ऊपर वह बात रहती ही नहीं। ऐसा वाक्य आत्मधर्म में आया।

एक पर को करने का पक्ष और दूसरा पर को जानने का पक्ष अनंतकाल से मार डालता है। एक में द्रव्य का निश्चय (हाथ में से) चला जाता है। दूसरे में पर्याय का निश्चय चला जाता है और अज्ञान हो जाता है। एक में द्रव्य संबंधी अज्ञान, दूसरे में पर्याय संबंधी अज्ञान। अकर्ता को कर्ता मानना वह द्रव्यस्वभाव की विपरीतता है। ज्ञायक का जाननेवाला है उसे पर का जाननेवाला मानना वह पर्याय के स्वभाव की विपरीतता है।

विषय पलटे तो ज्ञान प्रगट हो। उसे स्वज्ञेय का विषय देने की जरूरत है। थोड़ा टाइम भले लगे। फिर ज्ञान तो स्वज्ञेय का-ज्ञायक का है उसमें टिक जाएगा। असंख्य प्रदेशों से आनंद की लहरें उठेंगी। 'आनंद लहेंगे मगर ज्ञाता रहेंगे'। भोक्ताधर्म को जानूँ परंतु मैं (आनंद को) भोगता हूँ ऐसा मानूं नहीं। आनंद की पर्याय के भेद को जाने तो भी (आनंद में) ओट (कमी) आ जाती है।

१०३२

या तो ज्ञान होता है, या अज्ञान होता है- मिश्र दशा नहीं होती। या तो क्रोध में अहमपना आता है या ज्ञायक में अहमपना आता है। ज्ञानरूप परिणमे तो बंध नहीं होता और अज्ञानरूप परिणमे तो उसके निमित्त से नए कर्म का बंध होता है। पुराने के साथ निमित्त-नैमित्तिक और नए के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध खड़ा होता है इसलिए अज्ञान प्रगट होता है, उसमें पुराने कर्म का उदय निमित्त और यह (भावकर्म) नैमित्तिक। अब यह (भावकर्म) निमित्त और नया बंध होता है वह नैमित्तिक। इसप्रकार निमित्त-नैमित्तिक संबंध की परंपरा वह संसार है। उसे अब भेदज्ञान से तोड़ दे।

आहा! मैं तो ज्ञानमय आत्मा हूँ... मुझे "जाननहार जानने में आता है"। क्रोध मेरे में होता नहीं न? क्रोध को मैं जानता भी नहीं न! ऐसा करके जाननहार को जान ले! तो क्रोध भिन्न और ज्ञान भिन्न ऐसा ज्ञान होगा। फिर अज्ञान टल जाएगा... अज्ञान के निमित्त से होता नया कर्मबंध रुक जाएगा... पुराने की निर्जरा होगी और नए का संवर हो जाएगा।

एक समय में दो भाव होते हैं। एक परिणाम में दो कार्य होते हैं। एक अनुभूति हुई तो पुराने की निर्जरा और नए का संवर हो जाता है- नए कर्म रुक जाते हैं। कर्मबंध का निमित्तकारण गया तो नए कर्म नहीं बंधते। निमित्तकारण गया तो आत्मा उसके सामने देखता (भी) नहीं और वे खिर जाते हैं।

१०३३

खड़िया दीवार को सफेद कब करती है? सफेदपना खड़िया में से निकाल दे और दीवार में लगावे तो? वैसे ही "ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का" अंदर से ज्ञान उखाड़कर बाहर लगाये तब पर को जाने ना? कोई आत्मा पर को जानता नहीं है। सभी को "जाननहार जानने में आता है"। बाल-गोपाल सभी को "जाननहार जानने में आता है"। "जाननहार जानने में आता है" ऐसे जाननहार तो हो सभी। पर को जाने ऐसा कोई जाननहार नहीं है- कोई आत्मा ऐसा नहीं है।

आत्मा कहना और पर को जानता है ऐसा कहना वह तो विरुद्ध बात है। "ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का" ज्ञायक नहीं अन्य का- उसमें समझता नहीं इसलिए टीकाकार ने टीका की। मैं पर को जानता हूँ ऐसा तू मानेगा तो आत्मा का नाश हो जाएगा। हूबहू टीका की है।

वह ऐसा मानता है कि- मैं पर को जानता हूँ तो आत्मा का ही नाश होगा ना? क्योंकि पर को जाने ऐसा आत्मा का स्वरूप ही नहीं है- ऐसा टीकाकार ने इस गाथा में कहा। टीकाकार ने बहुत अद्‌भुत से अद्‌भुत बात की है- ज्ञायक तो ज्ञायक है यह निश्चय है।

आत्मा आत्मा को जानता है उसमें भी साध्य की सिद्धि नहीं है (क्योंकि यह भी भेद है)। जैसे आत्मा में राग को करने की शक्ति नहीं है वैसे आत्मा में पर को जानने की कोई शक्ति नहीं है। शक्ति नहीं है तो व्यक्ति कहाँ से हो? जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं आता। पर को जानने पर आत्मा का नाश होता है।

१०३४

मिथ्यादृष्टि का आत्मा भी ज्ञानरूप ही परिणमता है। उस ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है ऐसा ज्ञान होता है। यह परिणामी द्रव्य लिया है। बाल गोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आता है- वह परिणामी लिया है ना!

जाननेरूप–ज्ञानरूप स्वयं परिणमता है - उसमें आत्मा जानने में आ रहा है। "जाननहार जानने में आता है" ऐसा त्रिकाली स्वभाव है। जाननहार जानने में न आए ऐसा एक समय नहीं होता। यदि ज्ञान प्रगट न होता हो और अकेला राग प्रगट होता हो तो राग में आत्मा जानने में न आये। राग जड़ है, वह जानने में आता है ज्ञान में... तो ज्ञान भी प्रगट

होता है।

आहा! वह ज्ञान की पर्याय अपना स्वभाव नहीं छोड़ती। पर्याय जानती है और द्रव्य जानने में आता है- ऐसा स्वभाव भी छोड़ता नहीं। आहा..हा..! होता है ज्ञान और भासित होता है कि राग ज्ञात होता है।

१०३५

अज्ञानी के प्रतिभास में अंतर है। उसे भी होता है आत्मा का ज्ञान और भासित होता है राग का ज्ञान वह पहली भूल। परिणमता हूँ अतः राग का कर्ता हूँ- वह दूसरी भूल। होता है ज्ञान का ज्ञान और मानता है राग का ज्ञान वह भूल है...

उसे होता है आत्मा का ज्ञान- अर्थात् "जाननहार जानने में आता है" प्रतिसमय जानने में आता है ज्ञान और भासित होता है कि राग जानने में आता है वह दूसरी भूल है। एक द्रव्य की भूल और दूसरी पर्याय की भूल है। ज्ञान में जानने में आता है ज्ञायक और भासित होता है कि देह जनाती है, परद्रव्य जनाते हैं। आहा! थोड़े ही जीव प्राप्त करते हैं उसका कारण यह है। या तो करता है वह ज्ञान का ज्ञानत्व या करता है ज्ञान का अज्ञानत्व। वरना प्रगट तो प्रतिसमय ज्ञान ही होता है। यदि ज्ञान में स्व-पर का प्रतिभास न होता हो तो अज्ञान भी सिद्ध नहीं होता। देह जानने में आती है तो देह में ममत्व होता है ना? जाने बिना श्रद्धान किसका? जाने हुए का श्रद्धान होता है।

१०३६

यह पूरी कर्ता-अकर्ता की रमत है। यदि घड़ा घीमय हो जाये तो आत्मा रागमय होवे। ज्ञायक जानने में आता है ज्ञेय ज्ञात ही नहीं होता... इसमें ज्ञायक का जोर आता है। इसमें निषेध का जोर नहीं है परंतु विधि का जोर आता है। जिसका निषेध करता है उसकी तरफ उपयोग जाता ही नहीं। यह अस्ति-नास्ति का अनेकांत वह महामंत्र है।

आत्मा ज्ञायक है प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं है... इसप्रकार परिणमन में दृढ़ता होती है तब अनुभव होता है। "जाननहार जानने में आता है और पर जानने में नहीं आता" ऐसी दृढ़ता होने पर अनुभव होता है। जिसका निषेध किया है उसका सविकल्पदशा में भी आदर नहीं होता।

परिणमकर निषेध करना यही यथार्थ निषेध है। शास्त्रज्ञान का आत्मा के ज्ञान द्वारा निषेध होता है। ज्ञान जिसके सन्मुख हुआ है वह जानने में आता है। जिससे विमुख हुआ वह कहाँ से ज्ञात हो?

१०३७

जिसे स्वभाव का जोर आता है वही व्यवहार का निषेध कर सकता है। व्यवहार के पक्षवाला व्यवहार का निषेध नहीं कर सकता। व्यवहार का निषेध सविकल्प भेदज्ञान

में करना चाहिए। व्यवहार का निषेध करते ही निश्चय का बल आता है। निश्चय का पक्ष आने पर व्यवहार का निषेध होता है। ये दोनों अविनाभाव हैं।

मैं जाननहार हूँ करनेवाला नहीं। मैं पर को वास्तव में नहीं जानता... मुझे "जाननहार जानने में आता है" ऐसा अंदर में से बल आता है। पर को जानने का निषेध होने पर वह व्यवहार का ज्ञाता रहता है परंतु व्यवहार का पक्ष नहीं आता।

१०३८

प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं- ज्ञायक हूँ वह ध्येय का निश्चय है। "जाननहार जानने में आता है" वह ज्ञेय का निश्चय है। अपरिणामी ध्येय है, परिणामी ज्ञेय है।

१०३९

ज्ञानपर्याय में स्वच्छता होने से स्व-पर दोनों का प्रतिभास होता है। मलिनता का तथा स्वच्छता का प्रतिभास होता है। जिससे (ज्ञान) अभेद होता है वह ही जानने में आता है। जो भिन्न हो वह व्यवहार से जानने में आता है - अर्थात् कि पर ज्ञात ही नहीं होता।

निश्चय से अज्ञानी की पर्याय भी स्वप्रकाशक है। अब ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है" उसका निषेध करता है वह स्वयं ही अपने साथ अन्याय कर रहा है। अपने ऊपर हों!? इसलिए इस संसार में भटक रहा है। छोटी पर्याय में बड़ा आत्मा ज्ञात हो रहा है।

१०४०

ज्ञेय जानने में नहीं आता तो ज्ञान का आविर्भाव होता है। ज्ञेय जानने में आता है तो ज्ञान का तिरोभाव होता है। मेरे ज्ञान-दर्शन में आत्मा जानने में आता है... ऐसा एक क्षण भी श्रद्धा में लाता नहीं है। परोक्षज्ञान वह व्यवहार है, प्रत्यक्षज्ञान वह निश्चय है। प्रथम सविकल्प ज्ञान में तो ले कि मेरे ज्ञान में "जाननहार जानने में आता है"। पर को करना वह अज्ञान है... पर को जानना वह अज्ञान है।

१०४१

जो ज्ञान जिसका है उसे जानना छोड़कर पर को जानता है वह अध्यवसान है- पाप है। पुण्य होते हुए भी पाप है। "जाननहार जानने में आता है" वह ज्ञान का विषय है। "मैं जाननहार हूँ" वह श्रद्धा का विषय है। "जाननहार जानने में आता है" वह व्यवहार श्रद्धा का स्वरूप है। इस प्रयोग पर चलना उसका नाम व्यवहार है।

१०४२

"पर को जानता हूँ" वह ज्ञान का एवं श्रद्धा का दोष है। जब तक श्रद्धा में से यह शल्य नहीं निकलता तब तक यह दोष दूर नहीं होता। ज्ञान जिसे (पर को) जानता है, उसे ज्ञेय नहीं कहते। जो स्वयं ज्ञात होने योग्य है उसे ज्ञेय कहते हैं। वैसे ही अग्नि जिसे जलाती

है, उसे दाह्य नहीं कहते। स्वयं जो जलता है उसे दाह्य कहते हैं।

अग्नि इंधन को जलाती है ऐसा जो मानता है वह सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा के बाहर है। उसे दो द्रव्यों की भिन्नता दिखती नहीं है। वैसे ही जो (स्वयं को) पर का ज्ञाता मानता है वह सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर है। भगवान! जाननहार को जानने का यह स्वर्णिम अवसर आया है। व्यवहार का उपदेश नहीं दिया जाता क्योंकि व्यवहार तो स्वयं प्रगट होता है।

अग्नि को अग्निकृत शुद्धता है इसलिए अग्नि में ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं आती। वैसे ही ज्ञान में ज्ञानकृत शुद्धता है। ज्ञान में ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है। इसलिए परज्ञेय जानने में नहीं आता। हमें ज्ञान जानने में आता है।

१०४३

मुझे इस समय अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा स्वयं ही जानने में आ रहा है- 'जाननहार स्वयं जानने में आ रहा है।' इस मंत्र का जाप विश्वासपूर्वक करना। प्रयोग करता है उसे ख्याल आता है कि यह कठिन बात है। मंत्र सिद्ध होने का यह अवसर आया है। स्वरूप को समझने से अनुभव की विधि हाथ में आती है।

१०४४

"जाननहार जानने में आता है" उसमें निश्चय स्वप्रकाशक पूर्वक निश्चय स्वपरप्रकाशक आ जाता है। "जाननहार जानने में आता है" यह बात परम सत्य है। पक्षातिक्रांत निश्चय स्वपरप्रकाशक में होता है। यह निश्चय स्वपरप्रकाशक अनुभव के काल में होता है। आत्मा जानने में आता है और आत्माश्रित परिणाम भी जानने में आते हैं। निश्चय स्वपरप्रकाशक का परिणमन ना होवे तब तक अनुभव नहीं होता। आनंदमयी पूरा आत्मा जानने में आता है।

१०४५

"जाननहार जानने में आता है" यह बात परम सत्य है। जिसे "जाननहार जानने में आता है" उसका नाम ही जाननहार है। मैं जाननहार हूँ इसलिए मेरा नाम जाननहार है। जिसे जाननहार जानने में आता है उसका नाम ही जाननहार है। दूसरा जानने में आये ऐसी व्यवस्था ही नहीं है।

स्व में तन्मय होने पर तो जाननहार जानने में आता है... परंतु सविकल्प में – "जाननहार जानने में आता है" – इससे नक्की होता है कि "जाननहार ही जानने में आता है"। दूसरी चीज झलकती है , परंतु जानने में नहीं आती। दूसरा जानने में आये उसका नाम ही अज्ञान है।

१०४६

धारणा में "जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है" ऐसा लिया है। अब उपयोग में ले! पद-पद पर याद करना कि मैं जाननहार हूँ। जाननहार किसी नय का विषय नहीं है। जाननहार को जानने पर जाननहार इस विश्व के ऊपर तैरता हो वैसा लगता है।

१०४७

यह इन्द्रियज्ञानरूप अन-उपयोग है वह उसका है ही नहीं न! और जो उपयोग बहिर्मुख होता है वह उपयोग ही नहीं है। साधक का उपयोग बहिर्मुख होता ही नहीं। बहिर्मुख हो वह उपयोग ही नहीं है – वह तो इन्द्रियज्ञान है। "जाननहार जानने में आता है" वह लक्षपूर्वक जानने में आता है। लक्षपूर्वक जानने में आता है इसलिए उसका लक्ष रहा ही करता है। चाहे जैसी दशा हो... सविकल्प...निर्विकल्प की बात ही नहीं है। ज्ञान सविकल्प निर्विकल्परूप होता ही नहीं। सामान्य ज्ञानोपयोग तो ज्ञान...ज्ञानरूप ही रहता है। यह केवलज्ञान की जातिवाला ज्ञान है। "जाननहार जनाया ही करता है"। उसका लक्ष छूटता ही नहीं – इसलिए बंध होता नहीं। दूसरी जगह लक्ष जाता नहीं इसलिए (मिथ्यात्व का) बंध होता ही नहीं।

१०४८

साधक का परसन्मुख होनेवाला उपयोग बिना अभिप्राय का हो गया- अर्थात् अन-उपयोग हो गया। और जो सम्यग्ज्ञान है वह क्षायिक जैसा ही है। उसकी जाति केवलज्ञान जैसी ही है। जिसप्रकार केवली भगवान जानते हैं उसी प्रकार यह अंतर्मुख हुआ अतीन्द्रियज्ञान जानता है। क्षयोपशम और क्षायिक इतना अंतर है। ज्ञान तो एक ही प्रकार का होता है न? यह ज्ञान केवलज्ञान की जाति का अंश है। इसलिए उसके जानने की स्टाइल-रीति-प्रकार सब केवलज्ञान जैसा ही है।

साधक को इन्द्रियज्ञान संयोगरूप भले हो परंतु उसमें से प्राण निकल गये। पहले उसे ज्ञान मानता था... अब उसमें से प्राण निकल गये अतः वह मुर्दा हो गया। पहले प्राण निकलते हैं फिर शरीर जल जाता है। उसी प्रकार बारहवें में से तेरहवाँ गुणस्थान आते ही यह इन्द्रियज्ञानरूपी मुर्दा समाप्त हो जाता है- भस्म हो जाता है। तीन लोक में खलबली हो तो भले ही हो, परंतु ज्ञान का स्वरूप यही है। "जाननहार जानने में आता है" वह ऐसा ही रहनेवाला है।

१०४९

जैसे जली हुई रस्सी, रस्सी जैसी तो लगती है... परंतु अब वह बांधने का काम नहीं कर सकती। ऐसा इन्द्रियज्ञान (साधक को) रह गया है। साधक का इन्द्रियज्ञान वह अब बंध का कारण नहीं रहा। इन्द्रियज्ञान को ज्ञान मानना वह बंध का कारण है। ज्ञेय

(इन्द्रियज्ञान) से बंध नहीं होता... अज्ञान से बंध होता है। इन्द्रियज्ञान ज्ञेय होते हुए भी उसे ज्ञान मानना वह ही अज्ञान है। साधक तो मोक्षमार्गी हो गया... आत्मा हो गया।

साधक को अब जो राग... इन्द्रियज्ञान आता है उसकी कोई कीमत ही नहीं है। क्योंकि उसके ऊपर लक्ष नहीं है – लक्ष के बिना आता है। "जाननहार जानने में आता है" इस भाव में अनंत सुख जैसी सर्वोत्कृष्ट वस्तु मिलती है। "जाननहार जानने में आता है" इस भाव की विराधना में अनंत दुःख मिलेगा। मैं पर को जानता हूँ ऐसे अभिप्राय में सत्तर कोड़ा-कोड़ी दर्शनमोह का बंध पड़ता है। सर्वोत्कृष्ट बलवान जाननहार-ज्ञायक है। उसकी विराधना का फल कोई असाधारण ही होता है।

१०५०

आहाहा! लक्ष पर के ऊपर नहीं है इसलिए बंधन नहीं है। जाननहार के ऊपर से लक्ष छूटता नहीं है इसलिए बंधता नहीं। अज्ञान ही होता नहीं इसलिए वह बंधता नहीं- अज्ञान से बंध होता है। अज्ञान क्या है? कहते हैं- "जाननहार जानने में आ रहा है"... तो भी उसे जानता नहीं है... और पर की तलाश में लगा हुआ है- उसने क्या किया? इसने क्या किया? यह कैसा है? यह कैसा नहीं है? अरे! छोड़ दे न सिरपच्ची। पर का लक्ष छोड़ दे तू! "जाननहार जानने में आता है" उसके लक्ष में आजा तू! उसकी भावना में तो आजा! अरे! इसकी गंभीरता समझनी चाहिए। तो पर को जानने का पक्ष छूट जाये। पर के लक्ष से अज्ञान होता है- अज्ञान से बंध होता है। जाननहार आत्मा के लक्ष से सम्यग्ज्ञान होता है। ज्ञान से बंध का निरोध होता है।

१०५१

ज्ञानी को बाहर की क्रिया... परिणाम की क्रिया ज्ञात ही नहीं होती। क्योंकि उसके ऊपर उसका लक्ष नहीं है। उसे निष्क्रिय ज्ञायक जानने में आता है उसके ऊपर ही उसका लक्ष है। उसे परमात्मा की भावना वर्तती है। वह स्वयं परमात्मा हो जानेवाला है। लोगों को कुछ खबर नहीं है। सभी अँधेरे में हैं। अभिमान छोड़े तो यह समझ में आये बाकी तो जैसा है वैसा ही रहनेवाला है।

पर को जानने में वह बहुत दूर चला जाता है। पर को जानता ही नहीं उसमें प्रमाण में आ जाता है। "जाननहार जानने में आता है" वह ही शुद्धनय है। और "जाननहार जानने में आता है" वह ही प्रमाण है। निष्क्रिय ज्ञायक उपादेयपने जानने में आता है वह शुद्धनय है – और पूरा परिणामी "जाननहार जानने में आता है" वह प्रमाण है। पर जानने में आता है, पर्याय का भेद जानने में आता है वह प्रमाण के बाहर चला गया। उसे अध्यवसान हो गया।

१०५२

शब्द एक है परंतु वाच्य दो हैं। "जाननहार जानने में आता है" वह ही शुद्धनय है। "जाननहार जानने में आता है" वह ही प्रमाण है। ध्येय जानने में आता है वह ही शुद्धनय है। पूरा ज्ञेय जानने में आता है वह प्रमाण है। बात तो एक ही रखनी कि- "जाननहार जानने में आता है"। "जाननहार जानने में आता है" उसमें दोनों आ जाते हैं। उसमें शुद्धनय भी आ गया और प्रमाण भी आ गया। पर जानने में आता है, वह तो प्रमाण के बाहर है और जहाँ शुद्धनय होता है वहाँ प्रमाण तो होता ही है और प्रमाण हो वहाँ शुद्धनय होता ही है।

१०५३

"जाननहार जानने में आता है" यह छोटा-सा सूत्र है परंतु इसमें द्वादशांग भरा हुआ है। इसमें नय भी आ गये और प्रमाण भी आ गया। शुद्धनय भी आ गया और अभेदनय भी आ गया। जो चाहिए वह सब आ गया। पर्याय एक ही है परंतु दोनों की संधि है। अविनाभाव है। पर्याय एक, समय एक, उसमें सब कुछ है।

१०५४

"जाननहार जानने में आता है" यह शाश्वत महामंत्र है। अनंत तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि में आया हुआ यह महामंत्र है। "जाननहार जानने में आता है" यह विदेह के संत धर्मात्मा फरमाते हैं। इस समय सीमंधर भगवान की दिव्यध्वनि में निर्झर बहता है... उसमें यह बात आती है कि - "जाननहार जानने में आता है"। उसमें ही शुद्धनय है और उसमें ही प्रमाण भी है। सर्वस्व उसमें ही है। उस स्वरूप ज्ञान का परिणमन ज्ञानी को है इसलिए ज्ञानी को शुद्धनय और प्रमाण सब होता है। उन्हें अज्ञान होता ही नहीं क्योंकि पर के प्रति, पर्याय के ऊपर उनका लक्ष होता ही नहीं। पूर्व में कभी सुनी न हो ऐसी असाधारण बातें हैं।

१०५५

बंध के छेद के लिए यह मंत्र आया है। दुःख के अभाव के लिए इस मार्ग को स्वीकारा है न? तो फिर अपनी कल्पना से क्यों प्रवर्तता है? ज्ञानी कहते हैं ऐसे क्यों नहीं प्रवर्तता? "जाननहार जानने में आता है" उसमें तू आजा! वह शाश्वत सुखी होने का उपाय है। कितना संक्षिप्त उपाय है... और सचोट और यथार्थ टंकोत्कीर्ण शाश्वत परम सत्य उपाय है। "जाननहार जानने में आता है" उसके ऊपर से उसका उपयोग छूटता नहीं- लक्ष छूटता नहीं। ज्ञान में प्रतिसमय जानने में आता है। जो जानने में आता है उसी की श्रद्धा होती है। "जाननहार जानने में आता है" और जाने हुए का श्रद्धान हुआ करता है।

१०५६

ज्ञानमात्र से बंध का निरोध सिद्ध होता है। ज्ञानमात्र आत्मा को लक्ष में लेना कि- "जाननहार जानने में आता है"; पर जानने में आता है ऐसा (मिथ्या) अभिप्राय क्षय हो गया है। पर जानने में आता है वह भाव बिल्कुल निकल गया। "जाननहार जानने में आता है" वह सादि-अनंत काल तक रहनेवाला है इसलिए बंध नहीं होता।

१०५७

चारित्र की अस्थिरता से थोड़े पुण्य-पाप आते हैं परंतु वह तो निर्जरने के लिए आते हैं। उससे मिथ्यात्व का बंध नहीं होता- क्योंकि अब उसका लक्ष पर के ऊपर नहीं है। उसका लक्ष तो निरंतर "जाननहार जानने में आता है" उसके ऊपर रहा करता है। परिणाम की क्रिया चाहे जैसी हो उससे बंध नहीं होता। परिणाम के ऊपर लक्ष नहीं है "जाननहार जानने में आता है" उसके ऊपर लक्ष है इसलिए बंध नहीं होता।

१०५८

ज्ञानी का लक्ष क्रिया के ऊपर नहीं है... उसका लक्ष मात्र निष्क्रिय के ऊपर है। "जाननहार जानने में आता है"। जाननहार तो निष्क्रिय ही है न? अकर्ता ही है न? निष्क्रिय अकर्ता के ऊपर ही लक्ष है। आता है और जाता है उसके ऊपर लक्ष नहीं है। (स्थिर) रहता है उसके ऊपर लक्ष है, रहता है, फिर ऐसा ही रहेगा। उसके ऊपर से ज्ञान अर्थात् कि लक्ष पलटता नहीं। अब पूरा स्वज्ञेय पलटता नहीं। "जाननहार जानने में आता है" मेरा स्वरूप है। स्वज्ञान पलटता नहीं, स्वज्ञाता पलटता नहीं।

१०५९

स्वरूप कहो, स्वज्ञान कहो, स्वज्ञाता कहो यह एक ही बात है- "जाननहार जानने में आता है" यह अब पलटे कहाँ से? पलटना था वह पलट गया। एकबार पलट जा फिर तुझे पलटना नहीं पड़ेगा! फिर अनंतकाल ज्ञेय से ज्ञेयान्तर नहीं होना पड़ेगा! यह कोई असाधारण बात है। शास्त्र में हो वह ज्ञान में आ ही जाता है। और जो ज्ञान में होता है वह शास्त्र में से मिल ही जाता है।

१०६०

पर जानने में ही नहीं आता यह अद्‌भुत से अद्‌भुत बात है। क्यों बंध नहीं होता? जाननहार के ऊपर से लक्ष छूटता ही नहीं... बंध का कारण मिट गया। बाहर की कोई क्रिया बंध का कारण नहीं है। "जाननहार जानने में आता है" उसके ऊपर से लक्ष छूट जाना वह ही बंध का कारण है। परंतु जाननहार के ऊपर से लक्ष छूटता ही नहीं इसलिए वह बंधता ही नहीं। यह प्रैक्टिकल बात है। अपनी बात है। अब सादि अनंतकाल के लिए एक वज्र अभिप्राय बंध गया कि "जाननहार जानने में आ रहा है"।

१०६१

मूल में कुंदकुंदाचार्य ने तो दो ही बात की हैं- एक द्रव्यार्थिक चक्षु और एक पर्यायार्थिक चक्षु... उन्होंने प्रमाण की बात नहीं करी कि...सामान्य-विशेष को साथ में देखना। यहाँ टीका में आचार्य भगवान (द्रव्य-पर्याय दोनों को) साथ देखने की बात भी लेंगे। प्रमाणज्ञान से दो को देखना, इसप्रकार।

यहाँ (पाठ में) कहते हैं- पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बंद करके... आहाहा! यहाँ से शुरू किया। पर्याय को देखना सर्वथा बंद कर दे ऐसा आचार्य भगवान कहते हैं इसलिए हमें ऐसा भासित होता है। गुरुदेव कहते हैं, हमें भी ऐसा भासित होता है। इसप्रकार प्रयोग करने पर अनुभव होता है। **'इनमें से पर्यायार्थिक चक्षु को...'** अर्थात् पर्याय को देखनेवाले व्यापार को **'सर्वथा बंद करके...'**! आहाहा! लो! यहाँ से शुरु किया है।

अब इसमें एक मर्म है, पहले ऐसे क्यों शुरु किया? पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद कर दे ऐसा निषेध- नास्ति से बात क्यों की? विधि से बात क्यों नहीं की कि प्रथम द्रव्यार्थिक चक्षु को खोलकर अपनी आत्मा को देख ऐसा क्यों नहीं कहा? उसमें हेतु रहा है, क्योंकि अनादिकाल से इन्द्रियज्ञान भेद को जानने में रुका हुआ है और भेद को आत्मा मानने की भूल हुई है इसलिए उसका निषेध करते हैं। क्रोध होता है तो भले हो परंतु उसे देखना बंद कर दे! पहले उसका निषेध कर कि – मुझे क्रोध जानने में नहीं आता। बहुत सिर दुखता है तो दुःख को देखना बंद कर दे! सिर को देखने की तो तेरे पास चक्षु ही नहीं है इसलिए उसका तो प्रश्न ही नहीं है... क्योंकि आँख ही दो हैं। एक पर्याय को देखनेवाली और एक द्रव्य को देखनेवाली। अब जो दुःख होता है उस दुःख को देखना बंद कर दे। दुःख है वह जीव का परिणाम है, वह पुद्गल का परिणाम नहीं है परंतु उसे देखना बंद कर दे। ज्ञान में कुछ करना और भोगना तो है ही नहीं, ज्ञान में मात्र जानना ही है। या तो परिणाम को जाने, या तो द्रव्य को जाने... परंतु पर्याय को करे ऐसा वस्तु के स्वभाव में नहीं है। करने की बात ३२० गाथा में निकाल दी है। पर्याय हो रही है उसे करना क्या? अब यहाँ कहते हैं कि जो हो रही है उसे जानना बंद कर दे। यदि तुझे आत्मा का अनुभव करना हो तो!!

निषेधपूर्वक विधि में आया जाता है। वह शैली एक अपूर्व है। विधिपूर्वक निषेध होता है वह बाद की बात। पहले तो निषेध से ले क्योंकि व्यवहार का पक्ष है इसलिए व्यवहार के पक्षवाले को पहले व्यवहार का निषेध कराते हैं। व्यवहार का निषेध करने पर निश्चय प्रगट होता है। इसलिए यहाँ पाठ में भी पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद कर दे वह पहले लिया। अपने परिणाम को देखना बंद कर दे।

(तर्क करता है) परिणाम को देखना तो सही न? परिणाम को जानने का विवेक

तो करना न? इसप्रकार कितने ही बातें करते हैं। यह भूल है उनकी। भगवान ने पर्याय को देखने के लिए कहा नहीं... भगवान ने तो आत्मा को देखने के लिए कहा है। आत्मा को देखने के बाद परिणाम को देखेगा तो व्यवहार है, वरना तो अज्ञान है।

इस पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बंद कर दे। कथंचित् नहीं। 'सर्वथा' शब्द बहुत जोरदार लिखा है। योग्य जीव को चोट लगती है। पर को जानना बंद बाद में होता है परंतु पहले पर को जानने का पक्ष छूट जाता है। अनादि से परिणाम को जानने का पक्ष है क्योंकि परिणाम को जानना वह तो ज्ञान का स्वभाव है तो परिणाम को जानूँ तो सही न! ऐसा अनादिकाल से व्यवहार का पक्ष है वह अज्ञान है।

ऐसी गाथा हाथ में आती है तब पर्याय को जानना तुरंत ही बंद नहीं होता... परंतु पर्याय को जानना वह मेरा स्वभाव है ऐसा पक्ष छूट जाता है। पर्याय को जानना बंद होने में थोड़ी देर लगती है, तुरंत ही बंद नहीं होता... परंतु पर को जानने का जो पक्ष है वह छूट जाता है। पर को जानना मेरा स्वभाव है ऐसा मानता है वह ही पक्ष है- वह छूट जाता है।

परिणाम को जानने पर मुझे ज्ञान भी नहीं होता और सुख भी नहीं होता... इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि परिणाम को जानना बंद कर दे। अब उसे परिणाम को जानना बंद करना वह सत्य लगता है। उसे अंदर चोट लग गई। परिणाम को जानने का पक्ष था, हठाग्रह था असत्य का, वह छूटा। हठाग्रह छूटने से मिथ्यात्व की मंदता होती है... परंतु मिथ्यात्व का अभी अभाव नहीं होता। उस मंदता में एक निश्चयनय का पक्ष आता है कि- "जाननहार जानने में आता है", अभेद जानने में आता है। मुझे भेद जानने में नहीं आता। नजर अभी भेद के ऊपर है... भेद के ऊपर से नजर छूटी नहीं है... परंतु भेद को जानने का जो पक्ष था वह गया। भेद के ऊपर अभी लक्ष रह जाता है। इसलिए मिथ्यात्व टला नहीं परंतु मिथ्यात्व गलने लगा। मिथ्यात्व टलने से पहले अवश्य गलता है। बाद में वह ही जीव 'यह राग मुझे ज्ञात ही नहीं होता' - इसप्रकार निषेध करते करते अब वह उपयोग लंगड़ा हो जाता है क्योंकि व्यवहार का पक्ष छूटा है न? इस राग को जानने का मेरा स्वभाव नहीं है ऐसा निषेध आता है, मुझे तो मेरा "आत्मा-जाननहार जानने में आता है"। मुझे भेद ज्ञात नहीं होता तो अभेद जानने में आता है। विशेष जानने में नहीं आता, सामान्य जानने में आता है। खंड जानने में नहीं आता, अखंड जानने में आता है। ऐसे विचारों में राग की तरफ का उपयोग छूट जाता है। पहले व्यवहार का पक्ष छूटा और फिर उपयोग छूट जाता है। जैसे ही उपयोग छूटा वैसे ही अंदर में आकर अनुभव होता है - यह विधि है। एकदम यथार्थ विधि है। बहुत सरल और सुंदर विधि है - यह एक अनुभव की रीति है।

आचार्य महाराज और गुरुदेव यह एक रीति बताते हैं। पहले भले ही अंदर जाने में तुझे देर लगे तो वह क्षम्य है... परंतु पहले तो तू ऐसा नक्की कर कि – पर को जानना वह मेरा स्वभाव ही नहीं है। राग को जानने पर ज्ञान होता ही नहीं इसलिए राग को जानना वह मेरा स्वभाव ही नहीं है। भले अभी राग को जानने उपयोग रुका है परंतु राग को जानने के समय भी राग को जानना स्वभाव ही नहीं है। जैसे ही निषेध करता है तो ज्ञान राग से- ज्ञेय से व्यावृत्त होकर ज्ञायक के सन्मुख आ जाता है। यह अनुभव की कला और विधि है।

१०६२

यह ध्यान की विधि चलती है। आत्मा का ध्यान कैसे करना? चिंतवन में बैठा हो तब ध्यान कैसे करना? विकल्प उठता है वह विकल्प तो मेरा नहीं है परंतु विकल्प ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं है। विकल्प-राग वह ज्ञान का ज्ञेय नहीं है... ज्ञान का ज्ञेय तो एक चिदानंद आत्मा है ऐसा लेने पर पूरा ज्ञेय पलट गया। राग को जानने का जो लक्ष था वह पलट जाता है और ज्ञेय पलटते ही ज्ञायकदेव ज्ञान में ज्ञेय हो जाता है। यह अनुभव की विधि है।

समय-समय जो ज्ञेय को जान रहा है उसे(खंडज्ञान को) कुल्हाड़ी मारनी है। अब उसे जानना बंद कर दे। भेद को जानना बंद कर दे। भेद को जानना वह मेरा स्वभाव नहीं है। भेद को जानने पर रागी प्राणी को राग होगा... निर्विकल्प अनुभव नहीं होगा। भाई! मिथ्यात्व नहीं छूटेगा इसलिए उसे जानना सर्वथा बंद कर दे। 'है' उसे जानना सर्वथा बंद कर दे।

पूज्य गुरुदेव ने भी आचार्य भगवान का आधार दिया। गुरुदेव भी अपने घर का कुछ नहीं कहते। यद्यपि घर का कहें तो भी व्याजबी है। परंतु वे तो आधार देते हैं आचार्य भगवान का। "लो! यहाँ से उठाया है।" पर्याय को जानना बंद कर दे वहाँ से शुरु किया है। द्रव्यार्थिक चक्षु खोलकर- वहाँ से शुरु नहीं किया।

कितने ही लोग ऐसा कहते हैं तुम अस्ति से बात करो न, नास्ति का क्या काम है? परिणाम को जानना किसलिए बंद कराते हो? ज्ञायक को जानना- ऐसा उपदेश दो ना! तो कहते हैं- ज्ञायक को जानना ऐसा उपदेश देने से तेरा जो शल्य है पर को जानने का, वह नहीं छूटेगा और पर को जानने का शल्य छूटे बिना अंदर में नहीं जाया जाएगा। पहले तेरा शल्य निकाल। जैसे पुण्य से धर्म होता है वह मान्यता छोड़ने पर... पुण्य नहीं छूटता, पुण्य छूटने में देर लगेगी परंतु पुण्य से धर्म होता है वह मान्यता एक झटके में छोड़ दे। ऐसे ही मैं पर का जाननेवाला हूँ वह मान्यता पहले एक झटके में छोड़ दे। पर को जानना भले ही चालू रहे परंतु पर को जानने का मेरा स्वभाव नहीं है। पर को जानने पर मुझे ज्ञान भी नहीं है और सुख भी नहीं है। इसप्रकार पर्याय हैं वे पर हैं। उन्हें जानने

से ज्ञान और सुख नहीं होता। पर को जानने के लिए जो उपयोग जाता है वह व्यावृत्त कब होता है कि मैं पर को जानता ही नहीं - ऐसी निःशंकता अंदर में से आवे, निषेध आवे, श्रद्धा का बल आवे कि मैं पर को जानता ही नहीं... मैं तो जाननहार को जानता हूँ।

मैं राग को जानता ही नहीं। राग मुझे ज्ञात ही नहीं होता। जब राग जानने में आता है (प्रतिभासित होता है) तब राग को जानने का निषेध करना चाहिये। क्रोध जानने में आता है तब मैं क्रोध को जानता ही नहीं - तब परिणाम को जानने का पक्ष छूटता है और पक्ष छूटने पर पक्षातिक्रांत होकर अंदर में जाता है।

यहाँ स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं कि- **पहले पर्यायार्थिक चक्षु बंद करने के लिए क्यों कहते हो... द्रव्यार्थिक चक्षु खोलकर- इसप्रकार क्यों नहीं शुरु किया?** इसप्रकार क्यों नहीं शुरुआत की? **इसप्रकार नास्ति से क्यों शुरु किया? अस्ति से शुरुआत करनी थी न?** ऐसा प्रश्न होता है, हमें ऐसे बहुत प्रश्न आते हैं।

कहते हैं – जिसे द्रव्य को देखना है उसे कहते हैं- द्रव्य को देखने के लिए पर्यायार्थिक आँख को सर्वथा बंद कर दे। यह उपदेश नहीं आदेश है- बंद कर दे। इसप्रकार आदेश दोगे तो आपको कर्ताबुद्धि का दोष नहीं लगेगा? भाई! यह हम नहीं कहते, शब्द तुझे कहते हैं। हम कहाँ कहते हैं? हमारे पास वाणी तो है नहीं। मैं भी ऐसा जानता हूँ और तू भी ऐसा जान कि वचन मुझे कहते हैं।

आहाहा! वाणी निकली कि पर्यायार्थिक चक्षु बंद कर दे। सामने शिष्य का काल पका है तो वाणी ऐसी आती है कि अनुभव कैसे हो? उसकी विधि बता देते हैं। आत्मा को शब्द हैं नहीं, शब्द पर्याय आत्मा की तो है नहीं। आत्मा तो जाननहार है। जाननहार है वह वाणी करे?! परंतु जब उसका काल पकता है तब वचन ऐसे निकलते हैं, रामबाण की तरह बींध देते हैं मिथ्यात्व को। और ज्ञान अंदर में चला जाता है। वचन वचन के काल में है परंतु ऐसा योग बन जाता है। सामने ऐसे पात्र झेलनेवाले हैं तो टंकोत्कीर्ण वाणी आई... परिणाम को जानना बंद कर दे। पर को तो तू जानता ही नहीं... इसलिए बंद करने के लिए कहते भी नहीं। तेरे परिणाम में राग होता है उसे जान रहा है, उसे जानना बंद कर दे।

अब यहाँ कहते हैं द्रव्य को- आत्मा को देखने के लिए यह हेतु है... पर्यायार्थिक आँख को सर्वथा बंद कर दे। गजब बात है भाई! यह अनुभव की विधि है। आहाहा! दृष्टि के विषय में आ गया है परंतु अनुभव कैसे हो वह नहीं जानता। दृष्टि का विषय परिणाममात्र से भिन्न, प्रमत्त-अप्रमत्त से भिन्न ज्ञायक सो मैं... परंतु ज्ञायकभाव के दर्शन क्यों नहीं होते? ज्ञायकभाव वह मैं उसमें आ गया परंतु ज्ञायक क्यों नहीं ज्ञात होता? तू पर को तो जानता ही नहीं, परंतु परिणाम को नहीं जानता... ऐसा अंदर से जब निषेध आता है

तब एक समय ऐसा आता है कि परिणाम को जानना बंद हो जाता है। सहज ही बंद होता है... परंतु अंदर में से मूल में से निषेध आवे तो!

श्री प्रवचनसार ११४ गाथा में कहा है इसलिए मैं पर्याय को जानना बंद करता हूँ ऐसा नहीं। उस समय उसे प्रवचनसार याद नहीं आता, याद आये तो निमित्त के ऊपर लक्ष चला जाता है। शास्त्र में कहा है इसलिए ऐसा है- ऐसा नहीं। अनुभव के काल में अंदर में से सीधा आता है। गुरुदेव कहते हैं इसलिए नहीं... मेरा स्वरूप ही ऐसा है। अरे! गुरुदेव याद नहीं आते, प्रवचनसार याद नहीं आता, अंदर में से निषेध आता है कि पर को जानता ही नहीं। पर में पर्याय आ गई। मैं पर को जानता ही नहीं, "मुझे जाननहार जानने में आता है"; ऐसी एक परिणति अंदर से उठती है तब कार्य होता है।

१०६३

(तुझे ऐसा विचार आता है कि) 'वह मुझे उपदेश था और मुझे अब अनुभव करना है इसलिए पर को जानना बंद करना है' (परंतु) ऐसा नहीं है। (स्वभाव से) "मैं पर को जानता ही नहीं जाननहार जानने में आता है", ऐसी एक परिणति अंदर से उठती है तो पर को जानना सहज बंद हो जाता है और उपयोग निर्विकल्पध्यान में चला जाता है। अपना गुरु स्वयं हो जाता है... उस समय कोई याद नहीं आता। यह जो भाव उठता है वह धारणा में से नहीं आता। पहले सुना हुआ था, (प्रवचनसार) ११४ गाथा में कहा है- 'पर्यायार्थिक चक्षु बंद करके द्रव्यार्थिक चक्षु खोलो' वह याद नहीं आता। यदि ऐसा याद आये तो भावमन याद आया कहलाता है। भावमन और भावमन में रही हुई धारणा याद नहीं आती। धारणा तो धारणारूप से डिपोजिट पड़ी है। अंदर में से एक नई स्फूर्णा होती है। अनुभव के बाद धारणा के साथ मिलान करता है- कि मैंने यह बात सुनी थी वैसा ही मुझे अनुभव हुआ... उसके बाद साक्षीरूप होता है परंतु पहले नहीं। यह अनुभव की ऊँचे में ऊँची रीति है।

मैं तो जाननहार हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ ना! मैं तो चिदानंद आत्मा हूँ न उसमें आया फिर भी अनुभव क्यों नहीं होता? तो उसे कहते हैं- पर को जानने का निषेध जितनी मात्रा में आना चाहिए उतनी मात्रा में नहीं आता। कंकर जितना गुड़ डाले और कहे कि क्यों मीठा नहीं हुआ? जितनी मात्रा में गुड़ डालो उतना मीठा होता है। उसीप्रकार जितनी मात्रा में व्यवहार का निषेध आना चाहिए (उतनी मात्रा में आये तो कार्य हो)। 'परिणाम को जानना बंद कर' वही व्यवहार का निषेध है। निषेध करने में निर्दयी हो जाना। पर को जानना बंद करूँगा तो अँधा हो जाऊँगा तो? तो कहते हैं - ना, तू देखता हो जाएगा। पर को जानना बंद करे तब ही आत्मा दिखता है। आहाहा! आरी की तरह निर्दयी हो जा। ज्ञान पर को जानता है वह व्यवहार है, ज्ञान ज्ञान को जानता है वह निश्चय है। मैं पर को

नहीं जानता वह व्यवहार का निषेध है। मैं पर को जानता हूँ- ऐसा पक्ष अनादि का है, उसके पास व्यवहार नहीं है। उसे जो पक्ष है वह छुड़ाते हैं। पक्ष छूटने पर पर्याय को जानना बंद हो जाता है। जब तक पक्ष रखता है तब तक पर्याय को जानना बंद होकर उपयोग अंदर में नहीं आता। बहुत लोग ऐसे ध्यान में बैठते हैं परंतु पक्ष रखकर। श्रद्धा में ज्ञान का स्वपरप्रकाशक का पक्ष है। ज्ञान तो ज्ञान को जानता है। ज्ञान पर को जानता है ऐसा (शास्त्र के आधार से पक्ष को दृढ़ करता है)।

आचार्य भगवान को पता नहीं है कि ज्ञान स्वप्रकाशक है? उन्हें पता नहीं है कि पर को जानना बंद करने से अकेला स्वप्रकाशक रहेगा? लिखनेवाले को पता नहीं है कि यह एकांत हो जाएगा तो? तू होशियारी कहाँ करने बैठा? इसमें अति रहस्य है। अंदर के स्वपरप्रकाशक की भी मना करते हैं। पर्याय को जानना बंद कर दे। आहाहा! बहुत सूक्ष्म है। व्यवहार का निषेध वीर्यवान ही कर सकता है। यह वीर्यवान का काम है। जैसे पर को करता हूँ वह मिथ्या संस्कार है वैसे मैं पर को जानता हूँ वह भी मिथ्यात्व है, अध्यवसान है। ज्ञेय ज्ञायक की एकता को भगवान ने अध्यवसान का दोष कहा है।

कहते हैं- द्रव्य को देखने के लिए पर्याय को देखना सर्वथा बंद कर दे। यह अनुभवी का आदेश है... उनकी बात को शिरोधार्य कर लेना। लक्ष्मी टीका करने आये तब मुँह धोने मत जाना! इसमें एकांत हो जाएगा तो!? वैसा विचार मत करना... उसमें सम्यक् एकांत होगा। स्वपरप्रकाशक में पर को जानने का निषेध आएगा तब एक नया स्वपरप्रकाशक ज्ञान प्रगट हो जाता है। इसमें ज्ञान का निषेध नहीं है परंतु व्यवहार का निषेध है। हम तेरा निषेध कहाँ करते हैं? तू पर को जाननेवाला कहाँ है? तो तुझे किसका दुःख लगता है? तू तो ऐसा है नहीं! तू पर का जाननेवाला नहीं है ऐसा मानेगा तो तेरा काम हो जाएगा भाई! आहाहा! तू मनुष्य है; भैंसा नहीं है ऐसा कहते हैं उसमें तुझे किसका दुःख लगता है? तू जैसा है वैसा हम कहते हैं।

१०६४

यह एक अंतिम में अंतिम शल्य अज्ञानी को रह जाता है। ज्ञान स्व को भी जानता है और ज्ञान पर को भी जानता है... यहाँ उस शल्य का निषेध करते हैं। यह अटकने का बड़ा जबरदस्त स्थान है। कर्ताबुद्धि तो छूटती है कि- मैं जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं। छह द्रव्य स्वयं परिणमते हैं- पर्याय स्वयं होती है तो मैं उनका उपादानपने या निमित्तपने करनेवाला नहीं हूँ... तो अकर्ता जाननहार में तो आया परंतु अब जाननहार कैसे जानने में आए यह विधि नहीं जानता। "जाननहार जानने में आता है" यह विधि है। यह साधारण बात नहीं है असाधारण बात है। इसमें भव के अंत की कला बताई है। इसमें (प्र.सार ११४ गाथा में) बहुत माल भरा है। उपरोक्त धारणा में आया है,

परंतु वस्तु क्यों नहीं ज्ञात होती... उसका कारण यह है कि मैं पर को जानता हूँ ऐसा पक्ष है... इसलिए ज्ञेय से ज्ञान व्यावृत्त नहीं होता। ज्ञान ज्ञेय से व्यावृत्त होकर अंदर में जाना चाहिए। ज्ञान ज्ञेय से व्यावृत्त किस प्रकार हो? नहीं होता, क्योंकि उसे ऐसा पक्ष है कि मैं ज्ञेय को जानता हूँ। अब उपयोग को जिस ज्ञेय की तरफ स्थापित करोगे उस ज्ञेय को जानने जाएगा। वहाँ (पर में) ज्ञेय और यहाँ (स्व में) ज्ञान ?! बस! हो लिया! वह गया दुनिया में से। ज्ञान भी अंदर और ज्ञेय भी अंदर ऐसा भाये तब ज्ञेय से ज्ञान व्यावृत्त होकर- परज्ञेय को जानना बंद होकर अनुभव होगा। पर्याय परज्ञेय है इसलिए उसे जानना बंद कर दे... तो ज्ञायक चिदानंद आत्मा तुझे जानने में आ जाएगा।

गजब बात है भाई! पर्याय है अवश्य परंतु उसकी तरफ देखने की दृष्टि बंद कर दे। हम पर्याय का निषेध नहीं करते... हम तो पर्याय को जानने का निषेध करते हैं। तू हमारी बात ध्यान देकर सुन तो सही कि हम क्या कहते हैं। पर्याय का हम निषेध नहीं करते... हम तो पर्याय को जानना बंद कर दे ऐसा कहते हैं।

१०६५

पहले तो ऐसा कहा कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। विशेष नहीं है ऐसी कहाँ बात है? हम ऐसा कहाँ कहते हैं कि पर्याय नहीं है। पर्याय हो तब पर्याय को जानना बंद कर ऐसा कहा जाता है। यदि पर्याय ही ना हो तो पर्याय को जानना बंद कर दे वैसा उपदेश ना आवे। पर्याय है और उसे तू जानने भी रुका है! ऐसा भी है... ऐसा अज्ञान भी है। अब पर्याय को जानना बंद कर दे।

जिज्ञासा :- पर्याय को जानना बंद कर दें, तो पर्याय रहेगी या नहीं रहेगी ?

समाधान :- पर्याय तो रहेगी परंतु विशिष्ट अतीन्द्रियज्ञान की नई पर्याय प्रगट होगी। पर्याय का प्रकार पलट जाता है। क्योंकि पर्याय के बिना तो द्रव्य होता ही नहीं... परंतु इन्द्रियज्ञान का व्यय होकर अतीन्द्रियज्ञान की पर्याय प्रगट होती है उसे द्रव्यार्थिकनय कहने में आता है।

जिज्ञासा:- द्रव्यार्थिकनय में कैसा द्रव्य जानने में आता है?

समाधान :- मैं ज्ञान और आनंदमय हूँ ऐसा जानने में आता है। जानने में आता है अर्थात् अनुभव में आता है। अनुभव में आता है अर्थात् वेदन में आता है। प्रदेश नहीं ज्ञात होते परंतु ज्ञान और आनंद की मूर्ति हूँ, ऐसे आनंद का स्वाद आता है। उस जानने में मात्र जानना नहीं है, परंतु रस से भरा आनंद का अनुभव होता है। ऐसी जानने की दशा प्रगट होती है कि मैं तो आनंदमूर्ति हूँ। जानना तो रूखा है परंतु जानने के साथ आनंद आता है वह स...रस... रसयुक्त है वह जानना है। हलवा परोसते हैं परंतु जब तक घी नहीं डालते तब तक रूखा है। समधी आए हैं... हलवा परोसा परंतु क्यों अभी तक घी नहीं

आया? घी आये तब स..र..स.. अनुभव होता है। उसका नाम स्वानुभूति है।

पहले यह कहा कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। पर्याय नहीं है ऐसी कहाँ बात है बापू! हमने कहाँ मना किया कि विशेष नहीं है। तू हमारी बात समझता नहीं है। विशेष को देखने की आँख को बंद कर दे ऐसा हम कहते हैं... पाठ में है। कथंचित् बंद कर दे, ऐसा नहीं... परंतु पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बंद कर दे। सर्वथा बंद करेगा तो एकांत हो जाएगा उसकी अपेक्षा कथंचित् रखो न? आहाहा! देख लेना व्यवहार का पक्ष पिछले दरवाजे से प्रवेश कर गया। पहले आगे के दरवाजे से प्रवेश था कि- मैं पर को जानता हूँ। अब कथंचित् में पिछले द्वार से व्यवहार का पक्ष प्राप्त हो गया वापस।

१०६६

पाठ में 'सर्वथा' कहा तो उसने अपना कथंचित् का घोड़ा बीच में अड़ाया, तो अंदर कहाँ से जाए! इसमें (पाठ में) ही है, 'कथंचित् बंद करके' - ऐसा नहीं है। कथंचित् को अभी आड़े-(बीच में) मत लाना... पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बंद कर दे।

'मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा' अर्थात् दो के द्वारा नहीं और एक(पर्यायार्थिक) के द्वारा भी नहीं; -पर्याय के द्वारा नहीं और प्रमाण के द्वारा भी नहीं; परंतु एक के द्वारा अर्थात् मात्र द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा उसे अकेली को खोल। तुझे आत्मा के दर्शन करने हों तो इस भद्रबाहु की गुफा में तुझे दर्शन होंगे। यह अकेली मक्खन की- प्रयोग की बात है।

'मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक' कहा न! पर्यायार्थिक चक्षु का निषेध किया। मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा त्रिकाली को जानना है। कैसे जानने में आए? ज्ञानी जानने की विधि अज्ञानी को बताते हैं... कि: इस प्रकार जानने में आता है। कहते हैं- ज्ञेय को देखने की आँख बंद करके द्रव्य जिसका प्रयोजन है ऐसे द्रव्यार्थिकनय की आँख द्वारा देख। यह द्रव्यार्थिकनय का अर्थ हुआ।

'मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा' यह मूल कोटेशन दिया... आचार्य भगवान ने स्वयं। भाषा तो देखो! अवस्था को देखनेवाली पर्यायार्थिक आँख बंद करके द्रव्य सामान्य को देखनेवाली द्रव्यार्थिक आँख के द्वारा देख। आदेश दिया है - देख तुझे दिखेगा। तुझे अवस्था में सामान्य भगवान आत्मा "जाननहार जानने में आता है" वह जानने में आएगा। कोलकरार करके कहते हैं। कथंचित् जानने में आएगा- ऐसा नहीं। जानने में आएगा ही (सम्यक् एकांत)।

अवस्था को देखनेवाली आँख बंद करके... तो भी सामान्य को देखनेवाली अवस्था तो रहेगी। लो! पर्याय तो रह गई। पर्याय कहाँ जाए? पर्याय का लक्ष छूट गया। पर्याय रहेगी परंतु पर्याय को देखने का विषय विशेष नहीं परंतु सामान्य रहेगा।

द्रव्यलिंगी मुनि की यह भूल रह गई। मोक्षमार्ग प्रकाशक में बताते हैं कि- वह सम्यग्ज्ञान के लिए प्रवृत्ति करता है। ११ अंग का पाठी, पाँच महाव्रतधारी वहाँ तक आया, फिर भी वह भूल करी कि छह द्रव्यों को जाननेवाले आत्मा को जानता हूँ- तो कहते हैं अज्ञान रह गया। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा नहीं आया।

सभी को "जाननहार जानने में आता है" यही पूर्णाहुति।

१. सिद्ध भगवान **वास्तव में** पर को नहीं जानते, किन्तु अपनी ज्ञान की अवस्था में जानने की पूर्ण शक्ति प्रगट हो गई है ऐसी अपनी ज्ञान सामर्थ्य को ही जानते हैं। उसी प्रकार; सिद्ध भगवान की पवित्रता की सामर्थ्य का जिसने ख्याल किया वह जीव भी **वास्तव में** तो सिद्ध भगवान की अनंत सामर्थ्य को नक्की करनेवाली अपनी निर्मल पर्याय की सामर्थ्य को ही जानता है।

(आत्मधर्म अंक नंबर 26, पेज नंबर 53)

२. भगवान की तरफ लक्ष के समय ज्ञान **वास्तव में** भगवान को तो नहीं जानता, किन्तु भगवान का निर्णय करनेवाली जो ज्ञान सामर्थ्य है, उस ज्ञान सामर्थ्य को ही स्वयं जानता है। जिस ज्ञान के ख्याल में भगवान की सामर्थ्य आई है उस ज्ञान की सामर्थ्य का जिसे माहात्म्य न आए वह अंतरसन्मुखता करके भगवान किस प्रकार होगा? स्वरूप सन्मुख होकर देखे तो प्रत्येक समय अपने ज्ञान का ही स्वयं माहात्म्य करता है; कभी भी पर का माहात्म्य नहीं करता।

(आत्मधर्म अंक नंबर 26, पेज 55)

३. **वास्तव में** इस जगत को जाना नहीं है। यदि जगत को वास्तव में जाने तो जगत और जीव एक हो जायें। तेरा ज्ञान **वास्तव में** मानस्तंभ को जाने तो तेरा ज्ञान उसमें चला जाए। तो तू और मानस्तंभ एकरूप हो जाओगे। **वास्तव में** अपनी ज्ञान की पर्याय को जानता है। मानस्तंभ आदि पर(पदार्थों) को **वास्तव में** ज्ञान नहीं जानता।

(सद्गुरु प्रवचन प्रसाद अंक 32, पेज नंबर 180)

४. आत्मा **वास्तव में** पर को नहीं जानता, तो फिर पर को जानने के लिए उपयोग लगाना वह बात ही कहाँ रही? स्वयं अपने को जानता है-ऐसा कहना वह भी भेद होने से व्यवहार है। वास्तव में ज्ञायक सो ज्ञायक ही है यह निश्चय है। जैनदर्शन बहुत सूक्ष्म!

(आत्मधर्म मार्च १९८१ में से)

५. **वास्तव में** विकार को तो ज्ञान नहीं जानता, कर्म के उदय को भी ज्ञान नहीं जानता; परंतु उस विकार संबंधी जो ज्ञान अपने में हुआ उसे ज्ञान जानता है।

(प्रवचन रत्नाकर भाग 4, पेज नंबर 273)